वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 125

मुनिचर्या

(यतिक्रियाकलाप)

—संकलन एवं पद्यानुवाद—

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य
आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की सुशिष्या
गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के पावन सानिध्य में
भारत की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों
द्वारा उद्‌घाटित ''भगवान पार्श्वनाथ 2885वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव''
एवं ''विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन'' के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 292943

Website : www.jambudweep.org

E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

तृतीय संस्करण	पौष कृ. दशमी	मूल्य
500 प्रतियाँ	वीर नि. सं. 2535	160 /-रु.
	21 दिसम्बर 2008	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन :-

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

-: सम्पादक :-

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण, सन् 1991—1100 प्रतियाँ प्रकाशित
द्वितीय संस्करण, सन् 1995—1100 प्रतियाँ प्रकाशित

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

भगवान महावीर स्वामी के पश्चात् गौतम गणधर के द्वारा कथित एवं आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध किये गये ग्रंथों में मुनियों के आचार संबंधी अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं जिनमें मूलाचार, आचारसार, भगवती आराधना, अनगार धर्मामृत आदि ग्रंथ प्रमुख हैं। इन समस्त ग्रंथों में मुनियों के २८ मूलगुण माने गये हैं तथा इन मूलगुणों के संबंध में इन ग्रंथों में विस्तार से लिखा गया है।

प्रतिक्रमण, सामायिक, स्वाध्याय, देववंदना, गुरुवंदना, नंदीश्वर आदि पर्वों में प्रातः से सायं तक किन-किन भक्तियों के पाठ कहाँ करना है? सामायिक में किस पाठ का उच्चारण करना है, प्रतिक्रमण में कौन सा पाठ करना है? स्वाध्याय किस विधि से किया जाता है? आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिनके बारे में साधुवर्ग को जानकारी होना आवश्यक है।

यह मुनिचर्या ग्रंथ पूर्वाचार्यों के द्वारा लिखित परम्परा के अनुसार क्रियाओं को करने के लिए संकलित किया गया है। अन्य स्थानों से भी ऐसे ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं लेकिन कहीं से तो प्रकाशित ग्रंथ में पूर्वाचार्यों के पाठ में संशोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है तथा किसी ग्रंथ में पूर्वाचार्यों की आगम विधि का अनुसरण नहीं भी किया जा सका है।

पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी की बार-बार यह इच्छा थी कि एक ग्रंथ सम्पूर्ण विधिपूर्वक सर्वांगीण और पद्यानुवाद सहित ऐसा प्रकाशित हो जिसमें इन कमियों को दूर किया जा सके।

इस शताब्दी के प्रथम प्रभावक जैनाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज और उनके पश्चात् इस परम्परा के समस्त आचार्यों का सानिध्य पूज्य माताजी ने प्राप्त किया है तथा उनकी क्रियाओं को भी देखा और समझा है। इसके अलावा अपने लगभग ५६ वर्ष के दीक्षित जीवन में अनेक ग्रंथों का बारीकी से पूज्य माताजी ने अध्ययन और अध्यापन भी किया है। इसीलिए आगम की विधिपूर्वक इस ग्रंथ को निबद्ध करने में पूज्य माताजी ने स्वयं अथक परिश्रम किया है।

आशा है साधुवर्ग में यह ग्रंथ समादृत होगा तथा आगम के परिप्रेक्ष्य में अहर्निश की क्रियाओं में यह ग्रंथ साधुओं के लिए सहायक सिद्ध होगा।

भगवान महावीर की परम्परा के दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द एवं परवर्ती समस्त आचार्यों की तरह आगम प्रणीत क्रियाओं को करते हुए वर्तमान के साधुगण क्रम-क्रम से कर्मों का क्षय करते हुए शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करें, ऐसी मंगलकामना है।

प्रस्तावना

–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

मुनि-आर्यिका और श्रावक-श्राविका इन सबकी सभी क्रियायें प्रातःकाल से अर्थात् सोकर उठने से ही शुरू होती हैं। उन सबमें सर्वप्रथम णमोकार मंत्र ही पढ़ा जाता है। इस "मुनिचर्या" ग्रंथ में भी सर्वप्रथम मंगलाचरण में इस णमोकार मंत्र को ही रखा है। इसे महामंत्र और अपराजित मंत्र भी कहते हैं। षट्खंडागम के मंगलाचरण में यह मंत्र निम्न प्रकार है—

णमोकार मंत्र —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

टीकाकार श्रीवीरसेनाचार्य ने "अतिशयपूजार्हत्वात् वा अर्हंत[1]" इस वाक्य से "अरहंताणं" पद की व्याख्या करके इसे भी शुद्ध माना है। वर्तमान में दिगम्बर जैन संप्रदाय में "अरिहंताणं" और "अरहंताणं" दोनों पाठ प्रचलित हैं।

संस्कृत, प्राकृत भक्तियाँ एवं दैवसिक (रात्रिक), पाक्षिक प्रतिक्रमण आदि सभी पाठ इस ग्रंथ में "क्रियाकलाप[2]" ग्रंथ के आधार से ही लिये गये हैं। अतः इस "मुनिचर्या" में अरिहंताणं और अरहंताणं ऐसे दोनों प्रकार के पदों का प्रयोग आता है, मैंने उसे सुधारा नहीं है चूँकि दोनों पाठ शुद्ध माने गये हैं।

चत्तारिमंगलपाठ—वर्तमान में "अरहंता मंगलं, अरहंता लोगुत्तमा, अरहंते सरणं पव्वज्जामि" इत्यादि, ऐसा विभक्ति सहित पाठ अधिक प्रचलित हो रहा है किंतु इस ग्रंथ में मैंने अरहंत मंगलं, अरहंत लोगुत्तमा, अरहंत सरणं पव्वज्जामि" ऐसा विभक्तिरहित प्राचीन पाठ ही रखा है।

क्रियाकलाप में यही प्राचीन पाठ है। ज्ञानार्णव के ३८ वें अध्याय में पदस्थ ध्यान के अंतर्गत विभक्ति रहित यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में भी यही प्राचीन पाठ है अतः यही प्रमाणीक है। सन् १९८३ में मैंने ब्र.माधुरी (वर्तमान आर्यिका चन्दनामती) द्वारा अनेक साधुओं एवं विद्वानों से इस विषय में पत्राचार कराया था। उसमें से पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के पत्र से विदित हुआ था कि "यह विभक्ति लगाकर संशोधित पाठ श्वेताम्बर परम्परा से आया है।" तथा क्षुल्लक श्री सिद्धसागरजी मौजमाबाद (दीक्षित आ. श्री वीरसागर जी महाराज) के पत्र में था कि "प्राकृत व्याकरण के अनुसार इस पाठ में विभक्तियाँ प्रयुक्त

---

१. षट्खण्डागम पु. १, पृ. ४५। २. "क्रियाकलापः" सम्पादक पं. पन्नालाल सोनी, ब्यावर, मुद्रक-कपूरचंद जैन, महावीर प्रेस, आगरा।

है और "एदे छ च समाणा" सूत्र के अनुसार "आ" और "अ" को समान मानकर अरहंता के "आ" स्थान में "अ" हो गया है। अत: यह विभक्ति सहित पाठ होकर भी विभक्ति रहित दिखता है एवं लाघव की दृष्टि से भी यही पाठ शुद्ध है।" इत्यादि समाधानों से भी हमें यह प्राचीन पाठ ही इष्ट है। अत: इस ग्रंथ में सर्वत्र यही प्राचीन पाठ लिया है।

सामायिकदंडक और थोस्सामिस्तव—कृतिकर्म की विधि मूलाचार ग्रंथ के आधार से इस ग्रंथ में दी गई है उसमें सामायिक दंडक और थोस्सामिस्तव को ही पढ़ना होता है।

इस ग्रंथ में पृ. ५, ६१, १८१ पर ऐसे तीन बार सामायिक दंडक पाठ आया है और पृ. ६, ६३, १८२ पेज पर तीन बार थोस्सामिस्तव पाठ आया है।

"जीवियमरणे लाहालाहे.........." यह टीकाकार का श्लोक है अत: इसे सामायिक दंडक के मूलपाठ में नहीं जोड़ना चाहिए।

थोस्सामिस्तव में "वंदामि रिट्ठणेमिं" पाठ गलत नहीं है। रिट्ठणेमिं का अरिष्टनेमि अर्थ ही निकलेगा।

लघु कृतिकर्म विधि—प्रत्येक भक्तिपाठ की प्रतिज्ञा से सामायिक दंडक व थोस्सामि पढ़ना आवश्यक है। लघुभक्तिपाठ में या कभी समयाभाव में इनको पढ़ने में प्रमाद आ सकता है अत: विधि की पूर्ति के लिए इस पुस्तक में लघु सामायिक दंडक और लघु थोस्सामि पाठ भी पृ. ८-९ पर दिया है। यह लघु पाठ मैंने प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ से लिया है अत: प्रमाणीक है।

करोम्यहं—आजकल कुछ साधु-साध्वियां "कुर्वेऽहं" क्रिया को पढ़ने लगे हैं किंतु मुझे यह संशोधन नहीं जँचा है अत: मैंने यहाँ "करोम्यहं" ऐसा आचार्य प्रणीत प्राचीनपाठ ही सर्वत्र रखा है।

सिद्धांतचक्रवर्ती श्रीवीरनंदि आचार्य ने आचारसार ग्रंथ में "करोम्यहं" पाठ ही लिया है। यथा-"क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्या: करोम्यहं[1]।"

अनगार धर्मामृत में पाक्षिक प्रतिक्रमण के लक्षण की स्वोपज्ञटीका में "करोम्यहं" क्रिया का प्रयोग पंद्रह बार आया है। उदाहरण के लिये देखिये-

"सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां......... सिद्धभक्तिकायोत्सर्गंकरोम्यहं[2]।" इत्यादि।

क्रियाकलाप में देववंदना, दैवसिक प्रतिक्रमण, पाक्षिकप्रतिक्रमण एवं अन्य क्रियाओं की प्रयोगविधि में "करोम्यहं" पाठ ही उपलब्ध है।

चारित्रसार ग्रंथ में भी-"चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य ......इत्यादि पाठों में "करोमि" क्रिया ही है। ऐसा ही सामायिक भाष्य ग्रंथ एवं प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में भी "करोमि,

१. आचारसार पृ. १९१। २. अनगार धर्मामृत मूल संस्कृत अ. ९, पृ. ६५७।

करोम्यहं" पाठ ही उपलब्ध हो रहे हैं। कुल मिलाकर सभी ग्रंथों में इस परस्मैपदी "करोमि" क्रिया ही उपलब्ध हो रही है पुन: इसे बदलकर "कुर्वेऽहं" पाठ क्यों रखा गया? यह विचारणीय है।

भक्तियों एवं प्रतिक्रमण सूत्रों के कर्ता—चैत्यभक्ति, वीरभक्ति तथा दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण एवं पाक्षिकादिप्रतिक्रमण इन दोनों प्रतिक्रमणों में प्रतिक्रमणभक्ति और प्रतिक्रमण दंडक सूत्र इनके रचयिता श्री गौतमगणधर देव हैं ऐसा इनके टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य ने माना है। यथा-"श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभि: प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्ट-देवताविशेषं नमस्करोति श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे[1]" इत्यादि।

सहस्रनाम के टीकाकार श्री अमर मुनिराज ने वीरभक्ति को भी गौतमस्वामी कृत कहा है।

सिद्धभक्ति आदि सभी संस्कृत और प्राकृत भक्तियों के टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य ने लिखा है कि-"संस्कृता: सर्वा भक्तय: पादपूज्यस्वामीकृता: प्राकृतास्तु कुंदकुंदाचार्यकृता:[2]।"

संस्कृत की-१. सिद्धभक्ति, २. श्रुतभक्ति, ३. चारित्रभक्ति, ४. योगिभक्ति, ५. आचार्यभक्ति, ६. निर्वाणभक्ति, ७. नंदीश्वरभक्ति, ८. शांतिभक्ति ये आठ भक्तियाँ आचार्य श्री पादपूज्य-पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित हैं।

संस्कृत की चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति एवं समाधिभक्ति भी श्रीपूज्यपादस्वामीकृत एवं "नि:संगोऽहं जिनानां.........." इत्यादि ईर्यापथ शुद्धि (भक्ति) को भी कुछ विद्वान् श्री पूज्यपाद स्वामी कृत ही मानते हैं।

१. प्राकृतसिद्धभक्ति २. श्रुतभक्ति ३. चारित्रभक्ति ४. योगिभक्ति ५. आचार्यभक्ति ये पाँच प्राकृत भक्तियाँ ही श्री कुंदकुंददेव रचित हैं ऐसा पं. पन्नालाल सोनी ने लिखा है। वे प्राकृत निर्वाणभक्ति के बारे में संदिग्ध थे। किन्तु कुंदकुंद भारती ग्रंथ में पं. पन्नालाल साहित्याचार्य ने पाँचों भक्तियों के साथ ६. प्राकृत निर्वाणभक्ति ७. प्राकृत पंचमहागुरुभक्ति ८. प्राकृत चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति (थोस्सामि हं जिणवरे.......में अंचलिका जोड़कर) ९. नंदीश्वर भक्ति (अंचलिका मात्र) और १०. शांतिभक्ति (अंचलिका मात्र) को लेकर ऐसी दश भक्तियों को श्रीकुंदकुंददेव कृत माना है।

इन भक्तियों का पद्यानुवाद-भावानुवाद मेरे द्वारा किया हुआ है।

लघु भक्तियाँ—बृहद् भक्तियों के किन्हीं खास श्लोकों को लेकर अंचलिका दे देने से भी लघु भक्तियाँ बन जाती हैं। जैसे चारित्रभक्ति में-

व्रतसमुदयमूल: संयमस्कंधबंधो[3]। इत्यादि अथवा

१. प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी पृ. १ (चारित्र च.आ. श्री शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था से प्रकाशित)। २. क्रियाकलाप प्रस्तावना पृ. १०। ३. क्रियाकलाप पृ. ३०२।

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनो[1].......इत्यादि एक श्लोक पढ़कर अंचलिका बोलना, लघु चारित्र भक्ति बन गई है। श्रुतभक्ति में भी——

"श्रुतमपि जिनवरविहितं.....।" मात्र एक श्लोक बृहद्भक्ति से लेकर अंचलिका जोड़कर लघु श्रुतभक्ति[2] हो गई है।

अन्य कई लघु भक्तियाँ प्रायः क्षेपक श्लोकों को पढ़कर अंचलिका पढ़ लेने से हो जाती हैं। जैसे—"प्रावृट्काले......" इत्यादि से लघु योगिभक्ति बन गई है।

इस ग्रंथ में क्रियाकलाप और प्रतिष्ठातिलक के आधार से लघु भक्तियों को दिया गया है।

निर्वाणभक्ति, नंदीश्वरभक्ति, चैत्यभक्ति, आचार्यभक्ति, शांतिभक्ति और समाधिभक्ति के क्षेपक श्लोक "भक्त्यादिक्रियासंग्रह" पुस्तक से लिए गये हैं। श्रुतभक्ति के क्षेपक श्लोक मेरे द्वारा संकलित हैं।

वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रिया में "स्वयंभुवा भूतहितेन" इत्यादि रूप से श्रीवृषभदेव से लेकर श्रीचंद्रप्रभ भगवान तक जो आठ स्तुतियाँ हैं वे श्रीसंमतभद्रस्वामी विरचित हैं।

आहार प्रत्याख्यान कब करना?——मुनि-आर्यिकायें आहार के लिए निकलते समय आचार्य के पास लघु सिद्धभक्ति और लघु योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान निष्ठापन कर आहार को जावें ऐसा कथन न तो क्रियाकलाप, मूलाचार, अनगारधर्मामृत आदि में ही है और न चा.च. आचार्यश्री शांतिसागर जी की परम्परा में ही रहा है। मैंने सन् १९५६-५७ में आचार्य श्री वीरसागर जी का चरणसानिध्य पाया है। सन् १९५७ से १९६२ तक और १९६८ से १९६९ में समाधि होने तक पूज्य शिवसागर जी के संघ में रही हूँ। अनंतर आचार्य श्री धर्मसागर जी के आचार्यत्व काल में सन् १९७५ तक उनके संघ का लाभ प्राप्त किया है। न तो इन आचार्यों ने कभी ऐसा आदेश दिया था और न कभी ऐसी क्रिया उनके सानिध्य में हुई थी फिर भी यह परम्परा कैसे चल पड़ी और "श्रमणचर्या" में कैसे लिखी गई कौन जाने?

इस "मुनिचर्या" में पृ. ९१ से पृ. ९६ तक आगम के आधार से यह प्रत्याख्यान विधि स्पष्ट की गई है।

दैवसिक प्रतिक्रमण——दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण क्रियाकलाप से लिया है। भावरूप पद्यानुवाद मेरे द्वारा रचित है। इस प्रतिक्रमण में जो कुछ संशोधन पाठ हैं उन्हें प्रायः कोष्ठक में रखा गया है या टिप्पण में दे दिया है, मूल में कहीं एक दो जगह परिवर्तन है सो यह परिवर्तन प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी के आधार से ही है। मन से मैंने कहीं भी परिवर्तन या संशोधन नहीं किया है।

"इच्छामि भंते! चरित्तायारो[3]........पाँचों दंडकों में से चार दंडकों में "तेसिं उद्दावणं" पाठ है पाँचवें में "एदेसिं उद्दावणं" पाठ है। तेसिं का अर्थ तेषां और एदेसिं का अर्थ एतेषां है। दोनों में अर्थभेद नहीं है फिर भी प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में इन दोनों पाठों का ही अर्थ किया है[4]।

१-२. प्रतिष्ठातिलक। ३. प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी पृ. १६६ से १७०। ४. प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी पृ. ८०।

अतः मैंने कई एक साधुओं के कहने पर भी एकरूपता रखने के लिए पाठ नहीं बदला है यथास्थान दोनों पाठ हैं।

आजकल "श्रमणचर्या", श्रमणाचार, विमलभक्ति संग्रह आदि आधुनिक कई एक पुस्तकों में बहुत से पाठ बदले गये हैं। जैसे कि वीरभक्ति के अंतिम श्लोक का तृतीय चरण बदल दिया गया है। जो कि ऐसा है——

क्रियाकलाप	**पृ.**	**श्रमणचर्या**	**पृ.**
देवा वि तस्स पणमंति	६६	देवा वि तं णमंसंति	४०

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में टीकाकार ने यही क्रियाकलाप वाला पाठ रखकर इसी की टीका की है। जैसे—

"देवा वि तस्स पणमंति-देवा अपि तस्य प्रणमंति[1]।" इस प्रकार अनेक संशोधन वर्तमान में किये जा रहे हैं किन्तु विचार करने की बात है कि इन टीकाकार प्रभाचंद्राचार्य तक तो यह प्राचीन पाठ ही प्रमाणभूत माना गया है और श्रीटीकाकार भी प्राकृत-संस्कृत व्याकरण व छंद शास्त्रादि के ज्ञाता अवश्य थे फिर भी उन्होंने यह पाठ नहीं बदला है। आजकल ऐसे ही अनेक संशोधन हुये हैं जो कि हमें इष्ट नहीं हैं।

पूर्वाचार्यों ने भी जहाँ कहीं पाठभेद देखे या जहाँ कहीं किसी विषय में मतभेद देखा तो उसमें से एक को हटाकर दूसरे को प्रामाणिक कहने का साहस नहीं किया, बल्कि दोनों को ही मानने का उपदेश दिया है। षट्खंडागम की धवला टीका में श्रीवीरसेनाचार्य ने तो एक जगह यहाँ तक कह दिया कि "श्री एलाचार्य के वत्स-शिष्य को इस विषय में-यह प्रामाणिक है और यह अप्रामाणिक, ऐसी जबान नहीं चलाना चाहिए....।" इत्यादि।

आज भी विद्वान या "साधु-साध्वियों" को पाठ परिवर्तन आदि कार्य नहीं करना चाहिए। प्रत्युत् पापभीरुता रखते हुए प्राचीन पाठ को ही प्रमाण मानना चाहिए।

क्रियाकलाप——इस ग्रंथ का संपादन और प्रकाशन पं. पन्नालाल सोनी ने चा.च.आचार्य श्री शांतिसागर जी की एवं संघस्थ मुनियों की प्रेरणा से वीर नि.सं. २४६२ में किया था। उन्होंने प्राप्त हस्तलिखित गुटका के आधार से और अनगारधर्मामृत के आधार से ही इसे संकलित किया था ऐसा वे स्वयं कहा करते थे अतः यह क्रियाकलाप एक प्रामाणिक ग्रंथ है। आज यह उपलब्ध नहीं है फिर भी साधुओं को इसे प्राप्त कर अवश्य देखना चाहिए व पुनः प्रकाशित कराना चाहिए।

प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी——इसे श्री जिनसेनभट्टारक ने वीर नि. सं. २४७३ में चा.च.आचार्य श्री शांतिसागर दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था से प्रकाशित किया है। पं. मोतीचंद्र गौतमचंद कोठारी, एम. ए. इसके संपादक थे। इसमें दैवसिक-रात्रिक, पाक्षिक और अष्टमी इन तीन प्रतिक्रमण सूत्रों पर श्रीप्रभाचंद्राचार्य विरचित टीका है। श्रीप्रभाचंद्राचार्य ने इन

१. प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी।

प्रतिक्रमण दंडक सूत्रों को श्रीगौतम स्वामी विरचित कहा है इसमें तीन प्रतिक्रमण होने से ही इसका ''प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी'' यह सार्थक नाम है। विद्वान साधुओं को इसका स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए इसका पुनर्मुद्रण भी अति आवश्यक प्रतीत होता है।

अष्टमी का प्रतिक्रमण—यह पाठ पाक्षिक प्रतिक्रमण से लिया गया है। अनगारधर्मामृत में सालोचना चारित्रभक्ति-चारित्रालोचना सहित चारित्रभक्ति पढ़ने का विधान है। प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी में भी अष्टमी के प्रतिक्रमण को पृथक् लिया है। इन्हीं आधारों से अष्टमी की क्रिया में यह प्रतिक्रमण जोड़ा गया है। पद्यानुवाद मेरे द्वारा रचित है। अष्टमी और पाक्षिक प्रतिक्रमण में चारित्रभक्ति के पश्चात् चारित्रालोचना के अंत में दंडक सूत्र हैं—

णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, दोसु अट्टरुद्दसंकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामेसु, मिच्छाणाणमिच्छादंसणमिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु (णवसु बंभचेरगुत्तीसु) दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु,बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अट्ठमियम्मि पक्खियम्मि (चउमासियम्मि संवच्छरियम्मि) अइक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जे तं पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।।१४।।

श्रमणचर्या आदि नई पुस्तकों में इसमें भी परिवर्तन कर दिया है। यथा—

दोसु अट्ट-रूद्द-संकिलेसु-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ-संकिलेसुपरिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीव-णिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भयेसु, अट्ठसु सुद्धीसु, णवसु बंभचेर-गुत्तीसु, दससु समण-धम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु (अट्ठमियम्मि) (पक्खियम्मि), (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि)-अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि। मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्त-मरणं, समाहिमरणं, पंडियमरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।।

क्रियाकलाप आदि सभी पुस्तकों में 'णवसु' से ही पाठ प्रारंभ है। प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी टीका ग्रंथ में भी पृ. १८६ से १९४ तक 'णवसु' से ही प्रारंभ हुआ है। अत: प्राचीन पाठ ही प्रामाणीक है। अत: पाठ परिवर्तन करके पढ़ना कथमपि उचित नहीं है।

पाक्षिक प्रतिक्रमण—पाक्षिक प्रतिक्रमण में भी पच्चीसों स्थान पर पाठ परिवर्तित हैं।

वे प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी टीका ग्रंथ से भी असंगत हैं। कुछ प्रकरण टीका ग्रंथ में नहीं हैं उन्हें क्रियाकलाप के आधार से ज्यों की त्यों पढ़ना ही मुझे उचित प्रतीत होता है। पाठ बदलने से उसका मूलरूप ही समाप्त हो जायेगा। उदाहरण के लिए देखिये—

विचारणीय-पाठ परिवर्तन—इसी प्रतिक्रमण में वीरभक्ति के पहले श्रावकों के व्रतों का वर्णन करके उनके फल को कहते हुये दंडक सूत्र है–

'जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया सावियाओ वा खुड्डय खुड्डियाओ वा अट्ठदहभवण-वासियवाणविंतरजोइसियसोहम्मीसाणदेवीओ वदिक्कमित्तउवरिम-अण्णदरमहड्ढियासु देवेसु उववज्जंति।'

जो श्रावक या श्राविका अथवा क्षुल्लक या क्षुल्लिका इन उपर्युक्त बारह व्रतों को या ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करते हैं वे अठारह स्थान को भवनवासी, वान व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म ईशान स्वर्ग की देवियों को छोड़कर ऊपर के स्वर्गों में से किसी भी स्वर्ग में महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

सन् १९५८ में ब्यावर में एक बार ब्र. श्रीलालजी ने कहा कि 'अट्ठदह' पाठ का अर्थ समझ में नहीं आता है अत: इसके स्थान में 'णट्ठदेहा' पाठ हो सकता है।'

कुछ पुस्तकों में उन्होंने ऐसा संशोधन करा दिया किन्तु मैंने कहा–पंडित जी! श्रावक-श्राविका और क्षुल्लक-क्षुल्लिका 'नष्टदेहा:'–देहरहित तो होते नहीं हैं। अत: यह संशोधन मुझे संगत नहीं लगता है। चर्चा के प्रसंग में ऐसी बात आई—

'अठारह स्थान ऐसे ढूंढने चाहिये जहाँ व्रती नहीं जाता हो तथा उन अठारह स्थानों में ये भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान की देवियाँ नहीं आनी चाहिए चूँकि इन्हें पृथक् से लिया है। तभी उमास्वामी श्रावकाचार के दो श्लोक स्मृतिपथ में आ गये, वे ये हैं—

सम्यक्त्वसंयुत: प्राणी, मिथ्यावासेन जायते।
द्वादशेषु च तिर्यक्षु, नारकेषु नपुँसके।।८८।।
स्त्रीत्वे च दुष्कृताल्पायु-दारिद्र्यादिकवर्जित:।
भवनत्रिषु षट्भूषु, तद्देवीषु न जायते।।८९।।

सम्यक्त्व से सहित जीव मिथ्यात्व के निम्नस्थानों में नहीं जाता है।

१. पृथ्वीकायिक २. जलकायिक ३. अग्निकायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. दो इंद्रिय ७. तीन इंद्रिय ८. चारइंद्रिय ९. निगोद १०. असंज्ञीपंचेन्द्रिय ११. कुभोगभूमि और १२. म्लेच्छखंड, मिथ्यात्व के इन बारह स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है। तथा १३. तिर्यंचों में १४. नरकों में १५. नपुंसक में और १६. स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता है।

पुन: पापी, अल्पायु, दारिद्रादि से वर्जित रहता है। यह सम्यग्दृष्टी भवनत्रिकों में, प्रथम नरक से अतिरिक्त छह नरकभूमियों में व स्वर्ग की देवियों में भी नहीं जाता है।

चर्चा में यह बात और आई कि यहाँ प्रतिक्रमण में तो व्रतिक श्रावकों के लिए कथन है अत: व्रतीजन तो सुभोगभूमि और मनुष्य पर्याय में भी नहीं जाते हैं क्योंकि गाथा है कि—

अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं। (गोम्मटसार कर्मकांड)

अणुव्रती और महाव्रती तो देवायु के सिवाय अन्य किसी आयु का बंध ही नहीं कर सकता है। इसलिये उपर्युक्त १६ स्थानों में, १७. सुभोगभूमि और १८. मनुष्य इन दो स्थानों को मिला देने से अठारह स्थान हो जाते हैं। व्रतिक व क्षुल्लक-क्षुल्लिका इनमें नहीं जाते हैं।

ये अठारह स्थान आ. श्रीशिवसागरजी महाराज को भी बहुत ही संगत प्रतीत हुये थे। तब ब्र.श्रीलालजी द्वारा संशोधित पाठ 'णट्ठदेहा' हटा दिया गया था।

उसके बाद वह चर्चा वहीं समाप्त हो गई थी।

कुछ दिन पूर्व श्रमणचर्या में 'अट्ठदह' पाठ को उलट कर 'दहअट्ठ' पाठ लिया गया जिसका अर्थ यह निकाला गया-'दश प्रकार के भवनवासी और आठ प्रकार के वानव्यंतर। पुन: 'श्रमणचर्या' में छपा है-'दह-अट्ठ-पंच' जिसे भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिषी देवों के भेदरूप से माना गया।

जो भी हो मेरी विचारधारा तो यही है कि यदि कुछ पाठ संशोधित भी करना है तो पुराने विद्वानों के समान उस मूलपाठ को न हटाकर कोष्ठक में उसे देना चाहिए। जैसे कि—

अट्ठदह (दह अट्ठ पंच)

इससे मूल पाठ सुरक्षित रहेगा और अन्य ग्रंथों के आधार से भी साधुओं को व विद्वानों को सोचने का अवसर मिलेगा।

ऐसे ही एक पाठ परिवर्तन और है जो कि अतीव विचारणीय है—मूल पाठ है—'से अभिमदजीवाजीवउवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवरणिज्जर बंध मोक्खमहिकुसले।'

अब इसे बदल कर ऐसा पाठ रखा गया है—'से अभिमदजीवाजीवउवलद्ध-पुण्णपावआसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले।'

मूलपाठ में नवतत्त्वों का क्रम यह था-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

परिवर्तित पाठ का क्रम ऐसा हो गया है जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

विचार करने से यह समझ में आता है कि-इस मूलपाठ के क्रम के अनुसार ही कुंदकुंददेव ने समयसार में गाथा रखी है—

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१३।।

और इसी गाथा के क्रम के अनुसार ही श्रीकुंदकुंददेव ने समयसार में अधिकार विभक्त

किये हैं। जीवाजीवाधिकार के बाद पुण्य-पापाधिकार है पुन: आस्रव अधिकार, संवर अधिकार, निर्जरा अधिकार लेकर तब बंध अधिकार है इसके बाद मोक्ष अधिकार है।

क्या इस गाथा को और समयसार के इन अधिकारों के क्रम को भी बदला जा सकता है? नहीं, पुन: यहाँ भी श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से निकले हुए दंडकसूत्रों को बदलना भी उचित नहीं लगता है। षट्खण्डागम—धवलाटीका में कई जगह ऐसे ही नवपदार्थों का क्रम है।

अभी तक हम लोग श्रीकुंदकुंददेव की गाथाओं में कहे गये क्रम को श्री गौतमस्वामी द्वारा कथित प्रतिक्रमण सूत्रों के क्रम से तुलना किया करते थे। ऐसे और भी पाठ हैं। जैसे—

''तवायारो वारसविहो''—में बहिरंग तप में ''सरीरपरिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि।'' अभ्यंतर तप में भी 'झाणं' विउसग्गो चेदि।' पाठ है।

मूलाचार में भी—''कायस्स विपरितावो विवित्तसयणासणं छट्ठं[1]।।३४६।। और आगे इसी क्रम से इनके स्वरूप का वर्णन किया है। ऐसे ही अभ्यंतर तप में-''झाणं च विउसग्गो अब्भंतरओ तवो एसो[2]।।३६०।।

आगे इसी प्रकार से पाँचवें तप में ध्यान का विस्तृत वर्णन करके छठे तप में व्युत्सर्ग का वर्णन किया है[3]।

''श्रमणचर्या'' में पाठ बदलकर 'विउसग्गो झाणं चेदि।'' ऐसा पाठ रखा है सो कहाँ तक उचित है?

ऐसे ही-इस पाक्षिक प्रतिक्रमण में श्रावकों के बारह व्रतों में शिक्षाव्रतों के नाम इस प्रकार हैं—''तत्थ पढमे सामाइयं, विदिये पोसहोवासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिमसल्लेहणामरणं।''

चारित्तपाहुड ग्रंथ में श्रीकुंदकुंददेव ने भी इसी क्रम से शिक्षाव्रत लिये हैं। ''पाँच अणुव्रत। तीन गुणव्रत-दिशिविदिशिपरिमाण, अनर्थदंडत्याग, भोगोपभोगपरिमाण। चार शिक्षाव्रत-सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिपूजा और सल्लेखनामरण। ये बारह व्रत हैं। पाँच अणुव्रत तो सर्वत्र सभी ग्रंथों में एक सदृश हैं, गुणव्रत और शिक्षाव्रतों में ही अंतर है। इस प्रतिक्रमण में और चारित्रपाहुड़ ग्रंथ में सल्लेखना मरण को अंतिम शिक्षाव्रत में ही ले लिया है। यथा—

दिसविदिसिपमाणं पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं।
भोगोपभोगपरिमाणं, इयमेवगुणव्वया तिण्णि।।२५।।
सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं अतिहि पुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते[4]।।२६।।

आदिपुराण ग्रंथ में भी सल्लेखना को चौथे शिक्षाव्रत में लिया है।

पद्यानुवाद—संस्कृत भक्तियों का एवं प्राकृत भक्तियों का पद्यानुवाद मैंने संघस्थ

१. गाथा ३४६ से ३५७ तक। २. गाथा ३६०। ३. गाथा ३६० से ४०८ तक। ४. चारित्रपाहुड़।

आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की विशेष प्रेरणा से किया था। वे कहा करती थीं–"माताजी ! आप जैसे संस्कृत के विद्वान साधु-साध्वियां नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं की भक्तियों को पढ़ते समय अर्थ समझ लेते हैं किंतु हम जैसे संस्कृत-प्राकृत व्याकरण के ज्ञान से शून्य साधु-साध्वियां अर्थ नहीं समझ पाते हैं अत: आप इन भक्तियों का और प्रतिक्रमण का हिंदी पद्यानुवाद अवश्य कर दीजिए। उनके आग्रह से मैंने सन् १९७२ में ही संस्कृत भक्तियों का पद्यानुवाद किया था बाद में सन् १९७९ में प्राकृत भक्तियों का भी अनुवाद कर दिया था।

"कुंदकुंद का भक्तिराग" नाम से पुस्तक में ये सभी भक्तियाँ पद्यानुवाद सहित छपी हैं किन्तु यह पुस्तक आर्यिका रत्नमतीजी[1] के सामने छपकर नहीं आ पाई थी।

यद्यपि उन्होंने प्रतिक्रमण के पद्यानुवाद के लिए भी बहुत ही प्रेरणा दी थी। इच्छा तो मेरी भी थी किन्तु योग नहीं आया था। किन्तु वर्ष १९९० में क्षु. चितसागर जी के भी कई पत्र प्रतिक्रमण के पद्यानुवाद के लिए आये। उस समय यह मुनिचर्या पुस्तक छप रही थी बल्कि दैवसिक प्रतिक्रमण छप रहा था। तभी[2] कार्तिक कृ. ११ को प्रात: सामायिक के बाद लेखनी उठाई और अनुवाद प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि गद्य सूत्रों को पद्य में संक्षिप्त करना कठिन था फिर भी मेरी समझ में अर्थ के जिज्ञासुओं को यह अनुवाद रुचिकर ही होगा।

दैवसिक प्रतिक्रमण व पाक्षिक प्रतिक्रमण के पद्यानुवाद की प्रशस्ति निम्न प्रकार है——

(१) प्रशस्ति——

दोहा——**वीर अब्द पच्चीस सौ-सत्रह कार्तिक सुद्य।**
चौथ तिथि के दैवसिक-प्रतिक्रमण का पद्य।।१।।
गणिनी आर्या ज्ञानमति, किया पूर्ण धर तोष।
पढ़ें अर्थ को समझकर, पावें सुख संतोष।।२।।

(२) प्रशस्ति——

दोहा——**वीर अब्द पच्चीस सौ-सत्रह मगसिर शुद्ध।**
दूज दिवस यतिप्रतिक्रमण-पाक्षिक को कर पद्य।।१।।
गणिनी आर्या ज्ञानमति, पूर्ण किया अनुवाद।
अर्थ समझकर जो पढ़ें, पावें परमाल्हाद।।२।।

त्रिविध स्वाध्याय प्रतिष्ठापन विधि——लघु भक्तियों के अनेक प्रकार होने से इस ग्रंथ में स्वाध्याय प्रारंभ व समापन विधि तीन प्रकार से दी गई है। समय और रुचि के अनुसार इन्हें करना चाहिए।

चतुर्विध आचार्य वंदना——ऐसे ही लघु भक्तियों के अनेक प्रकार की अपेक्षा से

---

१. आर्यिका रत्नमती जी हमारी गृहस्थाश्रम की माँ थीं। इनकी समाधि हस्तिनापुर में १५ जनवरी, १९८५ को हुई है। २. दिनाँक १४-१०-१९९०।

आचार्य वंदना की विधि भी इस ग्रंथ में चार प्रकार की दी गई है। समय और रुचि के अनुसार इन विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

मुनिचर्या——दिगम्बर मुनि और आर्यिका एवं ऐलक-क्षुल्लक व क्षुल्लिका इन मयूर पिच्छीधारी चतुर्विध संघ की नित्य-नैमित्तिक क्रियायें ही इस ग्रंथ में ली गई हैं। अनगार धर्मामृत के नवमें अध्याय के आधार से और छपे हुये क्रियाकलाप के अनुसार ही इसमें संपूर्ण क्रियाओं का सप्रमाण वर्णन है।

इस ग्रंथ में तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में साधुओं की अहोरात्र की क्रियायें हैं। इसमें वैरात्रिक-पश्चिम रात्रिक स्वाध्याय में पृ. १५ पर जो गणधरवलय मंत्र दिये गये हैं, उनके पढ़ने का आगम में कहीं नियम नहीं है। उन्हें मैंने स्वरुचि से दिये हैं। सामायिक समापन के समय पृ. ७५ पर जो गुर्वावली दी गई है उसके लिए भी कहीं विधान नहीं है जो मैंने गुरु परम्परा से सुना था सो पढ़ते रहने से ही यहाँ मैंने कोष्ठक में दे दिया है।

द्वितीय खण्ड में चतुर्दशी, अष्टमी आदि सम्बन्धी सभी नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है।

तृतीय खण्ड में सर्वदोषप्रायश्चित विधि व कल्याणालोचना पाठ हैं।

अनंतर सोलह कारण भक्ति, दशलक्षण भक्ति, पंचमेरु भक्ति, जम्बूद्वीप भक्ति, सुदर्शनमेरु भक्ति एवं तीर्थंकर जन्मभूमि भक्ति ये छह भक्तियाँ जो कि मेरे द्वारा रचित हैं, इन्हें भी अंत में दे दिया है। इनके पढ़ने का कोई बंधन न होने से ही मैंने नैमित्तिक क्रियाओं से अलग ही इन्हें दिया है। पुन: दीक्षा नक्षत्र, दीक्षा विधि दी गई है। अंत में एक सरस्वती स्तोत्र दिया है जो कि प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ से उद्धृत है इसमें बारह अंगों की तुलना सरस्वती माता के बारह अंगों से की है।

गणधरवलय मंत्र——क्रियाकलाप पृ. ९१ पर गणधरवलय स्तोत्र छपा है——

''जिनान् जितारातिगणान् गरिष्ठान्..........।
श्रीसिद्धिदा: सदृषीन्द्रान्।।१०१।।

इसी पृष्ठ पर टिप्पण दिया है, यथा——

संसूचितो गणधरवलयपाठ: प्रतिक्रमणपुस्तके नोपलब्धोऽत: सकलकीर्तिकृत-गणधरवलयपूजातो निष्कास्य संयोजित:।

इसका अर्थ यह है-सूचित किया गया गणधरवलय पाठ प्रतिक्रमण पुस्तक में उपलब्ध नहीं हुआ अत: मैंने सकलकीर्तिकृत गणधरवलय पूजा से निकालकर इस गणधरवलय स्तोत्र को यहाँ जोड़ दिया है।

मैंने मूलग्रंथ अनगार धर्मामृत पृ. ६५८ पर देखा-

"ततो-यथोक्तपरिकर्मानन्तरं गणी-आचार्य: "थोस्सामि" इत्यादि दंडकं गणधरवलयं च पठित्वा प्रतिक्रामेत्-प्रतिक्रमणदंडकान्-पठेत्।"

मैंने प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी पुस्तक भी पढ़ी थी। उसमें पाक्षिक प्रतिक्रमण के दंडक सूत्रों को संस्कृत टीका में इसी प्रतिक्रमण में कहे गये ''णमो जिणाणं'' आदि ४८ गणधरवलय मंत्रों की टीका है। इन मंत्रों की टीका के बाद पृ. ९६ पर-इति गणधरवलयाख्य प्रतिक्रमणमंगलदंडक:।। ऐसा पाठ आया है।

ब्यावर के सन् १९५८ के चातुर्मास में मैंने ''क्रियाकलाप'' ग्रंथ के संपादक पं. पन्नालाल सोनी को यह पंक्ति दिखायी। तब उन्होंने कहा-''पहले मैंने ''णमो जिणाणं'' आदि ४८ मंत्रों को ''गणधरवलय'' पाठ नहीं समझा था अत: मैंने श्रीसकलकीर्ति विरचित ''गणधरवलयपूजा विधान'' पुस्तक से गणधरवलय स्तोत्र को निकालकर यहाँ जोड़ा था। यह मेरे से गलती हुई है यह स्तोत्र अनावश्यक-अधिक यहाँ जुड़ गया है। अगले संस्करण में इस स्तोत्र को मैं निकाल दूँगा। उन्होंने यह भी कहा-

''माताजी ! आपकी तरफ से दूसरे ग्रंथ से निकालकर यहाँ पाठ बढ़ाने से ''कहीं मेरे से गलत कार्य तो नहीं हो रहा है?'' इसी डर से ही मैंने टिप्पण दे दिया था। आपने प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी दिखा दी सो बहुत ही अच्छा हुआ...... इत्यादि।

अस्तु ! वास्तव में इस टिप्पण से पं. पन्नालाल सोनी आदि पुराने विद्वानों की पापभीरुता व सत्यता स्पष्ट दिखती है। आज के विद्वानों को यह गुण नहीं छोड़ना चाहिए।

सन् १९६२ में ब्र. श्रीलालजी काव्यतीर्थ ने ''शांतिसागर जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था'' से मेरे द्वारा लिखित ''यतिक्रियामंजरी'' पुस्तक छपाई थी। उसमें पाक्षिकप्रतिक्रमण में मैंने पं. पन्नालाल सोनी से परामर्श लेकर ही यह ''जिनान् जितारातिगणान्'' इत्यादि स्तोत्र निकाल दिया था[१]।

अभी भी मैंने इस ''मुनिचर्या'' में पाक्षिक प्रतिक्रमण में यह स्तोत्र पाठ मूल में नहीं रखा है किन्तु इस प्रतिक्रमण में इन ४८ गणधरवलय मंत्रों से संबंधित इस स्तोत्र को पृ. १८४ पर दे दिया है।

पाठांतर व पाठ अधिक—'क्रियाकलाप' और 'प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी' में हमें पाठांतर-पाठभेद मिले हैं। उनमें से कतिपय पाठांतरों को मैंने इस ''मुनिचर्या'' में लिया है। कहीं-कहीं पाठांतर को टिप्पण में दिया है तो कहीं मूल में कोष्ठक में दे दिया है। जैसे इस मुनिचर्या में पृ. ४१ पर मूल में 'वीर' पाठ है, प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी के आधार से 'घोर' यह पाठांतर टिप्पण में दे दिया है। ऐसे ही अष्टमी के प्रतिक्रमण में इसमें पृ. १२९ पर 'आहावरे' और 'दुव्वे' पाठ हैं। प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी के आधार से वहीं कोष्ठक में (अहावरे) पाठ दिया है और 'दुव्वे' का पाठभेद 'दोच्चे' टिप्पण में दे दिया है, इत्यादि।

यतिक्रियामंजरी—सन् १९५८ का चातुर्मास ब्यावर (राजस्थान) में हुआ था।

१. यतिक्रियामंजरी पृ. १४३।

आचार्य श्री शिवसागर जी के विशाल संघ में मैं भी थी। मैं कई एक आर्यिकाओं के साथ ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में ऊपर कमरे में ठहरी थी। उन दिनों मैं दिन में संघस्थ साधु-साध्वी, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी, श्राविकाओं आदि को अध्यापन कराती थी और रात्रि में सामायिक के बाद सरस्वती भवन के अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का अवलोकन करती रहती थी और 'यतिक्रियामंजरी'' नाम से मुनि-आर्यिकाओं की नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का लेखन व संकलन भी कर रही थी।

मुनियों की त्रिकाल सामायिक व त्रिकाल देववंदना क्रिया एक ही है। उसकी विधि क्रियाकलाप, अनगार धर्मामृत, चारित्रसार, आचारसार, भावसंग्रह आदि ग्रन्थों में वर्णित है, कहीं संक्षिप्त संकेत हैं तो कहीं विस्तृत वर्णन है। हस्तलिखित संहिताग्रंथ-एकसंधिसंहिता, इंद्रनंदिसंहिता आदि और अकलंक प्रतिष्ठा पाठ आदि अनेक ग्रंथों का अवलोकन कर उनसे देववंदना-सामायिक संबंधी प्रकरण के उद्धरण निकालती रहती थी। इसी प्रकार मुनियों-आर्यिकाओं को रात्रिक प्रतिक्रमण पूर्वाण्ह सामायिक के पहले करना चाहिये इस संबंधी प्रमाण भी निकाले थे।

इस कार्य में पं. पन्नालाल जी सोनी भी रुचि रखते थे और कभी-कभी अनेक उद्धृत प्रमाणों को देखकर प्रसन्नता व्यक्त किया करते थे।

कुल मिलाकर मैंने सम्पूर्ण नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं के बहुत से प्रमाण अनेक ग्रंथों के आधार से संकलित किये थे। तथा प्रत्येक क्रियाओं के प्रमाण के साथ विधिवत् उन-उन भक्तियों का पाठ भी यथास्थान ही दे दिया था। इसी का नाम 'यतिक्रियामंजरी' रखा था।

यह पुस्तक ब्र. श्रीलालजी को छापने के लिये दी गई तब उन्होंने क्रियाओं के प्रमाण सम्बन्धी उद्धृत श्लोक आदि नाममात्र के रहने दिये बाकी सभी प्रमाण के पाठ उसमें से निकाल कर मुझे वापस दे दिये और बोले-

''माताजी ! इस क्रिया की पुस्तक में ज्यादा विषय मत बढ़ाओ। इन प्रमाणों की पुस्तक अलग से छप जायेगी।'' तभी उस ''यतिक्रियामंजरी'' में प्रारंभ में स्तोत्र पाठ आदि जोड़कर यह पुस्तक छपने दे दी गई। इसमें मैंने अनेक साधु व विद्वानों के आग्रह पर भी अपना नाम नहीं दिया था। उसके संपादक के रूप में ब्र.सूरजमल जी का नाम दिया है। यह पुस्तक सन् १९६२ में छप चुकी है। उस समय के जो प्रमाणों का मेरा संकलन था उसमें मैंने बहुत ही परिश्रम किया था। सन् १९६२ में दिसम्बर में सम्मेद शिखर यात्रा के लिए विहार करते समय मैंने वह बस्ता कुचामन में एक श्रावक को सुरक्षित रखने के लिए दे दिया था। खेद है कि उनसे मुझे आज तक वह बस्ता उपलब्ध नहीं हो पाया। अस्तु !

इस ''यतिक्रियामंजरी'' में संकलन कर्त्री में अपना नाम न देने में मेरी नि:स्पृहता ही मूल कारण थी। यद्यपि सन् १९५५ में सर्वप्रथम रचना में ''सहस्रनाम के मन्त्र'' की पुस्तक

"श्रीजिनसहस्रनाम व्रतविधि व पूजा" को क्षुल्लिका श्रीविशालमती जी ने छपाया था उसमें क्षुल्लिकावस्था में मेरा नाम (क्षु.वीरमती माताजी) डाला था। फिर भी सन् १९६०-६१ में मैंने पुस्तक संकलन में अपना नाम देना सर्वथा मना कर दिया था। इसके बाद सन् १९६६ में सोलापुर चातुर्मास में मेरे द्वारा लिखित "श्री बाहुबली चरित, "भक्तिसुमनावली", "व्रतविधिसुमनावली" आदि पुस्तकें छपीं तब ब्र.सुमतीबाई आदि अनेक विदुषी व विद्वानों ने मेरे से निवेदन किया-

"माताजी! अपनी किसी भी कृति में अपना नाम न डालने से पहली बात तो उनकी प्रमाणिकता नहीं रहती है और दूसरी बात यह है कि कोई मायाचारी विद्वान उस कृति में अपना नाम डालकर अपनी कृति घोषित कर देते हैं। उन्होंने "पंचाध्यायी" "अमरकोष" आदि अनेक पुरातन ग्रंथों के व आज के भी कई पुस्तक आदि के नाम बताये। तब मैंने पुस्तकों में अपना नाम देना स्वीकृत किया था।

इस मुनिचर्या ग्रंथ में मैंने प्रत्येक क्रियाओं की प्रामाणिकता के लिए मूलाचार, अनगारधर्मामृत आदि ग्रंथों के उद्धरण भी यथास्थान दे दिये हैं। इस ग्रंथ के लेखन में- १. क्रियाकलाप, २. मूलाचार, ३. आचारसार, ४. अनगारधर्मामृत, ५. चारित्रसार, ६. प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी, ७. सामायिक भाष्य, ८. दशभक्त्यादिसंग्रह, ९. धवला पुस्तक-९, १०. कुंदकुंद भारती और ११. कुंदकुंद का भक्तिराग इन ग्रंथों का उपयोग किया गया है। इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है, जो कुछ भी है वह सब पूर्वाचार्यों का ही है फिर भी पद्यानुवाद आदि में कहीं भी कोई कमी रह गई हो या कुछ असंगत हो तो विद्वान् साधुवर्ग मुझे अवश्य ही सूचित करें कि जिससे आगे उस पर विचार कर उसे संशोधित किया जा सके।

भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी, श्री कुंदकुंददेव, श्री पूज्यपादस्वामी और श्रीसमंतभद्रस्वामी के श्रीचरणों में मेरा कोटि-कोटि वंदन है कि जिन्होंने पंचमकाल के साधु-साध्वियों के लिए प्रतिक्रमण, देववंदना, भक्तिपाठ की रचना करके सभी साधुवर्ग पर अनंत उपकार किये हैं। इस युग के सभी साधुवर्ग इस "मुनिचर्या" ग्रंथ को पूर्वाचार्यों की कृति मानकर ही इसका समादर करेंगे और अपनी नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं के करने में सावधान रहेंगे ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

प्रतिक्रमण आदि के मूलकर्ता

श्री गौतम गणधर स्वामी

-आर्यिका चन्दनामती

भगवान महावीर की दिव्यध्वनि को सुनकर अंतर्मुहूर्तमात्र में द्वादशांग रूप में निबद्ध करने वाले श्री गौतम स्वामी का नाम तीर्थंकर महावीर के साथ जुड़ा हुआ है। उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है विशेष जानकारी हेतु अन्य ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिए।

मगध देश में ब्राह्मण नामक नगर में शांडिल्य ब्राह्मण एवं उसकी स्थंडिला नामक पत्नी के इंद्रभूति गौतम नाम का पुत्र था। वह गौतम ब्राह्मण एक बार अपने पाँच सौ शिष्यों को अध्ययन करा रहा था उसी समय सौधर्म इंद्र एक वृद्ध पुरुष का रूप धारण कर सभा में पधारते हैं और गौतम से कतिपय प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। तब गौतम ने कहा कि चल, मैं तेरे गुरु के पास ही वाद-विवाद करूँगा, क्योंकि उसे तो अपने ज्ञानीपने का बड़ा अहंकार था। महावीर स्वामी के समवसरण में पहुँच कर मानस्तम्भ को देखते ही उसका मान गलित हो गया और उन्हें सम्यक्त्व प्रगट हो गया। तभी "जयति भगवान......" इत्यादि वचन रूप स्तुति बोलते हुए समवसरण में प्रवेश कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। उसी समय उन्हें अवधि और मन:पर्यय ज्ञान प्रगट हो गया और भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी।

गौतम स्वामी द्वारा रचित दो अमूल्य रचनाएँ दिगम्बर जैन समाज में अतिशय मान्यता को प्राप्त हैं।

१. चैत्यभक्ति, २. प्रतिक्रमण पाठ।

चैत्यभक्ति ३५ श्लोकों में विविध छन्दों के द्वारा तीनों लोकों के कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयों का सरस, सुन्दर वर्णन है तथा मुनि आर्यिका आदि जिस प्रतिक्रमण को प्रतिदिन प्रात: और सायंकाल में करते हैं वह दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण तथा पंद्रह दिन में होने वाला या चार महिना या एक वर्ष में होने वाला बड़ा प्रतिक्रमण तथा अष्टमी आदि में होने वाली आलोचना-ये तीनों प्रतिक्रमण श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित हैं।

इस "मुनिचर्या" ग्रंथ में ये सभी प्रतिक्रमण दिए गए हैं साक्षात् गौतम स्वामी के मुख से विनिर्गत इन प्रतिक्रमण सूत्रों को जितनी श्रद्धा भक्ति के साथ पठन-पाठन किया जाएगा उतनी ही कर्मों की निर्जरा विशेष होगी।

तीर्थंकर महावीर को जिस दिन निर्वाण की प्राप्ति हुई थी उसी दिन सायंकाल में गौतमस्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी इसीलिए क्रम परम्परा में महावीर स्वामी के पश्चात् गौतम गणधर को नमस्कार किया गया है।

वे श्री गणधर गौतम स्वामी हम सभी को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति करावें। इसी भावना के साथ उनके श्री चरणों में शतश: नमोऽस्तु।

भक्तियों के रचयिता
आचार्यद्वय का परिचय

–आर्यिका चन्दनामती

आचार्य कुंदकुंददेव—दिगम्बर जैन आम्नाय में कौन ऐसा व्यक्ति है जो श्री कुंदकुंद स्वामी का नाम नहीं जानता क्योंकि मंगलाचरण में ही गौतम स्वामी के पश्चात् कुंदकुंदाचार्य का स्मरण किया जाता है।

श्री कुंदकुंद मुनिराज का जन्म दक्षिण भारत के ''कौण्डकुन्दपुर'' नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम कर्मण्डु और माता का नाम श्रीमती था।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी के समय में कुछ मतभेद हैं फिर भी ग्रंथों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ये आचार्य श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली के अनंतर ही हुए हैं। नन्दिसंघ की पट्टावली में लिखा है कि कुंदकुंद वि.सं. ४९ में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए। ४४ वर्ष की अवस्था में उन्हें आचार्य पद मिला। ५१ वर्ष १० महीने तक वे उस पद पर रहे। ९५ वर्ष १० महीने और १५ दिन की आयु में उनकी समाधि हुई।

आचार्य श्री ने अपने दीक्षित जीवन में ८४ पाहुड़ ग्रंथ लिखे तथा मूलाचार, कुरलकाव्य, दशभक्ति आदि रचनाएँ भी उल्लिखित हैं। इनके नामों में कुंदकुंद, पद्मनंदि, गृद्धपिच्छ, वट्टकेर, एलाचार्य आदि नाम भी प्रसिद्ध हैं।

आज इनकी कृतियों में से समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, दशभक्ति आदि ९ ग्रंथ उपलब्ध हैं। प्रस्तुत मुनिचर्या ग्रंथ में आचार्य श्री द्वारा रचित प्राकृत भक्तियाँ भी दी गई हैं।

इनके आदर्श जीवन से आज के आत्म हितैषियों को अपना श्रद्धान व जीवन समुज्ज्वल बनाना चाहिए।

आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी—दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रांत के कोले नामक ग्राम में एक ब्राह्मण परिवार में श्री पूज्यपाद स्वामी ने जन्म लिया था। इनके पिता का नाम माधवभट्ट और माता का नाम श्रीदेवी था। इनका घर का नाम देवनंदि था।

ये एक दिन अपनी वाटिका में विचरण कर रहे थे कि इनकी दृष्टि सांप के मुख में फँसे हुए मेंढक पर पड़ी इससे उन्हें विरक्ति हो गई और दीक्षा लेकर महामुनि बन गए। कथा में ऐसा वर्णन आता है कि ये अपने पैरों में गगनगामी लेप लगाकर विदेह क्षेत्र जाया करते थे।

आचार्यश्री पूज्यपाद स्वामी वि.सं. ३०० के पश्चात् हुए हैं। आपके द्वारा रचित निम्न कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं—

१. दशभक्ति, २. पंचामृताभिषेक, ३. सर्वार्थसिद्धि, ४. समाधितन्त्र, ५. इष्टोपदेश, ६. जैनेन्द्र व्याकरण, ७.सिद्धिप्रियस्तोत्र।

प्राय: इन सभी ग्रंथों का अध्ययन और स्वाध्याय वर्तमान में खूब चल रहा है। पूज्यपाद स्वामी की संस्कृत भक्तियाँ तो साधुओं की प्रत्येक क्रियाओं में प्रचलित हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में भी इनकी समस्त संस्कृत भक्तियाँ और पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा किया गया उनका पद्यानुवाद भी दिया गया है।

श्री पूज्यपाद का प्रथम नाम ''देवनंदि'' था। पुन: बुद्धि की महत्ता से ये ''जिनेन्द्रबुद्धि'' कहलाए। देवताओं द्वारा उनके चरणकमल पूजे गए थे अत: ये ''पूज्यपाद'' नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। किसी समय एक देव ने इन्हें विमान में बैठाकर अनेक तीर्थों की यात्रा कराई। मार्ग में एक जगह इनकी नेत्र ज्योति नष्ट हो गई अत: शान्त्यष्टक (शांतिभक्ति) की रचना कर भक्ति के प्रसाद से पुन: ज्यों की त्यों दृष्टि प्राप्त की।

ऐसे महामुनिराज के चरणों में शत शत वंदन।

आभार

श्री कैलाशचंद्र जैन एवं श्रीमती सरलेश जैन की पुत्रवधू
श्रीमती नंदिनी जैन ध.प. श्री नीरज जैन
एवं सुपुत्र दिव्यांशु जैन,
धर्मपुरा, दिल्ली
की ओर से इस ग्रंथ के प्रकाशन में ज्ञानदानस्वरूप
आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ,
एतदर्थ संस्थान की ओर से उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद।
आगे भी वे अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग
इसी प्रकार धर्मकार्य में करते रहें, यही मंगल भावना है।
–सम्पादक ग्रंथमाला

परमपूज्य गणिनीप्रमुख

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि—आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१(सन् १९३४)

गृहस्थ का नाम—कु. मैना

माता-पिता—श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत—ई. सन् १९५२ में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।

क्षुल्लिका दीक्षा—चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में।

आर्यिका दीक्षा—वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व—अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं २५० विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा—हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा—भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा—पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव इत्यादि। **विशेषरूप से २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा—'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा—जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

मेरे उद्गार

-पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

विगत ५० वर्षों के अन्तर्गत मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं की संख्या में १०० गुनी वृद्धि हुई है। जबकि विगत ५० वर्षों से ही इस जनकल्याणी संयम की सलिल वाहिनी को तिरोहित करने का भागीरथ प्रयत्न किया गया किन्तु उन महानुभावों को असफलता ही हाथ लगी।

गुरूणांगुरु चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के जन्मकाल से ही उनका भी जन्म हो गया था। जिन्होंने वीतरागी संतों के विषय में विगत ५० वर्षों से बहुत कुछ यद्वा-तद्वा लिखा व कहा तथा आज भी वही राग अलाप रहे हैं किन्तु उनकी आगम विरुद्ध वाणी व लेखनी दिगम्बर साधु संस्था का बाल भी बांका नहीं कर सकी। प्रत्युत एक से बढ़कर एक ज्ञान व ध्यान में लवलीन रहने वाले साधु व साध्वियाँ भारत-भू पर अवतरित होकर संयम मार्ग की शृँखला को मजबूत व दीर्घकाय बना रहे हैं।

उन्हीं में से एक हैं पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी, जिन्होंने सन् १९५३ में संयम मार्ग में प्रविष्ट होते ही चुनौतियों का सामना करना प्रारंभ कर दिया। आगम के परिप्रेक्ष्य में अविरल लेखनी चलाकर देश के कोने-कोने में ज्ञान गंगा का शीतल एवं सुमधुर जल पहुँचा दिया। बालक, वृद्ध, जवान, विद्वान, संगीतज्ञ सबके लिए दिया। चारों अनुयोगों में से किसी को भी कम या अधिक महत्व नहीं दिया। पूजन के क्षेत्र में तो माताजी ने क्रांति उत्पन्न कर दी। यही कारण है कि विगत १०-१५ वर्षों से विधान कराने वाले विद्वानों व संगीतकारों की समाज में भारी कमी प्रतीत हो रही है।

कार्य बताने वालों को देरी हो सकती है किन्तु उसकी पूर्ति करने में माताजी ने देरी नहीं की। यह 'मुनिचर्या' ग्रंथ ही लीजिए। कहने वालों ने तो दस-पाँच बार निवेदन करके या लिखने वालों ने चार-आठ बार पत्र लिखकर अपने मनोभावों को पूज्य माताजी के समक्ष रखकर अपना कर्तव्य पूरा कर दिया कि-"माताजी, प्रतिक्रमण पाठ का अर्थ हमें समझ में नहीं आता। इसका आप हिन्दी पद्यानुवाद कर दीजिए। आपका हम लोगों पर बड़ा उपकार होगा।" फिर माताजी को कहाँ चैन, शारीरिक स्वस्थता न होते हुए भी अपनी कलम को सूखने नहीं दी। प्रारंभ कर दिया 'प्रतिक्रमण का हिन्दी पद्यानुवाद', न केवल प्रारंभ कर दिया अपितु शीघ्र ही कार्य पूर्ण भी कर दिया। अब किसी से पूछने की आवश्यकता शायद नहीं पड़ेगी कि हम जो पढ़ रहे हैं इसका क्या अर्थ है। इस पुस्तक में सब कुछ स्पष्ट कर दिया गया है।

इस कृति का तृतीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इससे मुझे अतीव प्रसन्नता है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान–संक्षिप्त परिचय

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् १९७४ में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं—

१. सन् १९७२ से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

२. सन् १९७४ से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

३. सन् १९७४ से १९८५ तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

४. सन् १९७४ से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है—कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।

५. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग १५००० ग्रंथ संग्रहीत हैं।

६. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

७. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

८. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

९. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

१०. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

११. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

१२. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं शारीरिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् १९७२ में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् १९९० से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

१. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-६।
२. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
३. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-१९, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
४. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
५. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
६. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
७. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२।
८. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
९. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
१०. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
११. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
१२. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२।
१३. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
१४. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
१५. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
१६. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।

परम संरक्षक

१. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
२. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, ७९२ विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।

३. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
४. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
५. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
६. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
७. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
८. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
९. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
१०. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
११. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
१२. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
१३. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
१४. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
१५. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-७।
१६. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
१७. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
१८. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

(१) नित्यक्रियायें

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या
१.	णमोकार मंत्र	१
२ .	मंगलाचरण	१
३.	यतियों के मूलगुण	१
४.	आर्यिकाओं की आवश्यक क्रियायें	२
५.	अहोरात्रि के कृतिकर्म	२
६.	क्षुल्लक, ऐलक की आवश्यक क्रियायें	३
७.	कृतिकर्म का लक्षण	३
८.	कृतिकर्म प्रयोग विधि/कायोत्सर्ग विधि	५
९.	लघु कृतिकर्म विधि/कायोत्सर्ग विधि	८
१०.	नित्यक्रियायें	९
११.	सुप्रभातस्तोत्र	१०
१२.	वैरात्रिक स्वाध्याय प्रारम्भ विधि	१२
१३.	गणधरवलय मंत्र	१५
१४.	स्वाध्याय निष्ठापन विधि	१६
१५.	दिक्शुद्धि कब और कैसे करें?	१६
१६.	पूर्वाण्ह स्वाध्याय हेतु दिक्शुद्धि विधि	१६
१७.	कायोत्सर्ग का लक्षण	१७
१८.	कायोत्सर्ग कब और कितने करना?	१७
१९.	दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमणम् (प्राकृत)	१८
२०.	दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण (हिन्दी पद्यानुवाद)	१८
२१.	रात्रियोगनिष्ठापन कब और कैसे करें?	४८
२२.	रात्रियोगनिष्ठापना क्रिया	४८
२३.	सामायिक कब और कैसे?	५०
२४.	वन्दना योग्य मुद्रा	५२
२५.	बैठकर भी देववंदना करने का विधान	५२
२६.	चैत्यभक्ति में तीन प्रदक्षिणा	५२

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या
२७.	अथ दृष्टाष्टक स्तोत्र	५३
२८.	ईर्यापथशुद्धि	५४
२९.	देववंदना (सामायिक)	५८
३०.	देववंदना (सामायिक) (पद्यानुवाद)	५८
३१.	गुर्वावली	७५
३२.	चतुर्दिग्वन्दना	७५
३३.	गुरुवंदना कब और कैसे?	७६
३४.	आचार्य वंदना	७७
३५.	अभिषेक वंदना कब और कैसे करें?	८०
३६.	अभिषेकवंदना क्रिया	८१
३७.	पूर्वाण्ह स्वाध्याय कब और कैसे करें?	८५
३८.	सिद्धांत ग्रंथ कौन-कौन से हैं?	८६
३९.	स्वाध्याय में भक्तियाँ	८६
४०.	पौर्वाण्हिक स्वाध्याय प्रारम्भ विधि	८६
४१.	स्वाध्याय निष्ठापन विधि	९०
४२.	अपराण्हिक स्वाध्याय हेतु दिक्शुद्धि	९१
४३.	आहारचर्या कब और कैसे?	९१
४४.	नवधा भक्ति	९१
४५.	प्रत्याख्यान विसर्जन विधि	९२
४६.	प्रत्याख्यान ग्रहण विधि	९३
४७.	गुरु के पास प्रत्याख्यान ग्रहण विधि	९३
४८.	गोचार प्रतिक्रमण कब और कैसे करें?	९६
४९.	मध्यान्ह देववंदना	९७
५०.	आचार्य वंदना	९७
५१.	अपराण्हिक स्वाध्याय विधि	९९
५२.	पूर्वरात्रिक स्वाध्याय हेतु दिक्शुद्धि	१०२
५३.	दैवसिक प्रतिक्रमण कब करें?	१०२
५४.	आचार्य वंदना	१०३
५५.	रात्रियोग प्रतिष्ठापना कब और कैसे करें?	१०६
५६.	रात्रियोग प्रतिष्ठापना विधि	१०६

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या
५७.	अपरान्हिक देववंदना विधि	१०९
५८.	पूर्वरात्रिक स्वाध्याय कब करें?	१०९
५९.	पूर्वरात्रिक स्वाध्याय विधि	१०९

इति नित्यक्रियायें

(२) नैमित्तिक क्रियायें (पर्वचर्या)

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या
६० .	चतुर्दशी क्रिया कब और कैसे करें?	११०
६१.	चतुर्दशी क्रिया विधि	११०
६२.	द्वितीय चतुर्दशी क्रिया विधि	१११
६३.	पाक्षिकी क्रिया कब करें?	११२
६४.	पाक्षिकी क्रिया विधि	११२
६५.	अष्टमी क्रिया कैसे करें?	११२
६६.	अष्टमी पर्व क्रिया	११२
६७ .	सिद्ध वंदना कैसे करें?	१४४
६८.	सिद्ध प्रतिमा वंदना क्रिया	१४५
६९.	जिन प्रतिमा वंदना क्रिया	१४५
७०.	अपूर्व चैत्य वंदना कब और कैसे?	१४५
७१.	अपूर्व चैत्यवंदना अष्टमी क्रिया	१४५
७२.	पाक्षिक प्रतिक्रमण कब और कैसे करें?	१४६
७३.	पाक्षिकादि-प्रतिक्रमणम्	१५०
७४.	पाक्षिकादि प्रतिक्रमण (हिन्दी पद्यानुवाद)	१५०
७५.	श्रुतपंचमी क्रिया विधि	२५९
७६.	श्रावकों की श्रुतपंचमी क्रिया	२६३
७७.	सिद्धांत ग्रंथ वाचना क्रिया	२६३
७८.	आचार ग्रंथ वाचना क्रिया	२६४
७९.	संन्यास प्रारम्भ की क्रिया कब और कैसे करें?	२६४
८०.	संन्यास ग्रहण क्रिया	२६५
८१.	क्षपक के पास स्वाध्याय ग्रहण क्रिया	२६५
८२.	अष्टान्हिक क्रिया कब और कैसे करें?	२६६
८३.	अष्टान्हिक या नंदीश्वर क्रिया	२६६

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या
८४.	अभिषेक वंदना क्रिया	२७९
८५.	मंगलगोचर क्रिया कब और कैसे करें?	२७९
८६.	मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना क्रिया	२८०
८७.	मंगलगोचर प्रत्याख्यान क्रिया कब और कैसे करें?	२८१
८८.	मंगलगोचर प्रत्याख्यान क्रिया	२८१
८९.	वर्षायोग ग्रहण कब और कैसे करें?	२८२
९०.	वर्षायोग ग्रहण क्रिया	२८३
९१.	वर्षायोग निष्ठापन कब और कैसे करें?	३०१
९२.	वर्षायोग निष्ठापन क्रिया	३०२
९३.	वीरनिर्वाण क्रिया कब और कैसे करें?	३०२
९४.	वीरनिर्वाण क्रिया	३०२
९५.	पांच कल्याणकों में क्रिया कब और कैसे?	३१०
९६.	पंचकल्याणक वंदना क्रिया	३११
९७.	श्री वृषभदेव निर्वाणकल्याणक वंदना क्रिया	३११
९८.	निर्वाणक्षेत्रवंदना क्रिया (लघु)	३२९
९९.	आचार्य के शरीर की वंदना क्रिया	३३४
१००.	निषद्यावंदना क्रिया	३३५
१०१.	जिनबिम्ब प्रतिष्ठा में कौन-सी भक्तियाँ कब और कैसे?	३३६
१०२.	चल-अचल जिनबिम्ब प्रतिष्ठा क्रिया	३३६
१०३.	चल जिनप्रतिमा की अभिषेक वंदना क्रिया	३३७
१०४.	अचल जिनप्रतिमा की अभिषेक वंदना क्रिया	३३७
१०५.	प्रतिमायोगधारी मुनि की वंदना कब, कौन और कैसे करें?	३३८
१०६.	प्रतिमायोगधारी मुनि की वंदना क्रिया	३३८
१०७.	मुनि केशलोंच के समय कौन-सी भक्ति करें?	३३८
१०८.	केशलोंच प्रारम्भ-समापन क्रिया	३३८

इति नैमित्तिक क्रियायें (पर्वचर्या)

(३) सुप्रभातस्तोत्रादि

१०९.	अथ सर्वदोषप्रायश्चित्तविधिः	३३९
११०.	कल्याणालोचना (प्राकृत)	३४०

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या
१११.	कल्याणालोचना (हिन्दी पद्यानुवाद)	३४०
११२.	सोलहकारण पर्व	३४८
११३.	षोडशकारणपर्व क्रिया	३४८
११४.	दशलक्षणपर्व क्रिया	३५४
११५.	पंचमेरुवंदना क्रिया	३५८
११६.	जम्बूद्वीपवंदना क्रिया	३६६
११७.	सुदर्शनमेरुवंदना क्रिया	३७२
११८.	तीर्थंकर जन्मभूमि भक्ति	३७३
११९.	दीक्षा विधि	३७६
१२०.	सरस्वती स्तोत्र	३८९
१२१.	चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर स्तुति	३९०
१२२.	आचार्यश्री वीरसागर स्तुति	३९१
१२३.	प्रशस्ति	३९२

इति सुप्रभातस्तोत्रादि

बृहद् संस्कृत भक्तियाँ

	कौन-सी भक्तियाँ	पृष्ठ
१.	ईर्यापथ शुद्धि	५४
२.	सिद्ध भक्ति	११३, १५३
३.	श्रुतभक्ति	११६
४.	चारित्र भक्ति	१२२, १५६
५.	योगि भक्ति	१०६, २०६, २८३
६.	आचार्य भक्ति	२४४, २६०
७.	चौबीस तीर्थंकर भक्ति	४४
८.	पंचमहागुरु भक्ति	२७७, २९९
९.	चैत्य भक्ति	६४
१०.	निर्वाण भक्ति	३०३
११.	नंदीश्वर भक्ति	२६६
१२.	वीरभक्ति	४०
१३.	शांतिभक्ति	१३६
१४.	समाधिभक्ति	१४१

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या

प्राकृत भक्तियाँ

कौन-सी भक्तियाँ

१.	सिद्ध भक्ति	३१२
२.	श्रुत भक्ति	३१५
३.	चारित्र भक्ति	३१७
४.	योगि भक्ति	३१९
५.	आचार्य भक्ति	२४९
६.	तीर्थंकर भक्ति	८
७.	पंचगुरु भक्ति	७१
८.	निर्वाण भक्ति	३२३

लघु भक्तियाँ

कौन-सी भक्तियाँ

१.	लघु सिद्ध भक्ति	७७, ८१, ९७
२.	लघु श्रुत भक्ति	१३, ७८, ८७, ९८
३.	लघु चारित्र भक्ति	३३०, ३३१
४.	लघु योगि भक्ति	४८, ९४
५.	लघु आचार्य भक्ति	१४, ७९, ९९
६.	लघु चैत्य भक्ति	८२, २८८
७.	लघु पंचगुरु भक्ति	८३
८.	लघु निर्वाण भक्ति	३३२
९.	लघु शांति भक्ति	८४, ३३२
१०.	लघु समाधि भक्ति	८५, ३३३

भक्तियों के क्षेपक श्लोक

कौन-सी भक्तियाँ

१.	श्रुतभक्ति के क्षेपक	३३०
२.	आचार्य भक्ति के क्षेपक	२६१
३.	निर्वाण भक्ति के क्षेपक	३०८
४.	नंदीश्वर भक्ति के क्षेपक	२७५

क्र. सं.	विषय-दर्पण	पृष्ठ संख्या
५.	चैत्य भक्ति के क्षेपक	२८०
६.	शांति भक्ति के क्षेपक	१४०, ३३२
७.	समाधि भक्ति के क्षेपक	३३३

स्वयंभूस्तोत्र

१.	वृषभजिनस्तुति	२८६
२.	अजितजिनस्तुति	२८७
३.	संभवजिनस्तुति	२९१
४.	अभिनंदनजिनस्तुति	२९२
५.	सुमतिजिनस्तुति	२९४
६.	पद्मप्रभजिनस्तुति	२९५
७.	सुपार्श्वजिनस्तुति	२९६
८.	चंद्रप्रभजिनस्तुति	२९७

१.	सामायिक दंडक	७
२.	थोस्सामिस्तव	८
३.	लघु सामायिक दंडक	१०
४.	लघु थोस्सामि	११
५.	आचार्यवंदना के चार प्रकार	७६, ९७, १०३, १५०
६.	स्वाध्याय प्रारम्भ विधि के तीन प्रकार	१२, ८६, ९९

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

मुनिचर्या

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

—अनुष्टुप् छंद—

सिद्धान्त्रत्वार्हतश्चापि सन्मतिं हृदि धारये। श्रुतदेवीं मुनीन्द्रांश्च, वंदे सज्ज्ञानलब्धये।।१।।
श्री शांतिसागराचार्यं, चारित्रचक्रवर्तिनम्। गुरूणां गुरुमीडेऽहं, गुरुभक्त्या निरंतरम् ।।२।।
श्री वीरसागराचार्यं, गुरुदेवं नमाम्यहं। यत्प्रसादात्तितीर्षामि, घोरसंसारवारिधिम् ।।३।।
भेदाभेदत्रिरत्नानां, यावत्पूर्तिर्न मे भवेत्। त्रयोदशक्रियां तावत्, भावयामि मुहुर्मुहुः।।४।।
आवश्यकक्रियाशुद्ध्यै, बोधिसमाधिसिद्धये। वर्ण्यत आनुपूर्व्येयं, मुनिचर्याविधिर्मया[1] ।।५।।

यतियों के मूलगुण —

पंचयमहव्वयाइं, समिदीओ पंच जिणवरुद्दिट्ठा। पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो।।२।।
आचेलकमण्हाणं खिदिसयणमदंतघंसणं चेव। ठिदिभोयणेयभत्तं मूलगुणा अट्ठवीसा दु[2] ।।३।।

अर्थ — पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक, लोच, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदंतधावन, स्थितिभोजन और एकभक्त ये अट्ठाईस मूलगुण श्री जिनेन्द्रदेव ने मुनियों के लिए कहे हैं।

यहाँ श्रमण, यति, मुनि, साधु और अनगार ये सब पर्यायवाची नाम हैं। इन शब्दों से दिगम्बर मुनि विवक्षित हैं। इनके तीन भेद होते हैं-आचार्य, उपाध्याय और साधु। इन सभी के ये अट्ठाईस मूलगुण होते ही हैं तथा आचार्य और उपाध्याय के ३६ और २५ भी मूलगुण माने हैं जो कि उनके विशेष गुण हैं।

१. गणिनी ज्ञानमती कृत। २. मूलाचार गाथा २-३।

उत्तरगुण — बारह तप और बाइस परीषह ये चौंतीस उत्तर गुण माने गये हैं।

यहाँ 'मुनिचर्या' ग्रंथ में मूलगुणों के अन्तर्गत जो छह आवश्यक क्रियाएं हैं उनके प्रयोग की विधि का ही वर्णन है।

आर्यिकाओं की आवश्यक क्रियायें —

एसो अज्जाणं पि अ सामाचारो जहाक्खिओ पुव्वं।
सव्वह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहाजोग्गं[1]।।१८३।।

मूलाचार ग्रंथ में पूर्व में जैसी विधि मुनियों के लिए कही गयी है वैसी ही यह समाचारविधि आर्यिकाओं को भी सम्पूर्ण अहोरात्र में यथायोग्य करनी चाहिए।

अन्तर इतना ही है कि ''**जहाजोग्गं-यथायोग्यं आत्मानुरूपो वृक्ष-मूलादिरहितः। सर्वस्मिन्नहोरात्रे एषोऽपि सामाचारो यथायोग्यमार्यिकाणां आर्यिकाभिर्वा प्रकटयितव्यो विभाष्यितव्यो वा यथाख्यातः पूर्वस्मिन्निति।**''

अपने अनुरूप — वृक्षमूल आदि योगों से रहित पूर्वकथित सर्व ही समाचार विधि अहोरात्र में आर्यिकाओं को भी करनी चाहिए। मूलाचार की इस गाथा से और टीका से स्पष्ट है कि आर्यिकाओं के लिए पूर्वकथित वे ही अट्ठाईस मूलगुण हैं और वे ही प्रत्याख्यान, संस्तर ग्रहण आदि तथा वे ही औघिक और पदविभागिक समाचार माने गये हैं जो कि मूलाचार में चार अध्यायों में गाथा १८६ तक वर्णित हैं। मात्र ''यथायोग्य'' पद से टीकाकार श्री वसुनंदि आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि आर्यिकाओं को वृक्षमूल, आतापन, अभ्रावकाश और प्रतिमायोग आदि उत्तरयोगों को करने का निषेध है। यही कारण है कि आर्यिकाओं के लिए पृथक् दीक्षाविधि या पृथक् चर्या और क्रियाविधि आदि का ग्रंथ नहीं है।

आचेलक्य मूलगुण में आर्यिकाओं के लिए दो साड़ी का विधान है। यथा —

पर्यायजन्य असमर्थता के कारण अपने गुप्तांगों को ढकने हेतु आर्यिकाओं के लिए दो वस्त्र (दो साड़ी) का विधान है।[2]

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज कहते थे कि आर्यिकायें बैठकर करपात्र में आहार लेती हैं और एक साड़ी पहनती हैं। ये दोनों भी इनके मूलगुण ही हैं।

आर्यिकाओं को दीक्षा देते समय उन्हें अट्ठाईस मूलगुण दिये जाते हैं एवं मुनियों की दीक्षाविधि के ही संस्कार किये जाते हैं। यद्यपि छठे गुणस्थान योग्य संयम न होने से इनके पाँच महाव्रत उपचार से कहे गये हैं फिर भी ग्रंथों में इन्हें संयतिका, महाव्रतिका आदि पदों से कहा गया है। यही कारण है कि इनकी नवधाभक्ति पूजा आदि भी मुनियों के समान ही मानी गई है।

अहोरात्रि के कृतिकर्म —

चत्तारि पडिक्कमणे किदियम्मा तिण्णि होंति सज्झाए।
पुव्वण्हे अवरण्हे किदियम्मा चोद्दसा होंति[3]।।६०२।।

''चार प्रतिक्रमण के और तीन स्वाध्याय के ऐसे पूर्वाण्ह के सात कृतिकर्म और अपरान्ह के

१. मूलाचार अ. ४ गा. १८३। २. प्रायश्चित्त ग्रंथ। ३. मूलाचार।

सात कृतिकर्म ऐसे चौदह कृतिकर्म होते हैं।'' अथवा पश्चिम रात्रि[१] में प्रतिक्रमण के चार, स्वाध्याय के तीन और वंदना के दो, सूर्य उदय होने पर स्वाध्याय के तीन और मध्यान्ह वंदना के दो इस प्रकार पूर्वाण्ह कृतिकर्म के ये चौदह हुए, उसी प्रकार अपरान्ह काल में स्वाध्याय के तीन, प्रतिक्रमण के चार, वंदना के दो, रात्रियोग ग्रहण-विसर्जन में योगभक्ति के दो और पूर्व रात्रि में स्वाध्याय के तीन इस प्रकार अपरान्हिक क्रिया में चौदह कृतिकर्म होते हैं। अहोरात्रि के कुल मिलाकर अट्ठाईस कृतिकर्म होते हैं। यहाँ पर गाथा में प्रतिक्रमण और स्वाध्याय का ग्रहण उपलक्षण मात्र है इसलिए सभी क्रियायें इन्हीं में अन्तर्भूत हो जाती हैं[२]।''

अनगार धर्मामृत में भी कहा है—

स्वाध्याये द्वादशेष्टा षड्वंदनेष्टौ प्रतिक्रमे। कायोत्सर्गा योगभक्तौ द्वौ चाहोरात्रगोचरा:[३]।।७५।।

''चार बार के स्वाध्याय के १२, त्रिकाल वंदना के ६, दो बार के प्रतिक्रमण के ८ और रात्रियोग ग्रहण-विसर्जन में योग भक्ति के २, ऐसे २८ कायोत्सर्ग साधु के अहोरात्र विषयक होते हैं।'' इनका स्पष्टीकरण यह है कि—

त्रिकाल देववंदना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्तिसंबंधी दो-दो २×३=६, दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण में, सिद्ध, प्रतिक्रमण, निष्ठितकरणवीर और चतुर्विंशति तीर्थंकर इन चार भक्ति संबंधी चार-चार-४×२=८, पूर्वान्ह, अपरान्ह, पूर्वरात्रिक और अपररात्रिक इन चार कालिक स्वाध्याय में—स्वाध्याय के प्रारम्भ में श्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति एवं समाप्ति में श्रुतभक्ति ऐसे तीन-तीन भक्तिसम्बन्धी ४×३=१२, रात्रियोग प्रतिष्ठापन में योगिभक्ति सम्बन्धी एक और निष्ठापन में एक ऐसे २, इस तरह सब मिलकर ६+८+१२+२=२८ कायोत्सर्ग किये जाते हैं। ये कायोत्सर्ग विधिवत् किये जाने से ''कृतिकर्म'' कहलाते हैं।

क्षुल्लक, ऐलक की आवश्यक क्रियायें —

उद्दिष्टत्यागी क्षुल्लक, ऐलक और अनुमतित्यागी दसवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकों के लिए भी इन्हीं अट्ठाईस कायोत्सर्गरूप कृतिकर्म का विधान है। यथा-

वंदना त्रितये काले, प्रतिक्रांते द्वयं तथा। स्वाध्यायानां चतुष्कं च, योगिभक्तिद्वयं पुन:।।
उत्कृष्टश्रावकेनामू: कर्तव्या यत्नतोऽन्वहं। षडष्टौ द्वादश द्वे च, क्रमशोऽमूषु भक्तय:।।

त्रिकाल वंदना में छह, प्रात:काल-सायं काल दोनों समय के प्रतिक्रमण में आठ, चार स्वाध्याय में बारह और योगिभक्ति में दो ऐसी ६+८+१२+२=२८ भक्तियाँ कायोत्सर्ग सहित क्रम से उत्कृष्ट श्रावकों को प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। यही क्रिया क्षुल्लिकाओं के लिए भी समझनी चाहिए।

कृतिकर्म का लक्षण —

सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतिस्तवपर्यंत:कृतिकर्मेत्युच्यते[४]।

''सामायिक स्तवपूर्वक कायोत्सर्ग करके चतुर्विंशतिस्तवपर्यन्त जो विधि है उसे कृतिकर्म कहते हैं।''

दोणदं तु जधाजादं वारसावत्तमेव य। चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे[५]।।६०३।।

---

१. पश्चिम रात्रौ प्रतिक्रमणे। ''मूलाचार टीका।'' २. मूलाचार गाथा ६०२ की टीका।
३. अनगार धर्मामृत अध्याय ८। ४. मूलाचार गाथा ६०२ की टीका। ५. मूलाचार गा. ६०३।

''यथाजात मुद्राधारी साधु मनवचनकाय की शुद्धि करके दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनतिपूर्वक कृतिकर्म का प्रयोग करें।'' अर्थात् किसी भी क्रिया के प्रयोग में पहले प्रतिज्ञा करके भूमि स्पर्शरूप पंचांग नमस्कार किया जाता है, जैसे—

''अथ पौर्वाण्हिकस्वाध्यायप्रारंभक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं'' ऐसी प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार किया जाता है। पुन: **''णमो अरिहंताणं''** से लेकर **''तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि''** पाठ बोला जाता है इसे सामायिक स्तव कहते हैं। इसमें **''णमो अरिहंताणं''** पाठ प्रारंभ करते समय तीन आवर्त करके एक शिरोनति की जाती है, पुन: पाठ पूरा करके तीन आवर्त एक शिरोनति की जाती है। फिर कायोत्सर्ग करके पंचांग प्रणाम किया जाता है पुन: **''थोस्सामि''** इत्यादि चतुर्विंशति स्तव के प्रारंभ में तीन आवर्त एक शिरोनति करके पाठ पूरा होने पर तीन आवर्त और एक शिरोनति होती है। इस प्रकार प्रतिज्ञा के अनन्तर प्रणाम और कायोत्सर्ग के अनन्तर प्रणाम, ऐसे दो प्रणाम हुए। सामायिक दण्डक के आदि-अन्त में और थोस्सामि स्तव के आदि-अन्त में ऐसे तीन-तीन आवर्त चार बार करने से बारह आवर्त हुए तथा प्रत्येक में एक-एक शिरोनति करने से चार शिरोनति हो गईं।

इसी विधि को आचारसार में स्पष्ट किया है। यथा—

क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं, भक्तेरस्या: करोम्यहं। विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम् ।।३५।।
कृत्वा करसरोजातमुकुलालंकृतं निजं। भाललीलासर: कुर्यात्त्र्यावर्तां शिरसो नतिम् ।।३६।।
आद्यस्य दण्डकस्यादौ मंगलादेरयं क्रम:। तदंतेऽप्यंगव्युत्सर्ग: कार्योऽतस्तदनंतरम् ।।३७।।
कुर्यात्तथैव थोस्सामीत्याद्यार्याद्यन्तयोरपि। इत्यस्मिन् द्वादशावर्ता: शिरोनतिचतुष्टयम्[१] **।।३८।।**

इन श्लोकों का पूरा अर्थ ऊपर आ चुका है अत: यहाँ पुन: नहीं दिया है।

---

१. आचारसार ग्रंथ।

कृतिकर्म प्रयोग विधि / कायोत्सर्ग विधि

अथ.....[१] क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं.......भक्ति[२] कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर समायिक दण्डक पढ़ें।)

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं

अथ.........[१] क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं........[२] कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर पंचांग नमस्कार करें। पुन: तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़ें।)

सामायिक दण्डक— णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

---

१. जिस क्रिया को करना हो उसका उच्चारण करें जैसे ''नंदीश्वर पर्व क्रियायां।''
२. जिस भक्ति को पढ़ना हो उसका नाम लेवें-यथा ''सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं''।

आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(९ बार महामंत्र जप)

(मुकुलित हाथ जोड़े हुए ही तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से सत्ताइस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुन: पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके 'थोस्सामिस्तव'' पढ़ें।)

थोस्सामि स्तव- **थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।**
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्म देशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान् ।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन, ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

भगवन् सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन काय मन, त्रिकरण से न करूँ दु:खकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूँ निंदूँ गर्हूँ, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हेजिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र जप कर पंचांगामस्कार करें।)

थोस्सामि स्तव

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वन्दामि।।४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपहा सत्ता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

लोकोद्योतक धर्म तीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउवीस अर्हंत तथा, केवलि गण का गुणगान करूँ।।२।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।

सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्म प्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लि प्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्ट नेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।

इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।

चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से खड़े-खड़े ही जिस भक्ति की प्रतिज्ञा की थी उस भक्ति को पढ़कर गवासन से बैठकर उस भक्ति की अंचलिका पढ़ें। यह उपर्युक्त कृतिकर्म विधि सभी भक्तियों के पढ़ने में करनी चाहिए, ऐसा विधान है।

कदाचित् खड़े होकर कृतिकर्म नहीं करना हो तो बैठकर ही सारी विधि करें। अन्तर इतना ही है कि बैठकर कृतिकर्म करने में ९ बार महामंत्र का जाप्य योगमुद्रा से करना होता है। इन मुद्राओं का वर्णन आगे देववंदना के पूर्व में दिया गया है।)

लघु कृतिकर्म विधि/कायोत्सर्ग विधि

अथ..........क्रियायां..........भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।*

(यह प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार करें, पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़ें।)

सामायिक दंडक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि, ताव कालं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके जो भक्ति पढ़नी हो, उसका पाठ करें।)

लघु कायोत्सर्ग विधि

अथ..........क्रियायां..........भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

---

* यह लघु सामायिक दण्डक और लघु थोस्सामि पाठ प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में लघु भक्तियों के पाठ में उपलब्ध हुआ है अतः लघु भक्ति के पाठ में लघु सामायिक दण्डक और लघु थोस्सामिस्तव कर सकते हैं ऐसा जाना जाता है।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र पढ़ें पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामिस्तव पढ़ें।)

थोस्सामिस्तव — **थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।**
णरपवर लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके पुनः जिस भक्ति के लिए कायोत्सर्ग किया हो, उस भक्ति को पढ़ें।)

नित्य क्रियायें

(दिनचर्या)

अनगार धर्मामृत की आठवीं अध्याय में छह आवश्यक क्रियाओं का वर्णन करके नवमीं अध्याय में नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का अथवा इन आवश्यक क्रियाओं के प्रयोग का वर्णन बहुत ही सरल ढंग से किया है। यथा-

अर्धरात्रि के दो घड़ी अनन्तर से अपररात्रिक स्वाध्याय का काल हो जाता है। उस समय पहले "अपररात्रिक" स्वाध्याय करके पुनः सूर्योदय के दो घड़ी शेष रह जाने पर स्वाध्याय समाप्त कर "रात्रिक प्रतिक्रमण" करके रात्रियोग समाप्त कर देवें। फिर सूर्योदय के समय से दो घड़ी (४८ मिनट) तक "देववंदना" अर्थात् सामायिक करके "गुरुवन्दना" करें। पुनः "पौर्वाण्हिक" स्वाध्याय प्रारंभ करके मध्यान्ह के दो घड़ी शेष रहने पर स्वाध्याय समाप्त कर "देववन्दना" करें। मध्यान्ह समय देववन्दना समाप्त कर "गुरु वन्दना" करके "आहार हेतु" जावें। यदि उपवास हो तो उस समय जाप्य या आराधना का चिन्तवन करें। गोचरी से आकर गोचरी प्रतिक्रमण करके व प्रत्याख्यान ग्रहण करके पुनः "अपराण्हिक" स्वाध्याय प्रारंभ कर सूर्यास्त के दो घड़ी पहले समाप्त कर "दैवसिक-प्रतिक्रमण" करें। पुनः गुरु वन्दना करके रात्रियोग ग्रहण करें तथा सूर्यास्त के अनन्तर "देववन्दना" —

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव!
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।१।।
(९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

थोस्सामिस्तव —

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिनप्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।
लोकोद्योतक धर्मतीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चौबीस अर्हंत तथा, केवलिगण का गुणगान करूँ।।१।।

सामायिक करें। रात्रि के दो घड़ी व्यतीत हो जाने पर "पूर्वरात्रिक" स्वाध्याय प्रारंभ करके अर्ध रात्रि के दो घड़ी पहले ही स्वाध्याय समाप्त करके शयन करें। यह अहोरात्र संबंधी क्रियाएँ हुईं।

मूलाचार गाथा ६०२ की टीका में भी इन्हीं क्रियाओं का कथन किया गया है।

विशेष-शास्त्रों में मध्यान्ह देववन्दना के बाद आहार करने को कहा है किन्तु आजकल प्रातः ९ बजे से ११.३० के बीच में साधुओं के आहार की परम्परा है अतः आहार के बाद मध्यान्ह की सामायिक की जाती है।

सर्वप्रथम पिछली रात्रि की क्रियाओं को कहते हैं-

क्लमं नियम्य क्षणयोगनिद्रया, लातं निशीथे घटिकाद्वयाधिके।
स्वाध्यायमत्यस्य निशाद्विनाडिका-शेषे प्रतिक्रम्य च योगमुत्सृजेत्[१]।।७।।

योगनिद्रा — धर्मध्यान सहित निद्रा के द्वारा शरीर की थकान को दूर करके अर्थात् ४ घड़ी (९६ मिनट तक) अर्ध रात्रि में नींद लेकर पुनः जागकर अपररात्रिक-वैरात्रिक स्वाध्याय करके ४८ मिनट रात्रि शेष रहने पर स्वाध्याय समापन कर रात्रिक प्रतिक्रमण करके योग भक्ति के द्वारा रात्रियोग का विसर्जन कर देवें।

उपर्युक्त कथनानुसार अर्ध रात्रि में मात्र ४ घड़ी शयन करना यह उत्कृष्ट मार्ग है। आजकल मुनि-आर्यिकाएँ पाँच, छह घंटे भी सोते हैं क्योंकि नींद कम लेने से शरीर में थकान बनी रहती है अतः अपने स्वास्थ्य के अनुसार शरीर को स्वस्थ रखते हुए कम से कम निद्रा लेना चाहिए, यही अभिप्राय समझना।

साधुवर्ग पिछली रात्रि में उठकर पहले क्या करें?

मुनि या आर्यिका पिछली रात्रि में निद्रा से उठकर नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करें। अनन्तर लघुशंका आदि बाधाओं से निवृत्त होकर हाथ, पैर, मुख आदि धोकर अपने आसन पर बैठकर "यत्स्वर्गावतरोत्सवे" आदि सुप्रभात स्तोत्र पढ़ें।

सुप्रभातस्तोत्रम्

यत्स्वर्गा-वतरोत्सवे यदभवज्जन्मा-भिषेकोत्सवे।
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिल-ज्ञानप्रकाशोत्सवे।।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः, पूजाद्भुतं तद्भवैः।
संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः।।१।।
श्रीमन्नतामरकिरीट-मणिप्रभाभि-रालीढपाद-युगदुर्द्धर-कर्मदूर।
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजितशंभवाख्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।२।।
छत्रत्रयप्रचलचामरबीज्यमान!
देवाभिनंदनमुने सुमते जिनेंद्र!

१. अनगार धर्मामृत अध्याय ९, श्लोक ७।

पद्मप्रभा-रुणमणि-द्युति-भासुरांग!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्।।३।।
अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्णगात्र!
प्रालेय-तारगिरिमौक्तिक-वर्णगौर!
चंद्रप्रभ! स्फटिकपाण्डुर-पुष्पदंत!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।४।।
संतप्तकांचनरुचे! जिनशीतलाख्य!
श्रेयान्विनष्टदुरिताष्टकलंकपंक!
बंधूकबंधुररुचे! जिनवासुपूज्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।५।।
उद्दंडदर्पकरिपो विमलामलांग!
स्थेमन्ननंतजि-दनंतसुखांबुराशे!
दुष्कर्मकल्मष-विवर्जित! धर्मनाथ!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।६।।
देवामरी-कुसुमसन्निभ! शांतिनाथ!
कुंथोदयागुणविभूषणभूषितांग!
देवाधिदेव! भगवन्नरतीर्थनाथ!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।७।।
यन्मोहमल्लमदभंजनमल्लिनाथ!
क्षेमंकरावितथशासनसुव्रताख्य!
यत्संपदा प्रशमितो नमिनामधेय!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।८।।
तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल! नेमिनाथ!
घोरोपसर्गविजयिन् ! जिन पार्श्वनाथ!
स्याद्वादसूक्ति-मणिदर्पणवर्द्धमान!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।९।।
प्रालेय-नील-हरिता-रुणपीतभासं।
यन्मूर्ति-मव्यय-सुखावसथं मुनींद्राः।।

ध्यायंति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां।-
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।१०।।
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मांगल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशतितीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने।।११।।
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनंदितम् ।
देवताः ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने।।१२।।
सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्व-सुखावहम् ।।१३।।
सुप्रभातं जिनेंद्राणां, ज्ञानोन्मीलित-चक्षुषां।
अज्ञान-तिमिरांधानां, नित्य-मस्तमितो रविः।।१४।।
सुप्रभातं जिनेंद्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्लध्यानोग्र-वह्निना।।१५।।
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमंगलम् ।
त्रैलोक्य-हितकर्तृणां, जिनानामेव शासनम् ।।१६।।

इति सुप्रभातस्तोत्रम्

****

पुनः ''वैरात्रिक''-पिछली रात्रि का स्वाध्याय करें।

वैरात्रिक स्वाध्याय प्रारम्भ विधि

नमोस्तु वैरात्रिक स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करके तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़ें।)

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

णमो अरिहंताणं.........धम्मो सरणं पव्वज्जामि।
जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।

चत्तारिमंगलं-अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

(अनन्तर ३ आवर्त १ शिरोनति करके योगमुद्रा से कायोत्सर्ग (९ जाप्य) करें। पश्चात् पंचांग नमस्कार करें, पुनः ३ आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशतिस्तव पढ़ें।)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलि-अणंत जिणे।
णरपवर-लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।१।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से श्रुतभक्ति पढ़ें।)

लघु श्रुतभक्ति — **श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।**
अंगांग-बाह्यभावित-मनन्तविषयं नमस्यामि।।१।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंग-पइण्णए पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-**

(९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।
लोकोद्योतक धर्म तीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउवीस अर्हंत तथा, केवलिगण का गुणगान करूँ।।

लघु श्रुतभक्ति — जिनवर कथित, रचित गणधर से, श्रुत अंगांग बाह्य संयुत।
द्वादशभेद अनेक अनन्त, विषययुत वंदूँ मैं जिनश्रुत।।

अंचलिका — हे भगवन् ! श्रुतभक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतू।
आलोचना करना चाहूँ जो अंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र प्रथमानुयोग पूर्वादीगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव स्तुति अरु धर्मकथादि सहित।।

थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु वैरात्रिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यंह

(पूर्वोक्त विधि से णमो अरिहंताणं से लेकर पूरा पढ़कर ९ बार णमोकार मंत्र जपकर "थोस्सामि स्तव" पढ़कर आचार्य भक्ति पढ़ें।)

लघु आचार्य भक्ति

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।१।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।**

(स्वाध्याय करते समय पहले श्री गौतम स्वामी के मुख से प्रगट हुए गणधरवलय मंत्रों को पढ़कर किसी भी ग्रंथ का स्वाध्याय करें।)

सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्तियुत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधि मरणं, मम जिनगुण संपत् होवे।।

लघु आचार्यभक्ति —ढाई द्वीप में तीन न्यून, नवकोटि मुनीश्वर होते हैं।
गुरुभक्ती से हम उन सबको, वंदें वे अघ धोते हैं।।

अंचलिका — हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारितयुत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशकवर्य।।२।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्व साधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।३।।
दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।४।।

गणधरवलय मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहिजिणाणं, णमो कोट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो चउदसपुव्वीणं, णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं, णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो पण्णसमणाणं, णमो आगासगामीणं, णमो आसीविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं, णमो उग्गतवाणं, णमो दित्ततवाणं, णमो तत्ततवाणं, णमो महातवाणं, णमो घोरतवाणं, णमो घोरगुणाणं, णमो घोरपरक्कमाणं, णमो घोरगुणबंभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विप्पोसहिपत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीणमहाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदि महावीरवड्ढमाण-बुद्धरिसीणो चेदि।

जस्संतियं धम्मपहं णियच्छे, तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
काएण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिरपंचमेण।।१।।

पिछली रात्रि के स्वाध्याय में सिद्धान्त ग्रंथ की वाचना का निषेध है।

व्योमाचलकुलान्तस्थचारणावधिबोधिनाम् ।
वाचनापररात्रौ तु क्षेत्रशुद्ध्युपलंभतः।।७९।। आचारसार।

आकाशगामी ऋद्धिधारी, अवधिज्ञानी आदि मुनियों के लिए ही क्षेत्र शुद्धि होने से पिछली रात्रि में सिद्धान्त ग्रंथों की वाचना मानी गई है। यही बात धवला पुस्तक ९ में भी पृष्ठ २५४ पर कही गई है। अतः आचारसार, मूलाचार, समाधिशतक, आप्तमीमांसा, स्वयंभूस्तोत्र आदि ग्रंथों का स्वाध्याय करें। कदाचित् प्रकाश की व्यवस्था न हो तो जो रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह आदि पाठ मौखिक याद हों उन्हें ही पढ़ लेवें। अनन्तर स्वाध्याय की निष्ठापना करें। सूर्योदय से दो घड़ी (४८ मिनट) पूर्व तक पिछली रात्रि के स्वाध्याय का काल है।

स्वाध्याय निष्ठापन विधि

नमोऽस्तु वैरात्रिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् ''**णमो अरिहंताणं**'' इत्यादि सामायिक दण्डक पढ़कर कायोत्सर्ग करके ''**थोस्सामिस्तव**'' पढ़कर पृ. १३ से ''**श्रुतमपि जिनवरविहितं**'' आदि लघु श्रुतभक्ति पढ़ें।)

दिक्शुद्धि कब और कैसे करें?

वैरात्रिक स्वाध्याय के अनंतर साधु बाहर निकलकर पौर्वाण्हिक स्वाध्याय के लिए दिक्शुद्धि करें। जैसा कि धवला महाशास्त्र में कहा है। यथा-''**पच्छिमरत्तियसज्झायं खमाविय बहिं णिक्कलिय पासुगे भूमिपदेसे काओसग्गेण पुव्वाहिमुहो**[1]।'' पश्चिम रात्रि के स्वाध्याय को निष्ठापित करके बाहर निकलकर प्रासुक भूमि प्रदेश में खड़े होकर कायोत्सर्ग मुद्रा से पूर्वाभिमुख होकर दिक्शुद्धि करें, ऐसे ही चारों दिशाओं में दिक्शुद्धि की जाती है।

णवसत्तपंचगाहापरिमाणं दिसि विभागसोधीए।
पुव्वण्हे अवरण्हे पदोसकाले य सज्झाए।।२७३।।मूलाचार।

उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

पूर्वाण्हकाल के स्वाध्याय के लिए दिग्विभाग शुद्धि के निमित्त प्रत्येक दिशा में कायोत्सर्ग से स्थित होकर नव-नव गाथा परिमाण जाप्य करना चाहिए। यह दिक्शुद्धि पिछली रात्रि के स्वाध्याय के बाद की जाती है। ऐसे पूर्वाण्ह स्वाध्याय के बाद अपराण्ह स्वाध्याय हेतु प्रत्येक दिशा में कायोत्सर्गपूर्वक सात-सात बार णमोकार मंत्र पढ़कर करना चाहिए और पूर्वरात्रिक स्वाध्याय के लिए अपराण्ह स्वाध्याय समापन के बाद प्रत्येक दिशा में पाँच-पाँच गाथा पढ़कर दिक्शुद्धि करनी चाहिए। पश्चिम रात्रिक स्वाध्याय के लिए दिक्शुद्धि का विधान नहीं है क्योंकि उस समय सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़ने का निषेध है। उस काल में भी सिद्धान्त ग्रंथों के अधिकारी ऋद्धिधारी मुनि आदि ही हैं, ऐसा आचारसार ग्रन्थ में कहा है। यही पूर्ण विधि आचारसार ग्रंथ अध्याय चतुर्थ में ७३-७४ आदि श्लोकों में दी गई है। इसकी प्रयोगविधि इस प्रकार है—

पूर्वाण्ह स्वाध्याय हेतु दिक्शुद्धि विधि

अथ पूर्वाण्हवाचनाहेतोः पूर्वदिक्शुद्धिं करोम्यहम् ।

(पूर्व दिशा में मुख करके २७ उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

अथ पूर्वाण्हवाचनाहेतोः दक्षिणदिक्शुद्धिं करोम्यहम्।

(दक्षिण दिशा में मुख करके २७ उच्छ्वास में ९ बार मंत्र जपें।)

अथ पूर्वाण्हवाचनाहेतोः पश्चिमदिक्शुद्धिं करोम्यहम्।

(पश्चिम दिशा में मुख करके २७ उच्छ्वास में ९ बार मंत्र जपें।)

---

१. धवला पुस्तक ९, पृ. २५३।

अथ पूर्वाण्हवाचनाहेतोः उत्तरदिक्शुद्धिं करोम्यहम् ।

(उत्तर दिशा में मुख करके २७ उच्छ्वास में ९ बार मंत्र जपें।)

विशेष-यह दिक्शुद्धि का विधान सिद्धान्तग्रंथों के पठन-पाठन के लिए ही है।

इस दिक्शुद्धि के बाद रात्रिकप्रतिक्रमण किया जाता है।

रात्रिक प्रतिक्रमण कब और कैसे करें?

सूर्योदय से दो घड़ी पहले रात्रिक प्रतिक्रमण का काल माना गया है। यह प्रतिक्रमण प्रात:कालीन सामायिक के पहले माना गया है। यथा—

''**पश्चिमरात्रौ प्रतिक्रमणे क्रियाकर्माणि चत्वारि**[१]'' पिछली रात्रि के प्रतिक्रमण में चार भक्तिसंबंधि चार कृतिकर्म होते हैं।

अत: दिक्शुद्धि के बाद सभी साधु पश्चिमरात्रि में आचार्य के पास जाकर नमोस्तु करके विनय से बैठकर ''**जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषाः**''इत्यादि बोलते हुए प्रतिक्रमण करें। जैसा कि कहा है-

जो ''**दैवसिकरात्रिकप्रतिक्रमण**''छपा है वही यहाँ पढ़ा जाता है। इसमें''**दैवसिकप्रतिक्रमण-क्रियायां**'' के स्थान पर ''**रात्रिकप्रतिक्रमणक्रियायां**'' ऐसा बोलें। ऐसे ही ''**देवसियम्मि**'' की जगह ''**राईयम्मि**'' ''**देवसिओ**'' की जगह ''**राईओ**'' ''**देवसियस्स**'' की जगह ''**राईयस्स**'' पाठ बोलें। ''**देवसिओ राईओ**'' ऐसे दोनों बोलने की आवश्यकता नहीं रहती है।

आजकल मुनिसंघों में प्राय: प्रात: की सामायिक के बाद यह रात्रिक प्रतिक्रमण करते हैं। फिर भी कुछ साधु-साध्वियाँ शास्त्रानुसार पहले प्रतिक्रमण करके सामायिक करते हैं।[२]

कायोत्सर्ग का लक्षण-

''एक बार णमोकार मंत्र के पढ़ने में तीन श्वासोच्छ्वास हो जाते हैं। जैसे कि''**णमो अरिहंताणं**''पद के उच्चारण में श्वास को ऊपर खींचा जाता है और''**णमो सिद्धाणं**''पद के उच्चारण में श्वांस को छोड़ा जाता है।''**णमो आइरियाणं**''पद के उच्चारण में श्वांस को खींचना और''**णमो उवज्झायाणं**''बोलकर श्वांस को छोड़ना पुन:''**णमो लोए**''पद बोलकर श्वांस को खींचना और''**सव्वसाहूणं**''बोलते हुए श्वांस को छोड़ा जाता है। इस तरह नव बार णमोकार मंत्र के जाप्य में सत्ताईस श्वासोच्छ्वास हो जाते हैं।[३]''

कायोत्सर्ग कब कितने करना?

''नव बार णमोकार मंत्र के जाप्य को कायोत्सर्ग कहते हैं। यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति और चौबीस तीर्थंकर भक्ति के चार कायोत्सर्ग माने गये हैं। अन्त की समाधिभक्ति सर्वदोष विशुद्धि के लिए की जाती है अत: उसके कायोत्सर्ग की गणना नहीं होती है।

रात्रिक प्रतिक्रमण में वीरभक्ति के कायोत्सर्ग में चौवन (५४) श्वासोच्छ्वास कहे गये हैं यद्यपि इसमें दो कायोत्सर्ग हो जाते हैं और वह भी उस ''वीरभक्ति'' संबंधी एक ही कहलाता है। ऐसे ही दैवसिक प्रतिक्रमण में वीरभक्ति के कायोत्सर्ग में एक सौ आठ उच्छ्वास माने हैं इसके लिए चार कायोत्सर्ग करना होता है।

---

१. मूलाचार गाथा ६०२ की टीका में। २. मैं स्वयं पहले प्रतिक्रमण करके बाद में सामायिक करती हूँ। ३. अनगारधर्मामृत अ. ९।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में ३००, चातुर्मासिक में ४०० और सांवत्सरिक में ५०० श्वासोच्छ्वास द्वारा वीरभक्ति का कायोत्सर्ग होता है।

ग्रन्थों के स्वाध्याय में, देववंदना, गुरुवंदना में सत्ताईस श्वासोच्छ्वासों में कायोत्सर्ग किया जाता है तथा गोचरी करके आने पर गोचर प्रतिक्रमण में ग्रामांतर गमन में, जिनेन्द्र देव की निषद्या भूमि— गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण क्षेत्रों की वंदना में, श्रमण निषद्या-मुनियों के समाधि स्थान की वंदना में और मल-मूत्रादि विसर्जन के बाद २५ श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करने का विधान है''[१]

''कोई-कोई मलमूत्रादि विसर्जन में ईर्यापथ शुद्धि प्रतिक्रमण करते हैं किन्तु अनगार धर्मामृत में इन लघु प्रतिक्रमणों को दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण में गर्भित कर दिया है अत: पृथक् से उन दण्डकों के पढ़ने की आवश्यकता नहीं भी है।''[२]

मानसिक जप के प्रति अशक्त जीव वाचनिक जाप्य भी करते हैं।

वाचाप्युपांशु व्युत्सर्गे, कार्यो जाप्यः स वाचिकः।
पुण्यं शतगुणं चैत्तः सहस्रगुणमाहवेत् ।।२४।।[३]

वचन के द्वारा जिसका स्पष्ट उच्चारण हो किन्तु अन्य जन न सुन सकें, मात्र अंतरंग में ही उच्चारण हो, उसे उपांशु जप कहते हैं और जिसका मात्र मन में ही चिंतवन हो उसे मानसिक जप कहते हैं। उपांशु— वाचिक जप का फल सौ गुणा होता है और मानसिक जप का फल हजार गुणा अधिक होता है।

दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणम्

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा, यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।
तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं, वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थं।।१।।
पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना।
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।।

दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण (हिन्दी)

चौबोल छन्द—जो प्रमाद से हुए बहुत से, दोष जीव में आते हैं।
इस प्रतिक्रमण के करने से, वे सभी नष्ट हो जाते हैं।।
इसलिए मुनी बोधनहेतू, मल विरहित प्रतिक्रमण विधि को।
मैं कहूँ विविध जो कर्म हुए, उन सबके ही प्रक्षालन को।।१।।

मुझ पापिष्ठ दुरात्मा जड़-बुद्धी मायावी लोभी ने।
राग व द्वेष मलिन मन से, जो भी दुष्कर्म निर्मिते हैं।।

---

१. मूलाचार षडावश्यक अधिकार गाथा ६५९ से ६६३। २. अनगारधर्मामृत अध्याय ८ श्लोक ५८ की टीका में। ३. अनगारधर्मामृत अ. ९ श्लोक २४।

त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना।
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे।।२।।
खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि।।३।।
रागबंधपदोसं च हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे।।४।।
हा! दुट्ठकयं हा! दुट्ठचिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अंतोअंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेदंतो।।५।।
दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकाएण पडिकमणं।।६।।

एइंदिया, वेइंदिया, तेइंदिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणप्फदिकाइया, तसकाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

हे त्रिभुवन के स्वामिन्! जिनवर! अब तुम पाद निकट में मैं।
निन्दा करके त्याग रहा हूँ, नित सत्पथ का इच्छुक मैं।।२।।

सभी जीव पर क्षमा करूँ मैं, सब मुझ पर भी क्षमा करो।
सभी प्राणियों से मैत्री हो, बैर किसी से कभी न हो।।३।।

राग बंध अरु प्रदोष हर्ष, दीन भाव उत्सुकता को।
भय अरु शोक, रती अरती को, त्याग करूँ दुर्भावों को।।४।।

हा! दुष्कृत्य किये हा! दुश्चिंते, हा! दुर्वचन कहे मैंने।
कर-कर पश्चाताप हृदय में, झुलस रहा हूँ मैं मन में।।५।।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, कृत अपराध विशोधन को।
निन्दा गर्हा से युत हो, प्रतिक्रमण करूँ मन वच तन सों।।६।।

एकेन्द्री द्वीन्द्री त्रयइन्द्री, चउइन्द्रिय पंचेन्द्री जो।
भू जल अग्नी वायु वनस्पति, त्रसकायिक इन जीवों को।।
मारा ताप दिया पीड़ा दी, घात किया व कराया हो।
करते को अनुमोदा वह सब, दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।७।।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पंचेंद्रियरोध-लोच-षडावश्यकक्रियादयोष्टा-विंशतिमूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादश-शीलसहस्राणि चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुसाक्षिकं, सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं *दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दना-स्तवसमेतं आलोचनासिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

व्रत समिति इन्द्रियनिरोध छह, आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन, स्थितिभुक्ति भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
उनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ!।।८।।

[१]पंचमहाव्रतपंचसमिति-पंचेन्द्रियरोध-लोच-षडावश्यक क्रियादयोऽष्टा-विंशति-मूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशील-सहस्राणि चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं संपूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढ़व्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिरा-करणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं आलोचना-सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं[२]।

१.पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियनिरोध, लोच, छह आवश्यक क्रियायें इत्यादि अट्ठाईस मूलगुण, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य यह दशलक्षण धर्म, अठारह हजार शील, चौरासी लाख गुण, तेरह प्रकार का चारित्र, बारह प्रकार का तप, ये सब परिपूर्ण उत्तम व्रत अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु इन पंच परमेष्ठी की साक्षी से तुममें और मेरे में सम्यक्त्व पूर्वक दृढ़व्रत होवें, समीचीन व्रत होवें और समारूढ़ होवें। २. अब दैवसिक या रात्रिक प्रतिक्रमण क्रिया में सब दोषों की विशुद्धि के निमित्त, किये हुए दोषों केनिराकरण हेतु, सकल कर्मों के क्षय के लिए पूर्वाचार्यों के अनुक्रम के अनुसार भावपूजा-वंदना-स्तव सहित आलोचनायुक्त सिद्धभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मैं करता हूँ। * पिछली रात्रि में 'रात्रिकप्रतिक्रमण क्रियायां' बोलना चाहिए।

(यह प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दण्डक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में ९ जाप्य करें। अनंतर पंचांग नमस्कार करके तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामि स्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके सिद्धभक्ति पढ़ें।)

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

सिद्ध भक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पयिट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

(३ आवर्त १ शिरोनति करके सामायिक दण्डक आदि पूर्ण विधि से कायोत्सर्ग करके थोस्सामि पढ़कर वंदनामुद्रा से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

##卐 सिद्धभक्ति 卐

चौबोल छन्द — श्रीमन् वर्द्धमान को प्रणमूँ, जिनने अरि को नमित किया।
जिनके पूर्ण ज्ञान में त्रिभुवन, गोखुर सम दिखलाई दिया।।१।।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

अंचलिका — हे भगवन्! श्री सिद्ध भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग् रत्नत्रय युक्ता।।१।।
अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिध जो।।२।।
भूत भविष्यत वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

आलोचना —**इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो परिविहाविदो, पंचमहव्वदाणि पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिआ वीआ अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।**

वेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिमिसंखखुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठ[1]-गंडबाल[2]-संबुक्क-सिप्पि-पुलविकाइया (पुलवि आइया[3]) तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।२।।

आलोचना (शंभुछन्द)

हे भगवन् ! इच्छा करता हूँ, चारित्राचार त्रयोदशविध।
वह पांच महाव्रत पांच समिति, अरु तीन गुप्तिमय जिनभाषित।।
इनमें हिंसा का त्याग महाव्रत, प्रथम कहा है जिनवर ने।
भूकायिक जीव असंख्याता-संख्यात व जल कायिक इतने[4]।।
अग्नीकायिक भि असंख्याता-संख्यात पवनकायिक इतने[5]।
जो वनस्पतीकायिक प्राणी, वे सभी अनंतानंत भणें।।
ये हरित बीज अंकुर स्वरूप, नानाविध छिन्न-भिन्न भी हों।
इन सबको प्राणों से मारा, संताप दिया पीड़ा दी हो।।
उपघात किया मन वच तन से, या अन्यों से करवाया हो।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।
दो इन्द्रियजीव असंख्याता-संख्यात कुक्षि कृमि[6] शंख कहे।
क्षुद्रक कौड़ी व अक्ष अरिष्टय[7], गंडबाल लघु शंख कहे।।
जो सीप जोंक आदिक इनको, मारा या त्रास दिया भी हो।
पीड़ा दी या उपघात किया, या पर से भी करवाया हो।।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।

१. रिट्ठय-बालशरीरसमुद्भवास्तंतुसमाना जीवविशेषाः। २. 'गंडवालय' इति पाठांतरप्रतिक्रमणग्रंथत्रयीषु। ३. पाठांतरं प्रतिक्रमणग्रंथत्रयीषु। ४. जलकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं।५. वायुकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। ६. लट, घाव आदि के जीव। ७. बच्चों के शरीर में पैदा हो जाते हैं, ऐसे क्षुद्र जीव।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु-द्देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खिपयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।४।।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदिजोणिप-मुहसदसहस्सेसु, एदेसिं[1] उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।५।।

प्रतिक्रमणपीठिकादण्डक:

इच्छामि भंते! देवसियम्मि (राईयम्मि) आलोचेउं, पंचमहव्वदाणि, तत्थ

त्रय इन्द्रिय जीव असंख्याता-संख्यात कुंथु[2] देहिक बिच्छू।
जूँ गोजों खटमल इन्द्रगोप, चिउंटी आदिक बहुविध जन्तू।।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।
चउ इंद्रिय जीव असंख्याता-संख्यात उन्हों में डांस मशक।
बहु कीट पतंगे भ्रमर मधू-मक्खी गोमक्खी आदि विविध।।
इनको मारा परिताप विराधन, या उपघात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।।
पंचेन्द्रिय जीव असंख्याता-संख्यात इन्हों में अंडज हैं।
पोतज व जरायुज रसज पसीनज, सम्मूर्छिन उद्भेदिम हैं।।
उपपाद जन्मयुत भी चौरासी, लाख योनि वालों में जो।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया हो जो।।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।५।।

प्रतिक्रमण पीठिका दण्डक

दोहा— भगवन् ! दैवसिक (रात्रिक) सभी, दोष विशोधन हेत।
चाहूँ आलोचन करन, श्रद्धा भक्ति समेत ।।१।।

१. इससे पूर्व के चारों दण्डकों में इस जगह 'तेसिं' पाठ है उसकी छाया है तेषां'। यहां एदेसिं की छाया है 'एतेषां' दोनों का अर्थ एक ही है। प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी टीका में भी ऐसा ही पाठ है अत: एकरूपता के लिए पाठ बदलना उचित नहीं है। २. सूक्ष्म जीव।

पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राईभोयणादो वेरमणं, ईरियासमिदीए भासासमिदीए, एसणासमिदीए आदाणणिक्खेवणसमिदीए, उच्चारपस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिपइट्ठावणियासमिदीए, मणगुत्तीए, वचिगुत्तीए, कायगुत्तीए, णाणेसु दंसणेसु चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु, वारसण्हं संजमाणं, वारसण्हं तवाणं, वारसण्हं अंगाणं, चोदसण्हं पुव्वाणं, दसण्हं मुंडाणं, दसण्हं समणधम्माणं, दसण्हं धम्मज्झाणाणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं,

शंभु छन्द —

हैं पाँच महाव्रत उनमें प्रथम, महाव्रत प्राणीवध विरती।
दूजा महाव्रत असत्यविरती, तीजा अदत्त से है विरती।।
चौथा महाव्रत मैथुन विरती, पंचम परिग्रह से विरती है।
छट्ठा अणुव्रत रात्री भोजन, विरती पुनि पांच समिती हैं।।१।।

ईर्यासमिती भाषासमिती, एषणसमिती भोजन की है।
आदान व निक्षेपण समिती, रखने व ग्रहण करने की है।।
मलमूत्र थूक नासामल विकृति, त्यजन प्रतिष्ठापन समिती।
मन वचन काय गुप्ती इन सबमें, हुए दोष की हो शुद्धी।।२।।

सद्दर्शन ज्ञान चरित्र तथा, बाईस परीषह मुनि के हैं।
पच्चीस भावना[1] क्रिया[2] पचीस, व शील अठारह सहस कहें।।
चौरासी लाख सुगुण बारह, संयम बारह तप भी वर्णे।
बारह अंग चौदह पूर्व मुंड[3]-दश श्रमण[4] धर्म भी दश वर्णे।।३।।

१. अहिंसा आदि पांच व्रतों को स्थिर रखने के लिए एक-एक व्रत की ५-५ भावनाएं मानी हैं। २. चैत्यगुरुप्रवचन की पूजा आदि लक्षणवाली सम्यक्त्ववर्धिनी नामा पहली सम्यक्त्व क्रिया है, ऐसी ही मिथ्यात्व क्रिया आदि २५ क्रियायें हैं। ३. पांच इंद्रियों का मुंडन, वचन मुंडन, हाथ, पैर और शरीर का मुंडन तथा मन का मुंडन ये दश मुंडन हैं। यहां मुंडन का अर्थ निरोध करना है। ४. उत्तम क्षमा आदि दश धर्म ही श्रमण अर्थात् मुनियों के दशधर्म हैं।

अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए पुट्ठियाए पदोसियाए परिदावणियाए, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा, गारवेण वा एदेसिं अच्चासणदाए, तिण्हं दंडाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं, अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामाणं, मिच्छणाण-मिच्छदंसण-मिच्छचरित्ताणं, मिच्छत्तपाउग्गं, असंयमपाउग्गं, कसाय-

---

दश[1] धर्मध्यान नव ब्रह्मचर्य-गुप्ती[2] नव नोकषाय भी हैं।
सोलह कषाय अठ कर्म आठ, प्रवचनमाता[3] अठ शुद्धी[4] हैं।।
भय सात सात[5] संसार जीव, षट्काय व छह आवश्यक हैं।
इंद्रियां पांच महाव्रत सुपांच, पण समिती चारित पांचहि हैं।।४।।
चउ संज्ञा[6] प्रत्यय[7] चार तथा, उपसर्ग[8] चार भी कहे गये।
अठबीस मूलगुण उत्तरगुण, बहुविध उन सबमें दोष हुए।।
जो अशुभराग से महिलादी को, अवलोका[9] स्पर्शा[10] हो।
मन वचन काय की दुष्ट क्रिया[11], परितापन की[12] किरिया की हो।।५।।
इन सबमें क्रोध मान माया, या लोभ राग या द्वेष निमित।
या मोह हास्य या भय प्रदोष, व प्रमाद प्रेम गृद्धी[13] निमित्त।।

---

१. अपायविचय, उपाय विचय, विपाक-विचय, विरागविचय, लोकविचय, भवविचय, जीवविचय, आज्ञाविचय, संस्थानविचय और संसारविचय ये १० धर्मध्यान हैं। (प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी पृ. १०)। २. तिर्यंचिनी, मनुष्यिनी और देवांगना इन तीन प्रकार की स्त्रियों का मन वचन काय से सेवन नहीं करना ये नव ब्रह्मचर्य गुप्तियां हैं। (प्रतिक्रमण ग्रं. पृ. १२)। ३. पांच समिति और तीन गुप्ति ये आठ प्रवचन माता हैं। ४. मन, वचन, काय की शुद्धि, आहार की शुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, व्युत्सर्गशुद्धि, शयनासन शुद्धि और विनयशुद्धि ये ८ शुद्धियां हैं। ५. एकेंद्रिय जीव के सूक्ष्म-बादर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के संज्ञी और असंज्ञी ये संसारी जीव के सात भेद हैं। इनमें भ्रमण करना ही सात प्रकार का संसार है। ६. आहार, भय, मैथुन और परिग्रह। ७. मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार कर्मास्रव के कारण हैं। ८. देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतनकृत उपसर्ग चार प्रकार के हैं। ९. स्त्री-पुरुषों के अंगोपांग का रागभाव से देखना दृष्टि क्रिया है। १०. स्त्री-पुरुषों के अंगोपांग का राग भाव से स्पर्श करना स्पृष्टि क्रिया है। ११. दुष्ट मन-वचन-काय की क्रिया प्रादोषिकी क्रिया है। १२. पर को कष्ट देने की क्रिया परितापन की क्रिया है। १३. पिपासा-विषयों की अतिगृद्धी।

पाउग्गं, जोगपाउग्गं, अपाउग्गसेवणदाए, पाउग्गगरहणदाए, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि, मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।।२।।

वद समिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।१।।

लज्जा से या गारव से जो, व्रत आदी में आसादन की।
उसका आलोचन करके मैं, दैवसिक दोष को हरूँ अभी।।६।।
त्रयदंड[1] अशुभत्रय लेश्यायें, त्रय गारव-ऋद्धि स्वाद रस के।
दो आर्त रौद्र संक्लेश भाव, त्रय अप्रशस्त[2] संक्लेशहिं के।।
मिथ्या कुज्ञान मिथ्या दर्शन, मिथ्याचारित मिथ्याभिप्राय[3]।
असंयम व कषाय योग माने, इन तीनों के प्रायोग्य[4] भाव।।७।।
अप्रायोग्य सेवन-नहिं करने, योग्य कार्य को किया यदी।
प्रायोग्य[5]-योग्य सम्यक्त्व आदि, भावों की निंदा किया यदी।।
इनसे जो कुछ भी दिन भर में, (रात्री में) अतिक्रम[6] व्यतिक्रम[7] अतिचार[8] किया।
या अनाचार[9] आभोग[10] व अनाभोग[11] करके बहुदोष किया।।८।।
हे भगवन्! उसका प्रतिक्रमण, करता हूँ ऐसे मेरा प्रभु।
सम्यक्त्वमरण[12] व समाधि व पंडित-मरण[13] वीर्ययुतमरण[14] प्रभू।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे प्रभु बोधिलाभ होवे।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण, जिनगुण की संप्राप्ती होवे।।९।।
व्रत समिती इन्द्रिय निरोध छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंत-धावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।

---

१. दुष्ट मन-वचन-काय ये तीन दंड हैं। २. माया, मिथ्या, निदान ये तीन अप्रशस्त संक्लेश भाव हैं। ३. कुदेव, कुधर्म और कुतत्त्व में विपरीत अभिप्राय मिथ्या प्रायोग्य हैं। ४. असंयम १२ प्रकार का है इसका प्रायोग्य-करना, कषायों का प्रायोग्य-करना और योग-मन वचन काय का परिस्पंदन करना ये तीन प्रायोग्य हुए। ५. प्रायोग्य ग्रहण-करने योग्य की गर्हा की हो। ६. मन की शुद्धि की हानि होना अतिक्रम है। ७. विषयों की अभिलाषा व्यतिक्रम है। ८. आवश्यक आदि क्रियाओं में आलसकरना अतिचार है। ९. व्रतों को भंग कर देना अनाचार है। १०. पूजा महत्त्व आदि की अभिलाषा से कापोत लेश्यायुक्त भावों द्वारा अति प्रकटअनुष्ठान-गलत कार्य करना आभोग है। ११. लज्जादि के वश में लोगों से छिपाकर दोषादि करना अनाभोग है। (प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी पृ. १९)। १२. सम्यक्त्व सहित मरण हो। १३. भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनी और प्रायोपगमन ये तीनमरण पंडित मरण हैं। १४. वीरता सहित मरण वीर्यमरण है।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

(इति प्रतिक्रमणपीठिकादंडकः।)

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दना-स्तवसमेतं श्रीप्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं—

(प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दण्डक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके **२७ उच्छ्वास में ९ जाप्य करें**। पुनः पंचांग नमस्कार करके तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामि स्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके प्रक्रिमण भक्ति पढ़ें।)

(निषिद्धिकादंडकाः प्रतिक्रमणभक्तिः)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।२।।

णमो जिणाणं ३, णमो णिस्सिहीए ३, णमोत्थु दे ३, अरहंत! सिद्ध! बुद्ध! णीरय! णिम्मल! सममण! सुभमण[1]! सुसमत्थ! समजोग! समभाव! सल्लघट्टाणं

जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
उनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ।।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं प्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि........पढ़ें)

निषिद्धिका (निषिधिका) दंडक

प्रतिक्रमणभक्ति —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।
नमो जिनेभ्यः ३, नमो निषीधिकायै[2] ३, नमोऽस्तु ते ३।

चौबोल छंद — हे अर्हंत सिद्ध बुद्धा, नीरज निर्मलसम मन सुमना।
हे सुसमर्थ परम शमयोग, शमभावी हे भवशमना।।

---

१. प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी में 'सुमण' ऐसा पाठ है। २. जिन और सिद्धों की कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमा,इनके मंदिर, ऋद्धिसहितमुनि आदि रूप से निषीधिका के १७ अर्थ टीका में किये हैं।

सल्लघत्ताणं! णिब्भय! णीराय! णिद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माण-माय[1]-मोस-मूरण! तवप्पहावण! गुणरयणसीलसायर! अणंत! अप्पमेय! महदिमहावीर-वड्ढमाण-बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदसपुव्वंगमिणो सुदसमिदिसमिद्धा य तवो य वारहविहो तवस्सी, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणीओ विणदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, ससमयपरसमयविदू, खंतिक्खवगा य खंतिवंतो य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खा य चेइयाणि।

शल्यदुखित के शल्यविनाशन, हे निर्भय निराग निर्दोष।
हे निर्मोह विगत ममता निःसंग तथा निःशल्य विशेष।।१।।
मद माया असत्य के मर्दक, तपःप्रभावी हे परमेश।
गुण-शीलादिरत्नत्रयसागर, हे अनंत अप्रमेय महेश।।
महति पूज्य महावीर वीर, हे वर्धमान हे बुद्धि ऋषीश।
नमस्कार हो नमस्कार हो, नमस्कार हो तुम्हें हमेश।।२।।
मेरा मंगल करें सर्व, अर्हंत सिद्ध बुद्धा जिनराज।
केवलि जिन अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी ऋषिराज।।
चौदश पूर्व अंग पारंगत, अंगबाह्य श्रुतसंपन्ना।
बारह तप तपसी गुण और, गुणोंयुत महाऋद्धि शरणा।।३।।
तीर्थ और तीर्थंकर प्रवचन, प्रवचनयुत व ज्ञान ज्ञानी।
सद्दर्शन सम्यग्दृष्टी, संयम व संयमी मुनिध्यानी।।
विनय तथा सुविनययुत साधू, ब्रह्मचर्य व्रत ब्रह्मचारी।
गुप्ति गुप्तिधर मुक्ति मुक्तियुत, समिति और समितिधारी।।४।।
स्वमत और परमत के ज्ञाता, क्षमाशील अरु क्षपक मुनी।
क्षीणमोह यति बोधितबुद्ध, बुद्धिऋद्धीयुत परममुनी।।
चैत्यवृक्ष जिनबिम्ब अकृत्रिम-कृत्रिम जितने त्रिभुवन में।
मेरा मंगल करें सभी ये, ये मंगलप्रद तिहुँजग में।।५।।

---

१. प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी में 'माया' ऐसा पाठ है।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि, इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं, गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पव्वत्ति-त्थेर-कुल-यराणं, चाउवण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु। जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं! एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरणसुद्धो।।९।।

(इति निषिद्धिकादण्डकः।)

पडिक्कमामि भंते! देवसियस्स (राइयस्स) अइचारस्स अणाचारस्स मणदुच्चरियस्स वचिदुच्चरियस्स कायदुच्चरियस्स णाणाइचारस्स

ऊर्ध्व अधो अरु मध्यलोक में, सिद्धायतन नमूँ उनको।
सिद्धक्षेत्र अष्टापद सम्मेदाचल ऊर्जयन्त गिरि को।।
चंपा पावा नगरि मध्यमा, हस्तिबालिका मंडप में।
और अन्य भी मनुज लोक में, तीर्थ क्षेत्र सबको प्रणमें।।६।।
मोक्षशिला को प्राप्त सिद्ध, जिनबुद्ध कर्म से मुक्त महान।
विगत कर्मरज नीरज विरहित, भावकर्ममल से अमलान।।
पांच भरत पांच ऐरावत, पांचों महाविदेहों में।
सूरि उपाध्याय गुरू प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर जितने।।७।।
चर्तुवर्णयुत श्रमण संघ के, साधू जितने इस जग में।
संयम तपसी ये सब मेरे, पावन मंगल हेतु बनें।।
भावसहित मैं त्रिविधशुद्धियुत, अंजलि मस्तक पर धरके।
त्रिविधक्रिया में शीश झुकाकर, सबको वंदूँ रुचि करके।।८।।

।। इति निषिद्धिका दण्डक।।

शंभु छन्द — हे भगवन् ! दिन में (रात्रिक) व्रतों में, जो अतिचार अनाचार दोष हुए।
उन सबका मैं प्रतिक्रमण करूँ, चारित में जो अतिचार हुए।।
मन का दुश्चरित वचन दुश्चारित, काय दुश्चरित यदी हुए।
ज्ञानातिचार[१] दर्शन-तप में, अतिचार वीर्य अतिचार हुए।।

---

१. ज्ञान, दर्शन, तप, वीर्य और चारित्र इन पांच पंचाचारों में जो अतिचार हुए हों।

दंसणाइचारस्स तवाइचारस्स वीरियाइचारस्स चारित्ताइचारस्स। पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं समिदीणं तिण्हं गुत्तीणं छण्हं आवासयाणं छण्हं जीवणिकायाणं विराहणाए पील कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।

पडिक्कमामि भंते! अइगमणे णिग्गमणे ठाणे गमणे चंकमणे उव्वत्तणे आउंचणे पसारणे आमासे परिमासे कुइदे कक्कराइदे चलिदे णिसण्णे सयणे उव्वट्टणे परियट्टणे एइंदियाणं वेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियाणं जीवाणं संघट्टणाए संघादणाए उद्दावणाए परिदावणाए विराहणाए एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।२।।

पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए विराहणाए उड्ढमुहं चरंतेण वा अहोमुहं चरंतेण वा तिरियमुहं चरंतेण वा दिसिमुहं चरंतेण वा विदिसिमुहं चरंतेण वा

जो पाँच महाव्रत पाँच समिति, त्रयगुप्ति षडावश्यक व्रत हैं।
छह जीव निकाय कहे इन सबकी, मैंने विराधना की है।।
इन जीवों को पीड़ा की मैंने या पर से करवायी हो।
करते को भी अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।
हे भगवन् ! शीघ्र गमन करने, निर्गमन क्रिया व ठहरने में।
जो गमन किया अरु व्यर्थ गमन, उद्वर्तन अरु परिवर्तन में।।
हस्तादि संकुचन फैलाने, आमर्शन[१] तनु[२] स्पर्शन में।
पूत्कार किये कर्कश[३] बोले, चलने में तथा बैठने में।।
सोने में सोकर उठने में, उठकर सोने इन किरिया में।
एकेन्द्री द्वीन्द्री त्रीन्द्री चउ-इन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीव हने।।
जीवों का परस्पर संघट्टन, पुंजीकरने व मारने से।
परिताप विराधन करने से, दिनभर में (रात्री में) जो कुछ दोष लगे।।
व्रत में कुछ भी हो अतिक्रम व्यतिक्रम, अतिचार अनाचारादी जो।
इन सबका मैं प्रतिक्रमण करूँ, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।
हे भगवन् ईर्यापथिक दोष का, प्रतिक्रमण करता हूँ मैं।
ऊपर मुखकर नीचे मुखकर, तिरछे मुख करके चलने में।।

---

१. शरीर के किसी निश्चित प्रदेश का र्स्पश करना 'आमर्श' है। २. सर्व शरीर का स्पर्शन 'परिमर्श' है। ३. दांत किटकिटाना या अतिकर्कश बोलना।

पाणचंकमणदाए वीयचंकमणदाए हरियचंकमणदाए उत्तिंग-पणय-दय-मट्टिय-मक्कडय-तंतु-सत्ताण चंकमणदाए पुढविकाइयसंघट्टणाए आउकाइय-संघट्टणाए तेउकाइयसंघट्टणाए वाउकाइयसंघट्टणाए वणप्फदिकाइयसंघट्टणाए तसकाइयसंघट्टणाए उद्दावणाए परिदावणाए विराहणाए इत्थ मे जो कोई इरियावहियाए अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

पडिक्कमामि भंते! उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिय-पइट्ठावणियाए पइट्ठावंतेण जे केई पाणा वा भूदा वा जीवा वा सत्ता वा संघट्टिदा वा संघादिदा वा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।४।।

चउदिश में मुखकर या विदिशाओं, में मुख करके चलने से।
दो त्रय चउ इंद्रिय जीव उपरि, अरु बीज हरित पर चलने से।।
उतिंग[1] पणय[2] हिमकण जल अरु, मट्टिय[3] मकड़ी तंतू[4] ऊपर।
पृथ्वी जल अग्नि वायु कायिक, चउ सत्त्वों[5] ऊपर चलने पर।।
पृथ्वीकायिक संघटन किया, जलकायिक का संघटन किया।
अग्नीकायिक संघटन किया, वायूकायिक संघटन किया।।
संघटन वनस्पतिकायिक का, त्रसकायिक का संघटन किया।
इन सबका प्राण वियोग किया, परिताप विराधन यदी किया।।
इस ईर्यापथ से चलने में, मुझसे अतिचार हुए कुछ जो।
या अनाचार भी हुए प्रभो! वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करूँ, मलमूत्र थूक नासामल को।
या अन्य विकृति[6] को तजने में, हुए दोष प्रतिष्ठापन में जो।।
विकलत्रय प्राण[7] व भूत वनस्पति, जीव पंचेंद्रिय सत्त्व चऊ।
भू उदक अग्नि अरु वायु इन्हों का, संघट्टन संघात कियो।।
मारण या परितापन से इन, सबमें दिनभर में (रात्री में) कुछ भी जो।
अतिचार अनाचारादि हुए, वह दृष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।।

---

१. अतिसुकुमार ईलि कृमि को उत्तिंग कहते हैं। २. काई या कांजी आदि ऊपर लगी हुई फफूंदी पणय है। ३. बहुत पैर जिसके रहते हैं ऐसा जो 'कनखजूरा' जैसा प्राणी है उसे 'मट्टिय' कहते हैं। ४. तंतुणक कोई जीव है। ५. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार को सत्त्व कहते हैं। ६. अन्य विकृति से पसीना आदि शरीर मल समझना। ७. विकलत्रय 'प्राण' कहलाते हैं, वनस्पति को 'भूत' कहते हैं, पंचेन्द्रिय को 'जीव' और पृथ्वी आदि चार को सत्त्व नाम है।

पडिक्कमामि भंते! अणेसणाए पाणभोयणाए पणयभोयणाए वीयभोयणाए हरियभोयणाए आहाकम्मेण वा पच्छाकम्मेण वा पुराकम्मेण वा उद्दिट्ठयडेण वा णिद्दिट्ठयडेण वा दयसंसिट्ठयडेण वा रससंसिट्ठयडेण वा परिसादणियाए पइट्ठावणियाए उद्देसियाए णिद्देसियाए कीदयडे मिस्से जादे ठविदे रइदे अणसिट्ठे बलिपाहुडदे पाहुडदे घट्टिदे मुच्छिदे अइमत्तभोयणाए इत्थ मे जो कोई गोयरस्स अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।५।।

पडिक्कमामि भंते! सुमणिंदियाए विराहणाए इत्थिविप्परियासियाए दिट्ठिविप्परियासियाए मणविप्परियासियाए वचिविप्परियासियाए कायविप्परिया-

---

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण करूँ, एषण समिति में दोष हुए।
पानक भोजन पुष्पित भोजन, अरु बीज हरित भोजन जु किये।।
जो अध:कर्म[1] निर्मित भोजन, पश्चात्[2] अरु पुराकर्म[3] कीया।
उद्दिष्टदोष[4] निर्दिष्टदोष[5], जलसंश्रित रससंसृष्ट[6] लिया।।
करपुट से गिरा-गिरा खाया[7], व प्रतिष्ठापनिका[8] दोष किया।
उद्देशिक[9] निर्देशिक[10] व क्रीतकृत[11], मिश्रजात[12] थापित[13] भि लिया।।
अनिसृष्ट[14] रचित[15] बलिप्राभृत[16] प्राभृत[17], घट्टित[18] अतिगृद्धी[19] करके।
अतिमात्र किया आहार एषणा-समिती में दूषण करके।।
इस गोचरिचर्या में कुछ भी, अतिचार व अनाचार हुए जो।
इन दोषों का शोधन करता, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।५।।
हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करूँ, स्वप्ने में किया विराधन जो।
स्त्री में विपर्यास[20] बुद्धी, दृष्टी[21] से अशुभभाव हुए जो।

---

१. छह जीव घात से-पंचसूना से बनाया भोजन अध:कर्म है। २. साधु आहार कर चले जायें पुनः भोजन बनाना 'पश्चात् कर्म' है। ३. मुनि के आहार के लिए आने पर भोजन पकाना 'पुराकर्म' है। ४. मुनि का ही उद्देश्य करके भोजन बनाना। ५. आपके लिए यह बनाया है, ऐसा कहना। ६. घी, तैल आदि से चिकने हाथ या पात्र से आहार देना। ७. करपात्र से गिरा-गिराकर खाना 'परिसातिका' दोष है। ८. खड़े होने का, बर्तन रखने का और दातार के खड़े होने का ऐसे तीन स्थान को न देखकर आहार लेना। ९. अन्य लिंगी के निमित्त बना आहार।। १०. पर के हाथ से दिलाया आहार। ११. आहार के समय खरीदकर लाकर दिया आहार। १२. पाखंडी और गृहस्थों के निमित्त बना भोजन। १३. दूसरे बर्तन में निकालकर अन्यत्र रखा गया आहार। १४. गृहस्वामी के द्वारा निषिद्ध आहार। १५. रसना को गृद्धिकारी आहार 'रचित' या 'रतिद' है। १६. यक्ष, नाग आदि को चढ़ाने के लिए नैवेद्य 'बलि' कहलाता है। १७. व्रतोद्यापन के लिए बनाया गया भोजन 'प्राभृत' है। १८. शुद्ध-अशुद्ध से संसर्गित आहार। १९. अतिगृद्धि से आहार लेना 'मूर्च्छित' दोष सहित है। २०. स्त्रियों के सेवन के बिना भी सेवन आदि का अभिप्राय 'स्त्री विपर्यासिका' है। २१. स्त्रियों के अवयवों को न देखते हुए भी देखने का अभिप्राय होना 'दृष्टिविपर्यासिका' है।

सियाए भोयणविप्परियासियाए उच्चावयाए सुमिणदंसणविप्परियासियाए पुव्वरए पुव्वखेलिए णाणाचिंतासु विसोतियासु इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।६।।

पडिक्कमामि भंते! इत्थीकहाए अत्थकहाए भत्तकहाए रायकहाए चोरकहाए वेरकहाए परपासंडकहाए देसकहाए भासकहाए अकहाए विकहाए णिट्ठुल्लकहाए परपेसुण्णकहाए कंदप्पियाए कुक्कुच्चियाए डंबरियाए मोक्खरियाए अप्पपसंसणदाए परपरिवादणदाए परदुगंछणदाए परपीडाकराए सावज्जाणुमोयणियाए इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।७।।

मन में विपरीतभाव[1] वच के, कुत्सित व काय के कुत्सित जो।
भोजन का विपर्यास[2] शुक्रच्युति[3], स्वप्नदर्श[4] कुत्सित भी जो।।
पूरबरत पूरबक्रीडत नाना-चिंता[5] निद्रादिक में जो।
दिन में (रात्रिक) अतिचार अनाचार हुए, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।६।।

हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करूँ, जो दोष लगे विकथाओं से।
स्त्री संबंधी राग कथा, भोजन नृप चोर कथाओं से।।
पाखंडी गुरु अरु देश व भाषा-कथा[6] तथा अकथा[7] विकथा[8]।
निष्ठुरवच परपैशून्य व कांदर्पिक[9] कौत्कुच[10] कलहादि[11] कथा।।
मौखर्य[12] व आत्मप्रशंसा पर-आरोप व परनिंदादि कथा।
पर की पीड़ादि कथा तथैव, सावद्यदोष अनुमती कथा।
इन विकथाओं के करने से, दिनभर में (रात्री में) मुझ से कुछ भी जो।
अतिचार अनाचार किये गये, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।७।।

---

१. इंद्रियों के विषयों में मन का विपरीत भाव होना। २. भोजन न करते हुए भी नींद में स्वप्न में खाना। ३. स्त्रियों में रागभाव के उद्रेक से वीर्य का च्युत हो जाना। ४. स्वप्न के देखने से विपरीत बुद्धि होना। ५. पूर्व के भोगे आदि विषयों का बार-बार स्मरण होना। ६. स्त्री, धन, भोजन, राजा या राज्य, चोर, बैर, परपाखंडी, देश और भाषा इन संबंधी नव कथायें यहां ली हैं। स्त्री आदि के बारे में रागभाव से चर्चा करना स्त्री कथा है। पुराण शास्त्रों में माता मरुदेवी, श्रीमती आदि के रूप का वर्णन पढ़ना सुनाना, सुनना आदि स्त्रीकथा दोष नहीं है ऐसे ही सर्वत्र समझना। ७. तप स्वाध्याय आदि से रहित असंबद्ध प्रलाप अकथा है। ८. विरूपक-खोटी कथा। ९. राग के उद्रेक से हंसते हुए अशिष्ट वचन बोलना। १०. राग से हंसी मजाक करते हुए काय की गलत चेष्टा करना। ११. विरह, कलह आदि की कथा। १२. घृष्टता से बहुत बकवास करना।

पडिक्कमामि भंते! अट्टज्झाणे रुद्दज्झाणे इहलोयसण्णाए परलोयसण्णाए आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए कोहसल्लाए माणसल्लाए मायासल्लाए लोहसल्लाए पेम्मसल्लाए पिवाससल्लाए णियाणसल्लाए मिच्छादंसणसल्लाए कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाए किण्हलेस्सपरिणामे णीललेस्सपरिणामे काउलेस्सपरिणामे आरम्भपरिणामे परिग्गहपरिणामे पडिसयाहिलासपरिणामे मिच्छादंसणपरिणामे असंजमपरिणामे कसायपरिणामे पावजोगपरिणामे कायसुहाहिलासपरिणामे सद्देसु रूवेसु गंधेसु रसेसु फासेसु काइयाहिकरणियाए पादोसियाए परिदावणियाए पाणाइवाइयासु, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।८।।

हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करूँ, जो आर्त रौद्र दुर्ध्यान किया।
इस भवसंज्ञा परभवसंज्ञा, आहार व भय मैथुन संज्ञा।।
परिग्रह संज्ञा[1] पुनि क्रोधशल्य, अरु मानशल्य माया शल्या।
की लोभ अरु प्रेम शल्य व पिपासा-शल्य तथा निदान शल्या।
की मिथ्यादर्शनशल्य[2] क्रोध मद, माया लोभ कषाय किया।
काली लेश्या नीली लेश्या, कापोत अशुभ लेश्यादि किया।।
आरंभ-परीग्रह परीणाम, प्रतिश्रय[3] अभिलाषा भाव किये।
मिथ्यादर्शन परिणाम असंयम, अरु कषाय परिणाम किये।।
किये पापयोगपरिणाम[4] कायसुख, अभिलाषा परिणाम किये।
किये शब्द रूप रस गंध स्पर्श[5], कायिक सदोष[6] अधिकरण किये।।
प्रादोषिक[7] परिद्राविणी[8] क्रिया, प्राणातिपात[9] कुछ भी किये जो।
दिन भर में (रात्री में) अतिचार अनाचार, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।८।।

---

१. इहलोक, परलोक, आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये छह संज्ञायें मानी हैं। २. क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, पिपासा, निदान और मिथ्यात्व ये आठ शल्य मानी हैं। इनमें सेइस लोक में विषयों की आकांक्षा को पिपासा शल्य कहा है। ३. प्रतिश्रय—मठ, वसतिका आदि में मूर्च्छा परिणाम 'प्रतिश्रय अभिलाषा परिणाम' है। ४. पापों के योग्य परिणति होना। ५. पांचों इंद्रियों के विषयों में, शब्दादि में अभिलाषाभाव होना। ६. काय से सावद्य क्रिया और जीव-अजीव अधिकरण से कर्मों के आस्रव की क्रिया। ७. प्रकृष्ट दोष-प्रदोष की क्रिया—मन, वचन, काय के व्यापार रूप क्रिया प्रादोषिकी क्रिया है। ८. दुःखोत्पादक क्रिया परिद्राविणी क्रिया है। ९. जीवों के इंद्रिय आदि प्राणों का या एक-दो आदि प्राणों का घात करना प्राणातिपातिकी क्रिया है।

पडिक्कमामि भंते! एक्के भावे अणाचारे, वेसु रायदोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु, एयारसविहेसु उवासयपडिमासु, वारसविहेसु भिक्खुपडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु, चउदसविहेसु भूदगामेसु, पण्णरसविहेसु पमायठाणेसु, सोलसविहेसु पवयणेसु, सत्तारसविहेसु असंजमेसु, अट्ठारसविहेसु असंपराएसु, उणवीसाए णाहज्झाणेसु*, वीसाए असमाहिट्ठाणेसु, एक्कवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरिहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए

हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करूँ, है एक भाव जो अनाचार।
दो रागद्वेष त्रय गुप्ति त्रिदंड, त्रिगारव और कषाय चार।।
चउ संज्ञा पांच महाव्रत पण, समिती छह जीव निकाय कहे।
छह आवश्यक भय सात आठ-मद ब्रह्मचर्यगुप्ती नव हैं।।
दश श्रमण धर्म ग्यारह प्रतिमा, बारहविध भिक्षू[१] प्रतिमा हैं।
तेरह विध[२] क्रियास्थान चतुर्दश, भूत[३] व प्रमाद[४] पंद्रह हैं।।
सोलह प्रवचन[५] सत्रहों असंयम[६] असंपराय[७] अठारह हैं।
उन्नीस नाथ अध्ययन[८] कथा असमाधिस्थान[९] सुबीस कहें।।
इक्कीस सबल[१०] बाइस परिषह तेईस सूत्रकृत[११] अध्ययन हैं।
चौबिस अरहंतदेव पचीस भावना पृथ्वी[१२] छब्बिस हैं।।

---

१. उत्तम संहननधारी मुनि दुर्लभ आहार का वृत्तिपरिसंख्यान करके आहार को निकले, एक मास में आहार करके ध्यान में स्थित हो जावे यह एकभिक्षु प्रतिमा है ऐसे बारह भेद टीकाकार ने किये हैं, ये ही बारह भिक्षु प्रतिमा हैं। २. छह आवश्यक, पंच परमेष्ठी नमस्कार, असही और निसही ये तेरह क्रियायें हैं। ३. चौदह जीव समास ही चौदह भूतग्राम-जीवसमूह हैं। ४. चार विकथा, चार कषाय, पांच इंद्रियां, एक स्नेह और एक निद्रा ये १५ प्रमाद हैं। ५. विभक्ति, काल और लिंग के ३-३ भेद ऐसे ९, अधिक, न्यून और मिश्र ये ३, समय, लोक, दृष्ट और परोक्ष ये ४ सब मिलाकर ९+३+४=१६, ये सोलह प्रवचन माने हैं। ६. पांच आस्रवों से विरति, पांच इंद्रियों का निग्रह, चार कषायजय और तीन गुप्ति ये १७ संयम हैं। इनसे विपरीत १७ असंयम हो जाते हैं। ७. दश धर्म, पांच समिति, तीन गुप्ति इन १८ को नहीं धारण करना ये १८ असंपराय-प्रकृष्ट पापास्रव के कारण हैं। ८. उन्नीस प्रकार की कथायें टीकाकार ने दी हैं। अथवा गुणस्थान, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और १४ मार्गणा इनको १९ नाथाध्ययन माना है। ९. बीस असमाधि स्थान टीकाकार ने खोले हैं। १०. पांच रस, पांच वर्ण, दो गंध, आठ स्पर्श इन २० में और गृहस्थ परिवार में राग सहित होना ये २१ 'सबल' हैं। ११. तेईस प्रकार के सूत्रकृत अध्ययन हैं। १२. पृथ्वी के २६ भेद टीकाकार ने किये हैं।

* प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी के आधार से।

किरियट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगारगुणेसु, अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु, एउणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु, तीसाए मोहणीयठाणेसु, एक्कत्तीसाए कम्मविवाएसु, बत्तीसाए जिणोवएसेसु, तेत्तीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाणं अच्चासणदाए, अजीवाणं अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासणदाए, दंसणस्स अच्चासणदाए, चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुपण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि, अगरहियं गरहामि, अणिंदियं णिंदामि,

सत्ताइस विध अनगार सुगुण[१] अरु मूलसुगुण अट्ठाइस हैं।
उनतीस पापसूत्र[२] प्रसंग मोहनीय[३] थान भी तीस कहे।।
इकतीसहिं कर्मोदय विपाक[४] बत्तिस विध जिन उपदेश[५] कहे।
तेतिस अत्यासादना[६] दोष इन सबमें जो कुछ दोष हुए।।
संक्षेप से आसादना सात में जीवों के आसादन से।
अजीव के आसादन ज्ञानासादन दर्शन सादन से।।
चारित आसादन तप का आसादन वीर्यासादन से भी।
मैं सबकी गर्हा करता हूँ दुश्चरित किये पहले जो भी।।
मैं वर्तमान के दोषों को प्रतिक्रमण विधी से दूर करूँ।
आगे होने वाले दोषों का भी मैं प्रत्याख्यान करूँ।।
जिन दोषों की गर्हा नहिं की, मैं उनकी गर्हा करता हूँ।
जिन दोषों की निंदा नहिं की, अब उनकी निंदा करता हूँ।।
जिनका आलोचन नहीं किया, उनका आलोचन करता हूँ।
आराधन चउ स्वीकार करूँ विराधन का प्रतिक्रम करता हूँ।

---

१. द्वादश भिक्षु प्रतिमा, आठ प्रवचन माता, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष इन सात का अभाव ये २७ अनगार गुण हैं। २. चित्रकर्म आदि सूत्र ऐसे २९ पापसूत्र प्रसंग माने हैं। ३. मोहनीय स्थान ३० टीका में स्पष्ट किये हैं। ४. कर्मविपाक के ३१ भेद टीका में हैं। ५. छह आवश्यक, बारह अंग, चौदह पूर्व इन ३२ का उपदेश जिनेन्द्रदेव कृत है। ६. पांच अस्तिकाय, छह जीव निकाय, पांच महाव्रत, आठ प्रवचन माता और नव पदार्थ इनकी आसादनाविराधना करना ३३ अत्यासादना दोष है। अथवा १. अर्हंत, २. सिद्ध ३. बुद्ध ४. जिन ५. केवली ६. केवलीप्रणीतधर्म ७. ज्ञान ८. दर्शन ९. चारित्र १०. तप ११. नियम १२. संयम १३. आचार्य १४. उपाध्याय १५. साधु १६. गण १७. गणी १८. तपस्वी १९. प्रवर्तक २०. स्थविर २१. कुलकर २२. साधर्मी २३. परधर्मी २४. श्रमण २५. श्रमणी २६. श्रावक २७. श्राविका २८. देव २९. देवी ३०. मनुष्य ३१. मनुष्यनी ३२. तिर्यंच ३३. तिर्यंचनी ये ३३ भेद कहे हैं, इनकी आसादना तेतीस अत्यासादना है।

अणालोचियं आलोचेमि, आराहणमब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।९।।

इच्छामि भंते! इमं णिग्गंथं पावयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं अवित्तहं अवि संति पवयणं उत्तमं तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि इदोत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं (ण भवं) ण भविस्सदि णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति पडिवियाणंति

मुझ से इन सबमें जो कुछ भी दिनभर में (रात्री में) अतीचार हुए हों।
या अनाचार भी हुए प्रभो! वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।९।।
हे भगवन्! इच्छा करता हूँ, ऐसे निर्ग्रंथरूप की ही।
जिन आगम[1] कथित अनुत्तर यह केवलिसंबंधी[2] पूर्ण[3] यही।।
रत्नत्रयमय नैकायिक सम-एकत्वरूप सामायिक[4] है।
संशुद्ध शल्ययुतजन का शल्यविघातक और सिद्धिपथ है।।
यह श्रेणिमार्ग[5] अरु क्षमामार्ग मुक्तीपथ[6] तथा प्रमुक्तिपथ[7] है।
यह मोक्षमार्ग[8] व प्रमोक्षमार्ग[9] निर्यानपथ[10]रु निर्वाणपथ[11] है।।
यह सर्वदु:खपरिच्युतीमार्ग सुचरित्रपरिनिर्वाणमार्ग[12]।
अविसंवादक[13] प्रवचन उत्तम आश्रयते[14] इसको मुनीनाथ।।
इसकी मैं श्रद्धा करता हूँ, इसकी ही प्राप्ती करता हूँ।
इसमें ही मैं रुचि रखता हूँ, इसका ही स्पर्श करता हूँ।।
इससे बढ़कर नहिं अन्य कोई नहिं हुआ न होगा आगे भी।
सुज्ञान से दर्शन से चरित्र से सूत्र से मुनि धरते यह ही।।

१. प्रावचन-प्रवचन-आगम में कथित है। २. यह निर्ग्रंथ मुद्रा केवली बनाने वाली है। ३. छठे गुणस्थान से अयोगकेवलीपर्यंत यही मुद्रा रहती है अत: परिपूर्ण है। ४. सर्वसावद्यात्यागरूप है। ५. उपशम और क्षपक श्रेणी इसी निर्ग्रंथलिंग से चढ़ते हैं। ६. परिग्रह के त्याग का मार्ग है। ७. पूर्णनि:स्पृहता का मार्ग है। ८. संपूर्ण कर्मों के क्षय का मार्ग है। ९. अर्हंत, सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का मार्ग है अथवा मोक्ष-अर्हंत अवस्था और प्रमोक्ष-सिद्ध अवस्था। १०. संसार पर्यटन से निकलना निर्यान है। ११. संसार से उपरत अथवा परमसुख को प्राप्त करना निर्वाण है। १२. सामायिक चारित्र आदि सुचरित हैं अर्थात् यह निर्ग्रंथलिंग उसी भव से या दो-तीन भव से मोक्ष प्राप्त कराने वाला है। १३. यह अवितथ है-समीचीन है-विसंवादी नहीं है। १४. मोक्षार्थी मुनि इसी का आश्रय लेते हैं। 'अविसंति'-आविशंति ऐसा भी पाठ है।

समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवहिणियडिमाणमायमोसमिच्छणाण-मिच्छदंसण-मिच्छचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तं, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१०।।

पडिक्कमामि भंते! सव्वस्स सव्वकालियाए इरियासमिदीए भासासमिदीए एसणासमिदीए आदाणणिक्खेवणसमिदीए उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणयविय-डिपइट्ठावणिसमिदीए मणगुत्तीए वचिगुत्तीए कायगुत्तीए पाणादिवादादो वेरमणाए मुसावादादो वेरमणाए अदिण्णदाणादो वेरमणाए मेहुणादो वेरमणाए, परिग्गहादो वेरमणाए राइभोयणादो वेरमणाए सव्वविराहणाए सव्वधम्म अइक्कमणदाए

इससे ही जीव सिद्ध होते बुद्ध[1] होते-ऋद्धी पाते।
मुक्ती पाते निर्वाणप्राप्त[2]-कृतकृत्य निजात्मसौख्य पाते।।
शारीरिक मानस आगंतुक सब दु:खों का क्षय कर देते।
संपूर्ण चराचर त्रिभुवन को वे ही साक्षात् जान लेते।।
मैं श्रमण-मुनी हूँ संयत हूँ मैं उपरत[3] हूँ उपशांत[4] भि हूँ।
परिग्रह वंचन[5] व मान माया अरु असत्य से अतिविरक्त हूँ।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचरित्र से विरक्त हूँ।
सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक् चारित में रुचि रखता हूँ।।
जो जिनवर भाषित हैं इनमें, मुझसे दिनभर में (रात्री में) कुछ भी जो।
अतिचार अनाचार दोष हुए, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१०।।
हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण करूँ, सब सार्वकाल[6] के दोषों में।
ईर्या भाषा एषणा और, आदान निक्षेपण समिती में।।
मल मूत्र थूक नासिकामल, विकृति को तजने समिति में।
मनगुप्ति वचनगुप्ति व काय-गुप्ती प्राणीवध विरती में।।
असत्यविरती अदत्तविरती, मैथुन व परिग्रह विरती में।
रात्रीभोजन विरती समस्त, जीवादि विराधन करने में।।
सम्पूर्ण धर्म आवश्यक्रियादी, का अतिक्रमण[7] भि करने में।
सब ही मिथ्या आचरणों से, बहु दोष उपार्जित करने में।।

१. निर्ग्रंथलिंग से ही जीव बुद्ध होते हैं, बुद्धि आदि ऋद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं और केवली हो जाते हैं। २. निर्वाण अर्थात् कृतकृत्य हो जाते हैं। ३. विषयों से व्यावृत्त हूँ। ४. राग-द्वेष के अभाव से मैं उपशांत हूँ। ५. निकृति-वंचना, ठगना। ६. सभी काल में हुए दोष सर्वकालिक हैं। ७. उलंघन करने से।

सव्वमिच्छाचरियाए इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।११।।

इच्छामि भंते! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ (राईओ) अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो काइओ वाइओ माणसिओ दुच्चिंतीओ दुब्भासिओ दुप्पारिणामीओ दुस्समिणीओ, णाणे दंसणे चरित्ते सुत्ते सामाइए, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं विराहणाए अट्ठविहस्स कम्मस्स णिग्घादणाए अण्णहा उस्सासिएण वा णिस्सासिएण वा उम्मिसिएण वा णिम्मिसिएण वा खासिएण वा छिंकिएण वा जंभाइएण वा सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयारेहिं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

मुझसे जो कुछ भी दिनभर में (रात्रि में) अतिचार अनाचार हुए हों।
हे भगवन् ! उनकी शुद्धी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।११।।
हे भगवन् ! मैं इच्छा करता हूँ वीरभक्ति के व्युत्सर्ग[१] की।
जो मुझसे दिनभर में (रात्री में) अतिचार, अनाचार आभोग[२] यदी।।
हुए अनाभोग[३] कायिक[४] वाचिक[५] मानस[६] तथैव दुश्चिंतन से।
दुर्भाषण से दुष्परिणामों द्वारा तथैव दुःस्वप्नों से।।
सुज्ञान में दर्शन में चरित्र में जिन सूत्रों में सामायिक में।
पांचों महाव्रत पण समिति तीन गुप्ती छह जीव निकायों में।।
छह आवश्यक किरिया इन सबके दोष विशोधन हेतु मैं।
अरु आठ प्रकार कर्म के घातन हेतु करूँ तनुसर्ग मैं।।
बहु अन्य प्रकारों से उच्छ्वास तथा निःश्वास के लेने से।
अरु आंख खोलने पलक झपकने खांसी छींक जंभाई से।।
बहु सूक्ष्म अंग के हिलने डुलने नेत्र चलाचल करने से।
जो दोष किये इन सब असमाधी[७] कारक बहु आचरणों से।।
मैं जब तक अर्हन्, भगवन्तों, की पर्युपासना करता हूँ।
तब तक तो पापकर्म दुश्चारित इन सबको मैं तजता हूँ।।१२।।

---

१. कायोत्सर्ग। २. अतिप्रकट दोष आभोग है। ३. अप्रकट दोषों को करना अनाभोग है। ४. दुश्चरित्रलक्षण। ५. खोटे वचनरूप। ६. खोटे चिंतनरूप। ७. धर्म-शुक्ल ध्यान समाधि हैं इन्हें न करना असमाधि है।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेणसकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं निष्ठितकरण-वीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(इति प्रतिज्ञाप्य)

दिवसे १०८ रात्रौ च ५४ उच्छ्वासेषु णमो अरिहंताणं इत्यादि (दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्) पश्चात् थोस्सामीत्यादि (चतुर्विंशति-स्तवं) पठेत्।

(ऐसी प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करें। अनंतर रात्रिक प्रतिक्रमण में ५४ उच्छ्वास में १८ बार णमोकार मंत्र जपकर पंचांग नमस्कार करें व दैवसिक प्रतिक्रमण में १०८ उच्छ्वास में ३६ बार णमोकार मंत्र जपें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामि स्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके वीरभक्ति पढ़ें।)

वीरभक्तिः

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।

व्रत समिती इंद्रिय निरोध छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के प्रमाद से इनमें अतिचार।
उनसे दूर हुआ हूँ मेरा छेदोपस्थापन हो नाथ।।१।।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं निष्ठितकरणवीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृष्ठ ५ से सामायिक दण्डक पढ़कर दैवसिक प्रतिक्रमण में ३६ बार महामंत्र का जाप्य १०८ उच्छ्वासों में करें और रात्रिक प्रतिक्रमण में १८ बार महामंत्र का जाप्य ५४ उच्छ्वासों में करें पुनः पृष्ठ ६ से थोस्सामिस्तव पढ़ें।

वीरभक्ति

चौबोल छंद — जो विधिवत् सब लोक चराचर, द्रव्यों को उनके गुण को।
भूत भविष्यत् वर्तमान, पर्यायों को भी नित सबको।।

जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।१।।
वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य वीरं[1] तपो
वीरे श्री द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि।।२।।
ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरंति।।३।।
व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो, यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः।।४।।
शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्यः (द्घः)
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः।

युगपत समय-समय प्रति जाने, अतः हुए सर्वज्ञ प्रथित।
उन सर्वज्ञ जिनेश्वर महति, वीर प्रभु को नमूँ सतत।।१।।

वीर सभी सुर असुर इन्द्र से, पूज्य वीर को बुध सेवें।
निज कर्मों को हता वीर ने, नमः वीर प्रभु को मुद से।।
अतुल प्रवर्ता तीर्थ वीर से, घोर वीर प्रभु का तप है।
वीर में श्री द्युति कांति कीर्ति, धृति हैं हे वीर! भद्र तुममें।।२।।

जो नित वीर प्रभू के चरणों, में प्रणमन करते रुचि से।
संयम योग समाधीयुत हो, ध्यान लीन होते मुद से।।
इस जग में वे शोक रहित हो, जाते हैं निश्चित भगवन् ।
यह संसार दुर्ग विषमाटवि, इसको पार करें तत्क्षण।।३।।

व्रत समुदाय मूल है जिसका, संयममय स्कंध महान् ।
यम अरु नियम नीर से सिंचित, बढ़ी सुशाखाशील प्रधान।।
समिति कली से भरित गुप्तिमय, कोंपल से सुन्दर तरु है।
गुण कुसुमों से सुरभित सत्तप, चित्रमयी पत्तों युत है।।४।।

शिवसुख फलदायी यह तरुवर, दयामयी छाया से युत।
शुभजन पथिक जनों के खेद, दूर करने में समरथ नित।।

१. घोरं इति पाठः प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयीषु।

दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः।।५।।
चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय।।६।।
धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।७।।
धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं (मुक्किट्ठं), अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।८।।

अंचलिका—**इच्छामि भंते! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु जमणियम-संजम-सील-**

दुरित सूर्य के हुए ताप का, अन्त करे यह श्रेष्ठ महान् ।
वर चारित्र वृक्ष कल्पद्रुम, करे हमारे भव की हान।।५।।
सभी जिनेश्वर ने भवदुःखहर, चारित को पाला रुचि से।
सब शिष्यों को भी उपदेशा, विधिवत् सम्यक् चारित ये।।
पाँच भेद युत सम्यक् चारित, को प्रणमूँ मैं भक्ती से।
पंचम यथाख्यात चारित की, प्राप्ति हेतु वंदूँ मुद से।।६।।
धर्म सर्वसुख खानि हितंकर, बुधजन करें धर्म संचय।
शिवसुखप्राप्त धर्म से होता, उसी धर्म के लिए नमन।।
धर्म से अन्य मित्र नहिं जग में, दयाधर्म का मूल कहा।
मन को धरूँ धर्म में नित, हे धर्म! करो मेरी रक्षा।।७।।
धर्म महा मंगलमय है यह, कहा वीर प्रभु ने जग में।
प्रमुख अहिंसा संयम तपमय, धर्म सदा उत्तम सब में।।
जिसके मन में सदा धर्म है, सुरगण भी उसको प्रणमें।
मैं भी नमूं धर्म को संतत, धर्म बसो मेरे मन में।।८।।

अंचलिका—

हे भगवन् ! श्री वीर भक्ति का, कायोत्सर्ग किया जो मैं।
प्रतिक्रमण के अतिचारों की, आलोचन करता हूँ मैं।।

मूलुत्तरगुणेसु सव्वमईचारं सावज्जजोगं पडिविरदोमि असंखेज्जलोग-अज्झवसायठाणाणि अप्पसत्थजोगसण्णाणिंदियकसायगारवकिरियासु मणवयणकायकरणदुप्पणिहाणाणि परिचिंतियाणि किण्हणीलकाउलेस्साओ विकहापलिकुंचिएण उम्मग हस्सरदिअरदिसोय-(सोग) भयदुगंछवेयणविज्जं-भजंभाइआणि अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणि परिणामदाणि अणिहुदकरचरणमण-वयणकायकरणेण अक्खित्तबहुलपरायणेण अपडिपुण्णेण वासरक्खरावयपरि-संघायपडिवत्तिएण वा अच्छाकारिदं मिच्छा मेलिदं आमेलिदं वा मेलिदं वा अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं आवासएसु परिहीणदाए कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो (मण्णिदो) तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित तप, वीर्य पांच आचारों में।
संयम नियम शील यम में औ, मूलगुणों उत्तर गुण में।।
जितने भी अतिचार हुए औ, पापयोग भी जो मुझसे।
उन सबसे मैं विरक्त होकर, आलोचन करता रुचि से।।
असंख्य लोकसम अध्यवसाय, स्थान योग अप्रशस्त कहे।
संज्ञा इन्द्रिय कषाय गारव, किरियाओं में जो कि हुए।।
मन वच तन के अशुभयोग से, चिंते कृष्ण नील कापोत।
लेश्या विकथा उत्पथ ग्लानी, हास्य रती अरती भय शोक।।
वेद विजृंभित आर्तरौद्र, संक्लेश भाव से किये गये।
अनिभृत कर पग मन वच तन से, इंद्रिय विषयों में अति से।।
स्वर व्यंजन पद परिसंघात के, उच्चारण में हानी से।
अन्य रूप प्रवृत्ती से मिथ्या, मेलित आमेलित विधि से।।
किया अन्यथा दिया अन्यथा, लिया तथा आवश्यक में।
हानी कृत कारित अनुमति से, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।।
व्रतसमिती इन्द्रियनिरोध छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चतुर्विंशति-तीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(ऐसी प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करें। **२७ उच्छ्वास में ९ बार मंत्र जपकर** पंचांग नमस्कार करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामिस्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके चौबीस तीर्थंकर भक्ति पढ़ें।)

चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिः

चउवीसं तित्थयरे, उसहाइवीरपच्छिमे वंदे।
सव्वे सगणगणहरे, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।१।।
ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा, ज्ञेयार्णवान्तर्गता
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोधिकाः।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतै-र्गीतप्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम्।।२।।

जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
उनसे दूर हुआ हूँ मेरा छेदोपस्थापन हो नाथ!।।१।।

अथ सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृष्ठ ५ से सामायिकदण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके पृष्ठ ६ से थोस्सामिस्तव पढ़ें।)

चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति

चौबोल छंद —

वृषभदेव से वीर प्रभू तक, चौबीस तीर्थंकर वंदूँ।
गणयुत सब गणधर देवों को, सिद्धों को शिर से प्रणमूँ।।१।।

जो इस जग में सहस आठ, लक्षणधर ज्ञेयसिंधु के पार।
जो सम्यक् भवजाल हेतु, नाशक रवि शशिप्रभ अधिक अपार।।
जो मुनि इन्द्र देवियों शत से, गीत नमित अर्चित कीर्तित।
उन वृषभादिवीर तक प्रभु को, भक्ती से मैं नमूँ सतत।।२।।

नाभेयं देवपूज्यं, जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं संभवाख्यं, मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेवं।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं
क्षांतं दांतं सुपार्श्वं, सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे।।३।।
विख्यातं पुष्पदन्तं, भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं।
श्रेयांसं शीलकोशं, प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम्।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं, विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रं
धर्मं सद्धर्मकेतुं, शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम्।।४।।
कुन्थुं सिद्धालयस्थं, श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं
मल्लिं विख्यातगोत्रं, खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम्।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वंनागेन्द्रवन्द्यं, शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या।।५।।

अंचलिका—**इच्छामि भंते! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहिदाणं बलदेववासुदेव-**

देवपूज्य वृषभेश अजित, जिनवर त्रैलोक्य प्रदीप महान।
संभव जिन सर्वज्ञ मुनीगण, पुंगव अभिनंदन भगवान।।
कर्म शत्रुहन सुमति नाथ, वर कमल सदृश सुरभित पद्मेश।
श्री सुपार्श्व शमदमयुत शशिवत्, पूर्णचंद्र जिन नमूं हमेश।।३।।
भव भय नाशक पुष्पदंतजिन, प्रथित सु शीतल त्रिभुवन ईश।
शीलकोश श्रेयांस सुपूजित, वासुपूज्य गणधर के ईश।।
इंद्रिय अश्व दमनकृत ऋषिपति, विमल अनंत मुनीश नमूं।
सद्धर्मध्वज धर्मशरणपटु, शमदमगृह शांतीश नमूं।।४।।
सिद्धगृहस्थित कुंथु अरहप्रभु, श्रमणपती साम्राज्य त्यजित।
प्रथितगोत्र मल्लिप्रभ खेचरनुत, सुखराशि सु मुनिसुव्रत।।
सुरपति अर्चित नमिजिन हरिकुल, तिलक नेमि भव अंत किया।।
फणिपति वंद्य पार्श्व, भक्तीवश वर्द्धमान तव शरण लिया।।५।।
अंचलिका— हे भगवन् ! चौबीस भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।

चक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीर-पच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां श्रीसिद्धभक्ति प्रतिक्रमणभक्ति-निष्ठितकरणवीरभक्ति-चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तीः कृत्वा तद्धीनादिकदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(उपर्युक्त प्रतिज्ञा करके पंचांग प्रणाम करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करें। पुनः**२७ उच्छ्वास में ९ जाप्य** करके पंचांग नमस्कार करें। अनंतर तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामिस्तव पढ़कर पुनरपि तीन आवर्त एक शिरोनति करें।)

अष्ट महा प्रातिहार्य सहित जो, पंच महाकल्याणक युत।
चौंतिस अतिशय विशेषयुत, बत्तिस देवेन्द्र मुकुट चर्चित।।
हलधर वासुदेव प्रतिचक्री, ऋषि मुनि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुति के निलय वृषभ से, वीरप्रभु तक महापुरुष।।
मंगल महापुरुष तीर्थंकर, उन सबको शुभ भक्ती से।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूं, वंदूं नमूं महारुचि से।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।
व्रत समिति इन्द्रिय निरोध छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के प्रमाद से इनमें अतिचार।
उनसे दूर हुआ हूं मेरा छेदोपस्थापन हो नाथ !।।१।।

अथ सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां श्रीसिद्धभक्ति-प्रतिक्रमणभक्ति-निष्ठितकरणवीरभक्ति-चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ती: कृत्वा तद्धीनाधिकदोष-विशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृष्ठ ५ से सामायिक दण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके पृष्ठ ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर समाधिभक्ति पढ़ें।

समाधिभक्ति:

अथेष्ट प्रार्थना- **प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः**

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः।।१।।
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेंद्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।२।।
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं
तं खमउ णाणदेवय! मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु।।३।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खणसमाहिभत्तीए, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि**

समाधिभक्ति

अथेष्टप्रार्थना—प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः[1]।

शास्त्रों का अभ्यास, जिनेश्वर नमन सदा सज्जन संगति।
चरितवान् के गुण गाऊँ और दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रियहित वचन कहूँ निज आत्म तत्त्व को नित भाऊँ।
जब तक मुक्ति मिले तब तक, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।१।।

तव चरणांबुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरणयुग में।
तब तक रहें जिनेश्वर जब तक, मोक्ष प्राप्ति नहिं हो जग में।।२।।

अक्षर पद से हीन अर्थ, मात्रा से हीन कहा मैं जो।
हे श्रुतमातः! क्षमा करो सब, मम दुःखों का क्षय कीजो।।३।।

अंचलिका —

भगवन् ! समाधि भक्ति अरु, करके कायोत्सर्ग।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेत ।।१।।

रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका नाम समाधि है।
नित प्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।

---

१. प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इति दैवसिक-रात्रिकप्रतिक्रमणं समाप्तं

रात्रियोगनिष्ठापना क्रिया

नमोऽस्तु रात्रियोगनिष्ठापनक्रियायां योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त कृतिकर्म विधि से पृष्ठ ८ से सामायिकदण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके पृष्ठ ९ से थोस्सामिस्तव पढ़कर वंदनामुद्रा से "जातिजरोरुरोग" इत्यादि बृहद्योगिभक्ति या लघु योगिभक्ति पढ़ें।)

लघु योगिभक्ति-

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतित-सलिले वृक्षमूलाधिवासाः,
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः, काष्ठवत्त्यक्तदेहाः।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता गिरिशिखरगताः स्थानकूटान्तरस्था-
स्ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः।।१।।
गिह्मे गिरिसिहरत्था, वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसरे बाहिरसयणा, ते साहू वंदिमो णिच्चं।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

इस प्रकार पद्यानुवादरूप दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण पूर्ण हुआ।।

रात्रियोग निष्ठापन कब और कैसे करें?

पहले दिन सायंकाल प्रतिक्रमण के बाद जो "रात्रियोग" ग्रहण किया था कि "आज रात्रि में मैं इसी वसतिका में निवास करूँगा।" इसे रात्रियोग प्रतिष्ठापन कहते हैं। इसी रात्रियोग का अब प्रातः रात्रिक-प्रतिक्रमण के बाद समापन करना होता है। यथा-"अद्य रात्रावत्र वसत्यां स्थातव्यमिति नियमविशेषं योगिभक्त्या त्यजेच्च निष्ठापयेत्[1]।" इसकी विधि निम्न प्रकार है-

लघु योगिभक्ति —

बिजली चमके अतिजल वर्षे, वर्षा में तरुतल बैठें।
शीतकाल रात्री में निर्भय, काष्ठसदृश निर्मम तिष्ठें।।
गर्मी में रविकिरण तप्तगिरि, शिखरों पर निजध्यान धरें।
शिवपथ पथिक साधुपुंगव वे, मुझको धर्म प्रदान करें।।१।।
ग्रीष्मऋतू में पर्वत ऊपर, वर्षा में तरु के नीचे।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ रुचि से।।२।।

---

१. अनगार धर्मामृत, अध्याय ९ पृ. ६३५।

गिरिकन्दरदुर्गेषु, ये वसंति दिगम्बराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।३।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढा-इज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूलअब्भो-वासठाणमोणवीरासणेक्कपासकुक्कुडासणचउत्थपक्खखवणादिजोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां........आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।[१] (९ जाप्य)

लघु आचार्य भक्ति —**गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।**
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटिमुनीश्वरान् ।।१।।

अथवा- **गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।**
चारित्रार्णवगंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।१।।

इच्छामि भंते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इति रात्र्यनुष्ठानम् (इस प्रकार यह रात्रि का अनुष्ठान पूर्ण हुआ।)

पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगंबर तनु रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।३।।

अंचलिका — हे भगवन् ! इस योगिभक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पंद्रह कर्मभूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।
मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।१।।

---

१. पश्चिमरात्रि में प्रतिक्रमण व योगिभक्ति के बाद आचार्य वंदना का वर्णन अनगार धर्मामृत में नहीं है किन्तु क्रियाकलाप में है अतः मैंने यहां दे दिया है।

सामायिक कब और कैसे करें?

साधुओं की सामायिक और देववंदना एक है। विधिवत् देववंदना करना इसी का नाम सामायिक है। '**सत्त्वेषु मैत्रीं**' आदि पाठ पढ़कर जाप्य आदि करके सामायिक करना और देवदर्शन के समय देववंदना क्रिया करना ऐसा नहीं है प्रत्युत् त्रिकाल सामायिक के समय ही तीन बार देववंदना का विधान है। उसी को यहाँ सप्रमाण दिखाया जाता है।

मूलाचार में श्रीकुन्दकुन्ददेव ने अट्ठाईस मूलगुणों का वर्णन करते हुए समता नाम के आवश्यक का लक्षण किया है-

''जीविदमरणे लाभा-लाभे संजोयविप्पओगे य।
बंधुरिसुहदुक्खादिसु, समदा सामाइयं णाम।।२३।।''

इसकी टीका में श्री वसुनंदि आचार्य ने कहा है-

''सामाइयं णाम-सामायिकं नाम भवति। जीवितमरणलाभालाभ-संयोगविप्रयोगबन्ध्वरिसुखदुःखादिषु यदेतत्समत्वं समानपरिणामः त्रिकाल-देववंदनाकरणं च तत्सामायिकं व्रतं भवति[१]**।''**

अभिप्राय यह है कि जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, संयोग-वियोग, बंधु-शत्रु और सुख-दुःख आदि में जो समान परिणाम का होना है और त्रिकाल में देववंदना करना है वह सामायिक व्रत है।

अन्यत्र सामायिक के नियतकालिक-अनियतकालिक ऐसे दो भेद करके नियतकालिक में त्रिकालदेववंदना और अनियतकालिक में समताभाव को रखना ऐसा कहा है।

आचारसार ग्रंथ में सामायिक आवश्यक का वर्णन करते हुए सिद्धान्तचक्रवर्ती श्रीवीरनंदि आचार्यदेव तीर्थक्षेत्र या जिनमंदिर में जाकर विधिवत् ईर्यापथशुद्धि और चैत्य-पंचगुरुभक्ति करने का आदेश दे रहे हैं। यथा-

समतोपेतचित्तो यः, स तत्परिणताह्वयः।
प्रकृतोऽत्रायमन्यासु, क्रियास्वेवं निरूपयेत् ।।२२।।
सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः, संशुद्धकरणत्रयः।
धौतहस्तपदद्वन्द्वः, परमानंदमंदिरम् ।।२३।।
चैत्यचैत्यालयादीनां, स्तवनादौ कृतोद्यमः।
भवेदनंतसंसार-संतानोच्छित्तये यतिः।।२४।।
मत्वेति जिनगेहादिं, त्रिपरीत्य कृतांजुलिः।
प्रकुर्वंस्तच्चतुर्दिक्षु सत्र्यावर्तां शिरोनतिम् ।।३०।।
ईर्यांग शुद्ध्यै व्युत्सर्गं कृत्वासीनोनुकंपया।
आलोच्य समतां वर्यां कुर्यादात्मेच्छयान्यदा।।३३।।
क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहं।
विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम् ।।३५।।

---

१. मूलाचार पृ. २९ (ज्ञानपीठ से मुद्रित)

देवतास्तवने भक्ती, चैत्यपंचगुरूभयोः।
चतुर्दश्यां तयोर्मध्ये, श्रुतभक्तिर्विधीयते।।४३।।[1]

जो समता से उपयुक्तचित्त मुनि हैं वे उस सामायिक से परिणत होने से भाव सामायिक हैं। यहाँ-इस सामायिक में यह प्रकरण है अन्य क्रियाओं में भी इसका निरूपण करते हैं। सर्व अन्य क्रियाओं से रहित होकर मन, वचन, काय से शुद्ध होकर हाथ-पैर धोकर परमानन्द के स्थान ऐसे यतिराज अनन्तसंसार परम्परा को छेद करने के लिए जिनबिम्ब और जिनमंदिर आदि के स्तवन आदि करने में उद्यमशील होते हैं। चम्पापुरी, पावापुरी आदि क्षेत्रों के समान पवित्र ऐसे जिनमंदिर आदि की हाथ जोड़कर तीन प्रदक्षिणा देते हुए चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति करते हुए संसारसमुद्र में डूबते हुए जनों के लिए हस्तावलम्बनस्वरूप ऐसे जिनेन्द्रदेव की अर्चा-पूजा-वन्दना करने के लिए मंदिर में प्रवेश करें।

वहाँ पहुँचकर ईर्यापथ शुद्धि करके कायोत्सर्ग करें पुनः बैठकर अनुकम्पा से आलोचना करके समताभावरूप सामायिक को स्वीकार करें। इसके आगे इस क्रिया में देववन्दना आदि क्रिया में इस चैत्यभक्ति का कायोत्सर्ग मैं करता हूँ ऐसी विज्ञापना करके उठकर गुरुस्तवन-णमोकार मंत्र स्तवनपूर्वक उठकर तीन आवर्त एक शिरोनति आदि क्रिया करें।

यहाँ कृतिकर्म का लक्षण दिया है। आगे कहते हैं कि 'देववंदना क्रिया में चैत्य-पंचगुरु ये दो भक्तियाँ की जाती हैं और चतुर्दशी के दिन देव-वन्दना में चैत्यभक्ति के बाद श्रुतभक्ति करके पंचगुरुभक्ति की जाती है' इत्यादि।

यही सारी विधि अनगार धर्मामृत में कही गई है। क्रियाकलाप ग्रंथ में भी छपी हुई है। अनेक प्रमाणों को उद्धृत कर दिगम्बर मुनि ग्रंथ में मैंने स्पष्टीकरण किया है। विशेष जिज्ञासुओं को उन-उन ग्रंथों को देखना चाहिए। यहाँ संक्षेप में सामायिक और देववन्दना को एक सिद्धकर उसी की प्रयोग विधि दी जा रही है।

दिनचर्या के प्रकरण में सूर्योदय से लेकर ४८ मिनट तक इस देववन्दना का काल अनगारधर्मामृत में कहा है। इसी ग्रंथ की आठवीं अध्याय में ६-६ घड़ी का उत्कृष्टकाल कहा है, एक घड़ी २४ मिनट की होती है[२]।

त्रिसंध्यं वंदने युंज्यात्, चैत्यपंचगुरुस्तुती।
प्रियभक्तिं बृहद्भक्तिष्वंते दोषविशुद्धये।।१३।।

तीनों सन्ध्या संबंधी जिनवन्दना में चैत्यभक्ति और पंचगुरु भक्ति पढ़ें तथा वृहद्भक्तियों के अन्त में पाठ की हीनाधिकतारूप दोषों की विशुद्धि के लिए प्रियभक्ति (समाधिभक्ति) करना चाहिए[३]।

इस देववन्दना में छह प्रकार का कृतिकर्म भी होता है। यथा—

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी, निषद्या त्रिवारमावर्ताः।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोढेष्टम् ।।२।।

तथा-"आदाहीणं, पदाहीणं, तिक्खुत्तं, तिऊणदं, चदुस्सिरं, वारसावत्तं, चेदि।"

---

१. आचारसार अ. ९। २. अनगारधर्मामृत अ. ८, श्लोक ७९।
३. अनगारधर्मामृत अ. ९, श्लोक ९३।

(१) वन्दना करने वाले की स्वाधीनता (२) तीन प्रदक्षिणा (३) तीन भक्ति संबंधी तीन कायोत्सर्ग (४) तीन निषद्या-१. ईर्यापथ कायोत्सर्ग के अनन्तर बैठकर आलोचना करना और चैत्यभक्ति संबंधी क्रिया-विज्ञापन करना २. चैत्यभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना और पंचमहागुरुभक्ति संबंधी क्रिया विज्ञापन करना ३. पंचगुरुभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना (५) चार शिरोनति (६) बारह आवर्त। यही सब आगे सामायिक विधि में आता है।

वन्दना योग्य मुद्रा —

मुद्रा के चार भेद हैं-जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दना मुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिनमुद्रा-दोनों पैरों में चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटकाकर कायोत्सर्गरूप से खड़े होना सो जिनमुद्रा है। **योगमुद्रा**-पद्मासन, पर्यंकासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित रखने को जिनेन्द्रदेव योगमुद्रा कहते हैं। **वन्दना मुद्रा**-दोनों हाथों को मुकुलितकर और कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए पुरुष के वन्दना मुद्रा होती है। **मुक्ताशुक्तिमुद्रा**-दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए को आचार्य मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहते हैं।

देववन्दना के लिए जिनमंदिर में पहुँचकर हाथ-पैर धोकर 'निःसहि" का तीन बार उच्चारण कर जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करे। अनंतर "**दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि**" इत्यादि स्तोत्र को पढ़ते हुए चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा देवे। पुनः '**निःसंगोऽहं जिनानां**" इत्यादि दर्शनस्तोत्र पढ़कर यदि खड़े होकर सामायिक करना है तो खड़े होकर "**ईर्यापथशुद्धि पाठ**" से सामायिक शुरू करें। यदि खड़े होकर सामायिक करने की शक्ति नहीं है तो बैठकर करें।

बैठकर भी देववन्दना करने का विधान —

"साधुः पुनर्वंदनां यथोक्तविशेषणविशिष्टः-सपर्यंकः सप्रतिलेखन-मुकुलितवत्सोत्सगितकरः कुर्यात् । कया? अशक्त्या। उद्भो यदि वंदितुं न शक्नुयादित्यर्थः[१]।"

साधु यदि खड़े होकर वंदना नहीं कर सकते हैं-असमर्थ हैं तो पर्यंकासन से बैठकर, पिच्छी लेकर, मुकुलित हाथ जोड़कर वक्षःस्थल के पास रखकर देववंदना करें। (अपनी वसतिका में सामायिक करने में "दृष्टं जिनेन्द्र भवनं......तथा निःसंगोऽहं जिनानां......आदि पढ़ें तो अच्छा ही है, नहीं भी पढ़ें मात्र "पडिक्कमामि भंते।" से भी शुरू कर सकते हैं।)

चैत्यभक्ति में तीन प्रदक्षिणा —

चैत्यभक्ति पढ़ते-पढ़ते भी जिनप्रतिमा की तीन प्रदक्षिणा देने का विधान है।

दीयते चैत्यनिर्वाण-योगिनंदीश्वरेषु हि।[२]
वंद्यमानेष्वधीयानैस्तत्तद्भक्तिं प्रदक्षिणा।।९२।।

चैत्यभक्ति, निर्वाणभक्ति, योगिभक्ति और नन्दीश्वर भक्ति पढ़ते-पढ़ते मंदिर में, निर्वाणक्षेत्रों में, योगियों की व जिनबिम्बों की प्रदक्षिणा करना चाहिए।

---

१. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ४३ की टीका। २. अनगारधर्मामृत अ. ८।

अथ दृष्टाष्टक स्तोत्र

सामायिक के लिए श्री जिनमंदिर को जावे। मंदिर का शिखर दिखते ही इस दृष्टाष्टक स्तोत्र को पढ़ते हुए मंदिर के पास पहुँचे अथवा मंदिर के पास पहुँचकर मंदिर की प्रदक्षिणा देते हुए दृष्टाष्टक स्तोत्र पढ़ें।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि, भव्यात्मनां विभवसंभवभूरिहेतु।
दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटि-नद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम्।।१।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी-धामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानम् ।।
विद्याधरामरबधूजनपुष्पदिव्य-पुष्पांजलिप्रकरशोभितभूमिभागम् ।।२।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास-विख्यातनाकगणिकागणगीयमानम् ।।
नानामणिप्रचयभासुररश्मिजाल-व्यालीढनिर्मलविशालगवाक्षजालम् ।।३।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्ष-गन्धर्वकिन्नरकरार्पितवेणुवीणा।।
संगीतमिश्रितनमस्कृतधीरनादै-रापूरिताम्बरतलोरुदिगन्तरालं।।४।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल-मालाकुलालिललितालकविभ्रमाणम्।
माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासिनीनां-लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यं।।५।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेम-सारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः।
सन्मंगलैः सततमष्टशतप्रभेदै- र्विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभम् ।।६।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारु-कर्पूरचन्दनतरुष्कसुगन्धिधूपैः।
मेघायमानगगने पवनाभिघात-चंचच्चलद्विमलकेतनतुंगशालम् ।।७।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्र-च्छायानिमग्नतनुयक्षकुमारवृन्दः।
दोधूयमानसितचामरपंक्तिभासं, भामण्डलद्युतियुतप्रतिमाभिरामं।।८।।
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार-पुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमिम् ।
नित्यं वसंततिलकश्रियमादधानं, सन्मंगलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवंद्यं।।९।।
दृष्टं मयाद्य मणिकांचनचित्रतुंग-सिंहासनादिजिनविम्बविभूतियुक्तं।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे, सन्मंगलं ''सकलचन्द्र'' मुनीन्द्रवंद्यं।।१०।।

पुनः उचित स्थान पर पैर धोकर चैत्यालय के अन्दर प्रवेश करें। ''निःसही निःसही निःसही'' ऐसा उच्चारण करके श्री जिनेन्द्रदेव के मुख को देखकर नमस्कार करके ''निःसंगोऽहं जिनानां'' इत्यादिरूप से प्रसिद्ध 'ईर्यापथशुद्धि' नामक स्तोत्र को पढ़ें। यदि जिनमंदिर की बाहर से प्रदक्षिणा नहीं है तो इसी 'निःसंगोऽहं' स्तोत्र को पढ़ते हुए वेदी में विराजमान जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा देवें।

卐***卐

ईर्यापथशुद्धि

निःसंगोहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या।
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम्।।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवंद्यं।
निंदादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेंद्रम् ।।१।।
श्रीमत्पवित्रमकलंकमनंतकल्पं, स्वायंभुवं सकलमंगलमादितीर्थम्।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां, त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये।।२।।
श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलांक्षनं।
जीयात्त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ।।३।।
श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत् ।
आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः।।४।।
अद्याभवत् सफलता नयनद्वयस्य, देव! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे, संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ।।५।।

ईर्यापथशुद्धि

हे भगवन् ! मैं निःसंग हो, जिनगृह की प्रदक्षिणा करके।
भक्ती से प्रभु सन्मुख आकर, करकुड्मल शिर नत करके।।
निंदारहित दुरितहर अक्षय, इंद्रवंद्य श्री आप्त जिनेश।
सदा करूँ संस्तवन मोहतमहर! तव ज्ञानभानु परमेश।।१।।
जिनमंदिर श्रीयुत पावन, अकलंक अनंतकल्प सच में।
स्वयं हुए अकृत्रिम सब, मंगलयुत प्रथम तीर्थ जग में।।
नित्य महोत्सव सहित मणीमय, जिनवर चैत्यालय उत्तम।
तीन लोक के भूषण उनकी, शरण लिया मैं हे भगवन्।।२।।
स्याद्वादमय अमोघ शासन, श्रीमत् सदा परम गंभीर।
त्रिभुवनपति शासन जिनशासन, सदा रहे जयशील सुधीर।।३।।
श्रीमुख के अवलोकन से, श्रीमुख का अवलोकन होता।
अवलोकन से रहित जनों को, वह सुख प्राप्त कहाँ होता।।४।।
हे भगवन् ! मम नेत्र युगल शुचि, सफल हुए हैं आज अहो।
तव चरणांबुज का दर्शन कर, जन्म सफल है आज अहो।।

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ।।६।।

नमो नमःसत्त्वहितंकराय, वीराय भव्याम्बुजभास्कराय।
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।७।।

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय, विनष्टदोषाय गुणार्णवाय।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।८।।

देवाधिदेव! परमेश्वर! वीतराग!
सर्वज्ञ! तीर्थकर! सिद्ध! महानुभाव!!
त्रैलोक्यनाथ! जिनपुंगव! वर्द्धमान।
स्वामिन्! गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते।।९।।

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरीषहा जितकषायाः।
जितजन्ममरणरोगा, जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः।।१०।।

हे त्रैलोक्य तिलक जिन! तव, दर्शन से प्रतिभासित होता।
यह संसार वार्धि चुल्लुक, जलसम हो गया अहो ऐसा।।५।।
आज पवित्र हुआ तनु मेरा, नेत्र युगल भी विमल हुए।
धर्मतीर्थ में मैं स्नान, किया जिनवर! तव दर्श किए।।६।।
नमो नमो हे सत्त्वहितंकर! भव्यकमलभास्कर हे ईश।
अनंत लोकपति सुर अर्चित जिन, नमूँ सुराधिप देव हमेश।।७।।
नमूँ सुरों से अर्चित जिनवर, दोषरहित गुणसिंधु तुम्हें।
हे देवाधिदेव जिन शिवपथ, प्रतिबोधक मैं नमूँ तुम्हें।।८।।
हे देवाधिदेव! परमेश्वर!, वीतराग! सर्वज्ञ जिनेश।
तीर्थंकर जिन! सिद्ध! महानुभाव! त्रिजग के नाथ महेश।।
हे जिनपुंगव! वर्धमान स्वामिन् ! तव चरणाम्बुज युग की।
शरण लिया मैं भक्ति भाव से रक्षा करो प्रभो! झटिती।।९।।
मद अरु हर्ष द्वेष के विजयी, मोह परीषह के विजयी।
महा कषाय भटों के विजयी, भव कारण के अतःजयी।।
जन्म-मरण रोगों को जीता, मात्सर्यादिक दोषजयी।
सबको जीत कहाए तुम 'जिन', अतः रहो जयशील सही।।१०।।

जयतु जिनवर्धमानस्त्रिभुवनहितधर्मचक्रनीरजबन्धुः।
त्रिदशपतिमुकुटभासुरचूड़ामणिरश्मिरंजितारुणचरणः।।११।।
जय जय जय त्रैलोक्यकाण्डशोभिशिखामणे।
नुद नुद नुद स्वान्तध्वान्तं जगत्कमलार्क! नः।।
नय नय नय स्वामिन्! शांतिं नितान्तमनन्तिमां।
नहि नहि नहि त्राता लोकैककमित्र! भवत्परः।।१२।।
चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे।
भक्तिं स्तुतिं विनतिमंजलिमंजसैव।।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति।
यश्चर्करीति तव देव! स एव धन्यः।।१३।।
जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यम् ।
तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते।
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः।।१४।।

त्रिभुवन हितकर धर्मचक्र, नीरज बंधो! हे सूर्य जिनेश।
हे जिन वर्धमान! तव जय हो, धर्मकीर्तिवर्धित भुवनेश।।
सुरपतिमुकुट प्रभामय भास्कर, चूड़ामणि की किरणों से।
रंजित अरुणचरणयुग जिनके, ऐसे प्रभु जयशील रहें।।११।।
जय जय जय त्रैलोक्यकाण्ड के, शोभित चूड़ामणि जिनवर।
मन के तम को हरो हरो, मम हरो जगत पंकज भास्कर।।
स्वामिन् ! शक्ति अनन्ती मुझको, करो करो झट करो सदा।
नहिं नहिं नहिं लोकैकमित्र प्रभु, तुम सम अन्य कोई सुखदा।।१२।।
मन में भक्ति धरें मुख से, संस्तुती करें अति भक्ति भरें।
शिर से नमन करें करद्वय, कुड्मल पंकज अंजुली करें।।
इस विधि देव! तुम्हारी जो, भक्ति स्तुति नतिअंजुली करें।
धन्य वही हैं जीव जगत में, धन्य जन्म निज सफल करें।।१३।।
जन्म विनाशी चरण कमल तव, यदि नहिं मिले किसी जन को।
तो भी वह दुर्देव न सेवे, चाहे स्वैर रहे भी वो।।
सुलभ प्राप्त अन्नादि भखे, यदि अन्न कभी दुर्लभ होवे।
क्षुधा नाश के हेतु बुभुक्षू, कालकूट विष क्या पीवे?।।१४।।

रूपं ते निरुपाधिसुन्दरमिदं पश्यन्सहस्रेक्षणः।
प्रेक्षाकौतुककारिकोऽत्र भगवन्नोपैत्यवस्थान्तरम् ।।
वाणीं गदगद्यन्वपुः पुलकयन्नेत्रद्वयं स्रावयन् ।
मूर्द्धानं नमयन्करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन् ।।१५।।

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति।
श्रेयः सूतिरिति श्रियां निधिरिति श्रेष्ठः सुराणामिति।।
प्राप्तोऽहं शरणं शरण्यमगतिस्त्वां तत्त्यजोपेक्षणं।
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन! किं विज्ञापितैर्गोपितैः।।१६।।

त्रिलोकराजेन्द्रकिरीटकोटि-प्रभाभिरालीढपदारविन्दम्।
निर्मूलमुन्मूलितकर्मवृक्षम् जिनेंद्रचंद्रं प्रणमामि भक्त्या।।१७।।

करचरणतनुविघातादटतो निहतः प्रमादतः प्राणी।
ईर्यापथमिति भीत्या मुंचे तद्दोषहान्यर्थम् ।।१८।।

सुन्दररूप उपाधि रहित तव, देख इंद्र भी अति हर्षित।
नेत्र हजार किये दर्शक, कौतुक कर भगवन् ! भक्तीवश।।
गद्गद वाणी पुलकित तनु, नेत्रों से आनंदाश्रु झरें।
मस्तक झुका हाथ युग जोड़ें, मन भी तुष्टी हर्ष धरे।।१५।।

त्रसित शत्रुगण त्रिभुवनवेदी, तीन लोक त्राता तुम ही।
श्रेय जन्मदाता श्री की निधि, सुरगण में हो श्रेष्ठ तुम्हीं।।
शरण कुशल! तव शरणे आया, छोड़ उपेक्षा रक्ष करो।
हे जिन! गुप्त प्रगट क्या करना? क्षेमस्थान प्रदान करो।।१६।।

तीनलोक राजेन्द्र मुकुट, तटमणि की आभा से चुंबित।
जिनके चरण सरोरुह उत्तम, कांतिमान् चमके संतत।।
जिनने है जड़मूल उखाड़ा, कर्मवृक्ष ऐसे प्रभु जो।
जिनवर चन्द्र तुम्हें मैं प्रणमूं, भक्ति भाव से शिरनत हो।।१७।।

हाथ-पैर तनु से विघात से, चलते जीवों का जो घात।
किया सदा प्रमाद से मैंने, उसको मिथ्या करने काज।।
उन दोषों को दूर करन को, भव भयभीत हुआ हूँ मैं।
ईर्यापथ को तज कर अब, ईर्यापथ शुद्धी करता मैं।।१८।।

देववंदना (सामायिक)

पुनः जिनेंद्रदेव के सामने पूर्व या उत्तर मुखकर खड़े होकर या बैठकर "पडिक्कमामि भंते!" यह ईर्यापथशुद्धि का प्रतिक्रमण बोलते हुए सामायिक विधि प्रारंभ करें।

ईर्यापथशुद्धि

पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणयवियडिय पइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्तकरणं, तस्स विसोहिकरणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं पज्जुवासं करेमि, तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

देववंदना (सामायिक)

ईर्यापथ शुद्धि

दोहा — हे भगवन् ! ईर्यापथिक, दोष विशोधन हेतु।
प्रतिक्रमण विधि मैं करूँ, श्रद्धा भक्ति समेत।।१।।

चौबोल छंद —

गुप्ति रहित हो षट्कायों की, मैं विराधना जो करता।
शीघ्र गमन प्रस्थान ठहरने, चलने में अरु भ्रमण किया।।२।।
प्राणीगण पर गमन, बीज पर गमन, हरित पर चला कहीं।
मल मूत्रादि नासिका मल कफ, थूक विकृति को तजा कहीं।।३।।
एकेन्द्रिय द्वीइन्द्रिय त्रय-इन्द्रिय चउइन्द्रिय पंचेंद्री।
जीवों को स्वस्थान गमन से, रोका या अन्यत्र कहीं।।४।।
रखा परस्पर पीड़ित कीना, एकत्रित कीना घाता।
ताप दिया या चूर्ण किया, कूटा मूर्च्छित कीना काटा।।५।।
ठहरे चलते फिरते को छिन्न-भिन्न विराधित किया प्रभो।
गुणहेतू प्रायश्चित हेतू, उन्हें विशोधन हेतु प्रभो।।६।।

९ जाप्य

(इस प्रतिक्रमण को पढ़कर ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि गाथा का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार जाप्य देवे अनन्तर पर्यंकासन से या गवासन से बैठकर आलोचना पढ़ें।)

-आलोचना-

ईर्यापथे प्रचलिताद्य मया प्रमादादेकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा। मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरु भक्तितो मे।।१।।

इच्छामि भन्ते! आलोचेउं इरिया-वहियस्स पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिम-चउदिस-विदिसासु विहरमाणेण-जुगंत्तरदिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा। पमाददोसेण डबडबचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अनन्तर उठकर भगवान को पंचांग नमस्कार करें पुन: भगवान के समक्ष बैठकर कृत्य विज्ञापन करें-

नमोस्तु भगवन् ! देववंदनां करिष्यामि।

अनन्तर पर्यंकासन से बैठकर नीचे लिखा मुख्य मंगल पढ़ें।

जब तक भगवत् अर्हत् के, णवकार मंत्र का जाप्य करूँ।
तब तक पापक्रिया अरु दुश्चरित्र का बिल्कुल त्याग करूँ।।७।।
(सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

आलोचना

(बैठकर) दोहा — ईर्यापथ से गमन में, मैंने किया प्रमाद।
एकेन्द्रिय आदिक सभी, जीवों का जो घात।।१।।
किया यदी चउ हाथप्रम, नहीं भूमि को देख।
गुरु भक्ती से पाप सब, हों मिथ्या मम देव!।।२।।
भगवन्! ईर्यापथ आलोचन, करना चाहूँ मैं रुचि से।
पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम, चउदिस विदिशा में चलने से।।३।।
चउकर देख गमन भव्यों का, होता पर प्रमाद से मैं।
शीघ्र गमन से प्राण भूत अरु, जीव सत्त्व को दु:ख दीने।।४।।
यदी किया उपघात कराया, अथवा अनुमति दी रुचि से।
श्रीजिनवर की कृपा दृष्टि से, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।।५।।

नमोस्तु भगवन् ! देववंदनां करिष्यामि।

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थं सिद्धेः कारणमुत्तमम् ।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ।।१।।
सुरेन्द्र मुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम् ।
प्रणमामि महावीरं, लोकत्रितयमंगलम्।।२।।

अनन्तर बैठे-बैठे नीचे लिखा पाठ पढ़कर सामायिक स्वीकार करें।

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वैरं मज्झं ण केणवि।।३।।
रायबंधं पदोसं च, हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं, रदिमरदिं च वोस्सरे।।४।।
हा दुट्ठकयं हा दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अंतो अंतो डज्झमि, पच्छुत्तावेण वेदंतो।।५।।
दव्वे खेत्ते काले, भावे य कदावराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो, मण-वच-कायेण पडिकमणं।।६।।
समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतं।।७।।

सभी भव्य की अर्थ सिद्धि के, कारण उत्तम सिद्धसमूह।
प्रशस्त दर्शन ज्ञान चरित के, प्रतिपादक मैं तुम्हें नमूँ।।१।।
सुरपति के शेखर से चुम्बित, पादपद्म अरुणित केशर।
तीन लोक के मंगल जिनवर, महावीर का करूँ नमन।।२।।
सभी जीव पर क्षमा करूँ मैं, सब मुझ पर भी क्षमा करो।
सभी प्राणियों से मैत्री हो, बैर किसी से कभी न हो।।३।।
राग बंध अरु प्रदोष हर्ष, दीन भाव उत्सुकता को।
भय अरु शोक रती अरती को, त्याग करूँ दुर्भावों को।।४।।
हा! दृष्कृत किये हा! दुश्चिंते, हा! दुर्वचन कहे मैंने।
कर-कर पश्चाताप हृदय में, झुलस रहा हूँ मैं मन में।।५।।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, कृत अपराध विशोधन को।
निन्दा गर्हा से युत हो, प्रतिक्रमण करूँ मन-वच-तन सों।।६।।
सभी प्राणियों में समता हो, संयम हो शुभ भाव रहे।
आर्तरौद्र दुर्ध्यान त्याग हो, यही श्रेष्ठ सामायिक है।।७।।

अथ कृत्यविज्ञापना

भगवन्नमोस्तु प्रसीदंतु प्रभुपादाः वंदिष्येऽहं। एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद्विरतोऽस्मि।

अनन्तर क्रियाविज्ञापना

अथ पौर्वाण्हिकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्तिमुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं-अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं-केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

भगवन् नमोस्तु! प्रसीदंतु प्रभुपादौ वंदिष्येऽहं एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद् विरतोऽस्मि।

अथ पौर्वाह्णिक[1] देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करें, खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा के द्वारा सामायिक दंडक पढ़ें।)

सामायिक दंडक

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

---

१. मध्यान्ह सामायिक के समय 'माध्यान्हिक' बोलें और सायंकाल की सामायिक के समय 'आपराण्हिक' बोलें।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा कायेण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त कर एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से या बैठकर योगमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर ''थोस्सामिस्तव'' पढ़ें।)

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्मदेशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान्।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन-ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

भगवन् ! सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन कायमन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूं निंदूं गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में **९ बार महामंत्र का जाप्य**, पुनः पंचांग नमस्कार-तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा द्वारा हाथ जोड़कर 'थोस्सामिस्तव' पढ़ें।)-

थोस्सामिस्तव

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे।।१।।
लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।
उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।
एवं मए अभित्थुया, विहुय-रयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

थोस्सामि स्तवन

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।
लोकोद्योतक धर्म तीर्थकर, श्रीजिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउबीस अर्हंत तथा, केवलि-गण का गुणगान करूँ।।२।।
ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।
सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्मप्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।
जिनवर कुन्थु अरह मल्लिप्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्टनेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।
इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।
कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पहासत्ता[१]।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।
(पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदनामुद्रा से हाथ जोड़कर चैत्यभक्ति पढ़ें।)

चैत्यभक्ति

हरिणीछंद- **जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-**
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।
तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गी-भावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ।।२।।
तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।

चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।
(३ आवर्त १ शिरोनति करके वंदनामुद्रा के द्वारा)

चैत्यभक्ति

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।
जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।
जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।

---

१. पयासंता-प्रकाशयन्तः इति वा पाठान्तरं टीकायां (क्रियाकलापः पृ. १४९)।

निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ।।३।।
अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।
मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।५।।
क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ।।६।।
मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।
भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।
भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।

मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।
अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ।।११।।
द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।
विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।
कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम् ।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ।।१४।।
यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।
अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभवहेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।

आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।
यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।
ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।
ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान् ।।२०।।
वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।
इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्रवनिरोधिनी।।२२।।
अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ।।२३।।

श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिन मूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।
इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभवहेतु, सब जिन चैत्य जिनालय को।।१८।।
व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।
ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।
सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।
इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।२२।।
अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।

लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामल विशालकूलद्वितयम् ।।२४।।
शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्ति सिकतासुभगम् ।।२५।।
क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम् ।
दुःसहपरीषहाख्य-द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।
व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ।।२७।।
ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रो-द्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणं।।२८।।
गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ।।२९।।
अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।
शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।
क्षमादि हैं आवर्त सहस्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।
रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।
ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं, आस्रव रोध निर्जरा जल निःसृत।।२८।।
गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।
इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

पृथ्वी छंद —

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकत:।।
विषादमदहानित:, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ।।३१।।

निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषत:।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ।।३२।।

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभि:, प्रबलरागमोहादिभि:
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अत: प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अत:, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंत:करण शुद्धि पूरण।।३१।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभू! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।

सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वत:
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयै:।।३५।।

अनन्तर चैत्य के सम्मुख बैठकर नीचे लिखी आलोचना पाठ पढ़ें-

आलोचना या अंचलिका — **इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरिय-लोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतर-जोइसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ,**

अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अंचलिका (बैठकर)

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।
भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।

बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

(अनन्तर उठकर पंचांग नमस्कार करें। पश्चात् भगवान् के सन्मुख बैठकर नीचे लिखी कृत्यविज्ञापना करें।)

अथ पौर्वाह्निकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पुनः खड़े होकर मुक्ताशुक्तिमुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति कर पूर्वोक्त सामायिक दंडक पढ़ें। अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर पुनः पंचांग नमस्कार कर खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। पश्चात् थोस्सामि इत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढ़कर अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। अनन्तर भगवान के सन्मुख पूर्वोक्त रीति से खड़े-खड़े ही वंदनामुद्रा से नीचे लिखी पंच महागुरुभक्ति पढ़ें।)

पंचमहागुरुभक्ति

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं।।१।।
जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथद्दयं[1] जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्निक-देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर ३ आवर्त एक शिरोनति करें, मुक्ताशुक्तिमुद्रा से पूर्ववत् 'सामायिक दंडक' पढ़कर ३ आवर्त १ शिरोनतिपूर्वक कायोत्सर्ग (९ जाप्य) करें पुनः साष्टांग नमस्कार करके खड़े होकर ३ आवर्त १ शिरोनति कर मुक्ताशुक्तिमुद्रा से 'थोस्सामि स्तवन' पढ़कर पुनरपि ३ आवर्त १ शिरोनति करके वंदना-मुद्रा से 'पंचमहागुरु भक्ति' पढ़ें।)

पंचमहागुरु भक्ति

सुरपति नरपति नागइन्द्र मिल, तीन छत्र धारें प्रभु पर।
पंचमहाकल्याणक सुख के, स्वामी मंगलमय जिनवर।।
अनंत दर्शन ज्ञान वीर्य सुख, चार चतुष्टय के धारी।
ऐसे श्री अर्हंत परमगुरु, हमें सदा मंगलकारी।।१।।
ध्यान अग्निमय बाण चलाकर, कर्मशत्रु को भस्म किये।
जन्म जरा अरु मरणरूप-त्रय नगर जला त्रिपुरारि हुए।।

---

१. 'अतिस्तब्धमतिकठोरं' इति टीकायां क्रियाकलापग्रंथे।

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया, वारसंगाइं सुअजलहि-अवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासं गया।।३।।
घोरसंसार-भीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया।।४।।
उग्गतवचरणकरणेहिं झीणंगया[1], धम्मवरझाणसुक्केझाणं गया।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहवो ते महं[2] मोक्खपहमग्गया।।५।।
एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं।।६।।
अरुहा सिद्धाइरिया,उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण[3] णमुक्कारा[4], भवे भवे मम सुहं दिंतु।।७।।

प्राप्त किये शाश्वत शिवपुर को, नित्य निरंजन सिद्ध बने।
ऐसे सिद्धसमूह हमें नित, उत्तम ज्ञान प्रदान करें।।२।।
पंचाचारमयी पंचाग्नी में जो तप तपते रहते।
द्वादश अंगमयी श्रुतसागर, में नित अवगाहन करते।।
मुक्तिश्री के उत्तम वर हैं, ऐसे श्री आचार्य प्रवर।
महाशीलव्रत ज्ञान-ध्यानरत, देवें हमें मुक्ति सुखकर।।३।।
यह संसार भयंकर दुखकर, घोर महावन है विकराल।
दुखमय सिंह व्याघ्र अति तीक्ष्ण, नख अरु डाढ़ सहित विकराल।।
ऐसे वन में मार्गभ्रष्ट, जीवों को मोक्षमार्ग दर्शक।
हित उपदेशी उपाध्याय गुरु, का मैं वंदन करूँ सतत।।४।।
उग्र-उग्र तप करें त्रयोदश-क्रिया चरित में सदा कुशल।
क्षीण शरीरी धर्मध्यान अरु, शुक्लध्यान में नित तत्पर।।
अतिशय तप लक्ष्मी के धारी, महासाधुगण इस जग में।
महा मोक्षपथगामी गुरुवर, हमको रत्नत्रय निधि दें।।५।।
इस संस्तव से जो जन पंच-परमगुरु का वंदन करते।
वे गुरुतर भव-लता काटकर, सिद्ध सौख्य संपत् लभते।।
कर्मेन्धन के पुंज जलाकर, जग में मान्य पुरुष बनते।
पूर्ण ज्ञानमय परमाह्लादक, स्वात्म सुधारस को चखते।।६।।
दोहा- अर्हत् सिद्धाचार्य अरु, पाठक साधु महान।
पंचपरमगुरु हों मुझे, भव - भव में सुखखान।।७।।

---

१. 'खीणंगया' ऐसा भी पाठ है। २. 'महामोक्ख' ऐसा भी पाठ है। ३. 'एदे पंच' ऐसा भी पाठ है। ४. 'णमोक्कारा' और 'णमोयारा' भी पाठ है।

आलोचना या अंचलिका

(पुनः गवासन से बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें।)

इच्छामि भन्ते! पंचगुरुभक्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अट्ठमहा-पाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

(पश्चात् पूर्वोक्त देववंदना के पाठ में न्यूनता हुई हो अथवा अधिकता हुई हो तो इसकी विशुद्धि के लिए समाधिभक्ति पढ़ने का आगम में नियम है। तद्यथा-गवासन से बैठकर क्रिया विज्ञापन करें।)

अथ पौर्वाण्हिक देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीचैत्यपंचमहागुरुभक्ती विधाय तद्धीनाधिकत्वादि-दोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(अनन्तर उठकर पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनतिपूर्वक णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़ें। दंडक के अंत में तीन आवर्त और एक शिरोनति करके

अंचलिका (बैठकर)

दोहा- भगवन् पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।
अष्ट महाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हंत जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहे।।
अठ प्रवचन माता संयुत हैं, श्री आचार्य प्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।२।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूँ वंदूँ, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अथ पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं चैत्य-पंचगुरुभक्ती कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्री-करणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पंचांग नमस्कार, सामायिक दंडक, ९ जाप्य। थोस्सामि स्तवन करके समाधिभक्ति पढ़ें।)

सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें पुनः भूमिस्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति पूर्वक थोस्सामि इत्यादि स्तव पढ़ें, अंत में पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से नीचे लिखी समाधि-भक्ति पढ़ें। तद्यथा-

समाधिभक्ति

अथेष्ट प्रार्थना- **प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।**

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, संगतिः, सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः।।१।।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः।।२।।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमहु णाणदेवय! मज्झ वि दुक्खक्खयं दिन्तु।।३।।

(अनन्तर गवासन से बैठकर नीचे लिखी आलोचना पढ़ें।)

इच्छामि भंते! समाहिभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूवपरमप्पज्झाणलक्खणसमाहिभत्तीये णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि

समाधिभक्ति

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्रों का अभ्यास जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्र के गुण गाऊँ अरु, दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्मतत्त्व को नित भाऊँ।।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।१।।
तव चरणांबुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरण युग में।
तावत् रहे जिनेश्वर यावत्, मोक्ष प्राप्ति नहिं हो जग में।।२।।
अक्षर पद से हीन अर्थ, मात्रा से हीन कहा जो मैं।
हे श्रुत मातः! क्षमा करो सब, मम दुःखों का क्षय होवे।।३।।

अंचलिका (बैठकर)

दोहा- भगवन् ! समाधि भक्ति अरु, करके कायोत्सर्ग।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेतु।।१।।

णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान करें।)

सामायिक का उत्कृष्ट काल ६ घड़ी (२ घंटे २४ मिनट) है। मध्यम काल ४ घड़ी (१ घंटे ३६ मिनट) है और जघन्य काल २ घड़ी (४८मिनट) है।

इस देववंदना में ईर्यापथशुद्धि, चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति को पढ़ने के बाद उपर्युक्त जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट सामायिक के काल में जितना समय शेष रहा हो उतने समय में पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ या रूपातीत ध्यान करें अथवा सिद्धचक्र मंत्र, णमोकार मंत्र आदि का मानसिक या उपांशु जाप्य करें। सामायिक पूर्ण करते समय गुर्वावली भी पढ़ना चाहिए।

गुर्वावली—**(ॐ आद्यानामाद्ये जंबूद्वीपे मेरोर्दक्षिणभागे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे भारतदेशे... प्रदेशे........नगरे वीर निर्वाण संवत् पंचत्रिंशदुत्तरपंचविंशतिशततमे[1] (२५३५ तमे) मासोत्तममासे मासे.....पक्षे..... तिथौ......वासरे प्रातःकाले सामायिकं कृत्वा श्रीमत्कुंदकुंदाम्नाये सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे कुंदकुंदसूर्यादिसर्वपूर्वाचार्येभ्यो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु। गुरूणांगुरु-चारित्र-चक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरा-चार्येभ्यो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु दीक्षागुरु[2]श्रीवीरसागराचार्येभ्यो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।[3])**

अथ चतुर्दिग्वंदना

प्राग्दिग्विदिगन्तरे, केवलिजिन-सिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वन्दे।।१।।
दक्षिणदिग्विदिगन्तरे, केवलिजिन-सिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वन्दे।।२।।
पश्चिम दिग्विदिगन्तरे, केवलि-जिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।३।।

रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।
(अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान, जाप्य आदि करें।)

---

१. जो वीरनिर्वाणसंवत हो उसे बोले। २. अपने दीक्षागुरु का नाम लेना। ३.गुर्वावली गुरुपरंपरा से पढ़ने की पद्धति है।

उत्तरदिग्विदिगन्तरे, केवलिजिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वन्दे।।४।।

पुनः यदि गुरु प्रत्यक्ष में हैं तो उनके पास जाकर विधिवत् गुरुवंदना करें और यदि प्रत्यक्ष में नहीं हैं तो परोक्ष में ही लघु तीन भक्तियाँ पढ़कर विधिवत् गुरुवंदना करें।

गुरुवंदना कब और कैसे?

वंद्या दिनादौ गुर्वाद्या विधिवत् विहितक्रियैः,
मध्यान्हे स्तुतिदेवैश्च सायं कृतप्रतिक्रमैः।।५४।। (अनगार ध.अ.८)

प्रातः सामायिक के बाद विधिवत् कृतिकर्म करके आचार्य आदि की वंदना करें। मध्यान्ह में भी सामायिक के बाद कृतिकर्मपूर्वक गुरुओं की वंदना करें और सायंकाल में दैवसिक प्रतिक्रमण के बाद विधिवत् गुरुवंदना करें।

लघ्व्या सिद्धगणिस्तुत्या गणी वंद्यो गवासनात् ।
सैद्धान्तोंऽतःश्रुतस्तुत्या तथान्यस्तन्नुतिं विना।।३१।। अनगारधर्मा. अ. ९

जब आचार्यदेव बिना किसी व्यासंग के सुखपूर्वक अपने आसन पर स्थित हों तब मुनि और आर्यिकायें गवासन से बैठकर गुरु से अनुज्ञा लेकर लघु सिद्ध और लघु आचार्य भक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें यदि आचार्य सिद्धांतवित् हैं तो मध्य में लघु श्रुतभक्ति भी करें अर्थात् लघु सिद्ध, श्रुत और आचार्यभक्तिपूर्वक वंदना करें। अन्य मुनियों की मात्र लघु सिद्धभक्ति पढ़कर वंदना करें और उपाध्याय मुनि की लघु सिद्ध व श्रुतभक्ति पढ़कर वंदना करें।

आर्यिकायें भी आचार्य के सदृश ही गणिनी आर्यिका की कृतिकर्मपूर्वक वंदना करती हैं।

यह त्रिकाल वंदना की विधि है। इससे अतिरिक्त सम्पूर्ण क्रियाओं के-स्वाध्याय, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि के प्रारंभ में बाहर आने-जाने आदिमें गवासन से बैठकर मात्र नमोऽस्तु शब्द बोलकर वंदना करनी चाहिए[1]''तथा विशेष कार्यों में कृतिकर्म-विधिपूर्वक वंदना करनी चाहिए।

मूलाचार में कहा है कि-

आइरिय उवज्झायाणं पव्वत्तयत्थेर-गणधरादीणं।
एदेसिं किदियम्मं कादव्वं णिज्जरट्ठाए।।५९३।।

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर इन पांचों प्रकार के गुरुओं की कर्मों की निर्जरा के लिए कृतिकर्म पूर्वक वंदना करना चाहिए। आगे भी कहा है कि जब ये गुरु अपने आसन पर स्थित हों, शांतचित्त हों एवं सन्मुख मुख किये हों उस समय उनकी अनुज्ञा लेकर बुद्धिमान मुनि कृतिकर्म का प्रयोग करें। अर्थात् 'हे भगवन्! या हे आचार्य देव! मैं वंदना करूंगा' ऐसी विज्ञापना द्वारा गुरु को सूचित करके वंदना विधि प्रारंभ करें।''[2]

इस कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि गुरुवंदना में भी कृतिकर्म विधि का प्रयोग करना चाहिए। कृतिकर्म का लक्षण पहले बता चुके हैं।

---

१. अनगारधर्मामृत, अध्याय ८, श्लोक ५५। २. मूलाचार अ. ६, गाथा ६००।

आचार्य वंदना

गुरु की तीन प्रदक्षिणा देकर कम से कम एक हाथ दूर से गवासन से बैठकर प्रतिज्ञा करें।

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पुन: पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से वृहत् या लघु सामायिक दण्डक पढ़ें।तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छवासमें ९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करें पुन: पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके वृहत् या लघु थोस्सामि स्तव पढ़ें। पुनरपि तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से ल्घु सिद्ध भक्ति पढ़ें।)

लघु सिद्धभक्ति- **सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।**
अगुरुलघुमव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१।।
तवसिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

पुन: गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो, कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्त सिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाणकालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

---

*लघु सिद्धभक्ति-*समकित दर्शनज्ञान वीर्य, सूक्ष्मत्व तथा अवगाहन हैं।
अव्याबाध अगुरुलघु ये, सिद्धों के आठ महागुण हैं।।१।।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

अंचलिका- हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग् रत्नत्रय युक्ता।।१।।
अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

नमोस्तु आचार्यवंदनायां......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त विधि से सामायिक दण्डक, ९ जाप्य और थोस्सामिस्तव करके वंदना मुद्रा से लघुश्रुतभक्ति पढ़ें।)

लघु श्रुतभक्ति-

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।
अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाण - महोवहिं सिरसा।।२।।

पुन: गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

अंचलिका—**इच्छामि भन्ते! सुदभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थयथुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।**

नमोस्तु आचार्यवंदनायां.......आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्तविधि से सामायिक दंडक, ९ जाप्य और थोस्सामिस्तव पढ़कर वंदना मुद्रा से लघु आचार्यभक्ति पढ़ें।)

लघु श्रुतभक्ति-

एक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।१।।
अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूँथा है गणधरगुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।२।।

अंचलिका- हे भगवन् ! श्रुत भक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, आंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्तियुत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय,हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

लघु आचार्यभक्ति-

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिए सदा वन्दे।।२।।

गुरुभक्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणंतु मां साधवः।।४।।

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णव गम्भीराः, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

लघु आचार्यभक्ति-

श्रुतसमुद्रपारंगत स्वमत व, परमत ज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्र तपनिधियुत गुणगुरु, हे गुरु! तुमको करूँ नती।।१।।

छत्तिस गुण से पूर्ण पाँच, आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रह निपुण धर्म-आचार्य सदा वंदूँ तुमको।।२।।

गुरुभक्ति संयम से तिरते, भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं, पाते जन्म मरण व्याधी।।३।।

व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर, ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट् आवश्यकरत, साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत, सूर्यचंद्र से तेज अधिक।
मोक्षद्वार उद्घाटन योद्धा, साधु हों प्रसन्न मुझ प्रति।।४।।

ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।५।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

विशेष-यह उत्कृष्ट गुरुवंदना विधि है। कदाचित् गवासन से बैठे-बैठे भी यह सारी विधि की जा सकती है अथवा कृतिकर्मविधि-सामायिक दण्डक और थोस्सामिस्तव के बिना भी मात्र ''नमोस्तु आचार्यवंदनायां....सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं'' ऐसा बोलकर ९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करके तीनों भक्तियाँ पढ़कर भी गुरुवंदना की जाती है।

*****

अभिषेक वंदना कब और कैसे करें?

''अहिसेयवंदणासिद्धचेदिपंचगुरुसंतिभत्तीहिं।[१]'' सिद्ध, चैत्य, पंचगुरु और शांति भक्ति पढ़कर अभिषेक वंदना की जाती है।

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि मुनिगण भी जिनेन्द्रदेव का अभिषेक देखते हैं और उस समय भक्ति पाठ भी करते हैं।

विशेष-इस युग के महान आचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज भी बहुत ही भक्ति से पंचामृत अभिषेक देखते थे पुनः आहार के लिए निकलते थे। वर्तमान में कुछ संघों में पूर्वाण्ह समय ६-७ बजे स्वाध्याय के पहले ही अभिषेक देखते हैं, कुछ संघों में आहार को उठते समय ९ बजे करीब अभिषेक देखते हैं।

अंचलिका-

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।

सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।

रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।

---

१. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ६४ की टीका।

अभिषेकवंदना क्रिया

अथ अभिषेकवंदनाक्रियायां.........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृष्ठ ५ से वृहत् या पृष्ठ ८ से लघु सामायिक दण्डक पढ़कर २७ उच्छ्वास में ९ बार णमोकार मंत्र पढ़कर पृष्ठ ६ से वृहत् या पृ. ९ से लघु थोस्सामिस्तव पढ़कर "सिद्धानुद्धूत" आदि वृहद् सिद्ध भक्ति पढ़ें या लघु सिद्ध भक्ति पढ़ें।)

**लघु सिद्धभक्ति*

तवसिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।

पुनः गवासन से बैठकर पढ़ें-

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरित्त-सिद्धाणं अतीताणागद-वट्टमाणकाल-त्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अथ अभिषेकवंदनाक्रियायां........चैत्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर वृहत् या लघु चैत्यभक्ति पढ़ें।)

**लघु सिद्धभक्ति-*तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।

अंचलिका — हे भगवन्! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।१।।
अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

---

* ये पाँचों लघु भक्तियाँ 'प्रतिष्ठातिलक' ग्रंथ के आधार से हैं।

लघु चैत्यभक्ति

कोट्योर्हत्प्रतिमाः शतानि नवतिः पंचोत्तरा विंशतिः।
पंचाशत्त्रियुता जगत्सु गुणिता (गणिता) लक्षाः सहस्राणि तु।।
सप्ताग्रापि च विंशतिर्नवशति-द्व्यूनं शतार्धं मताः।
ता नित्याः पुर (पुरु) तुंगपूर्व-मुखसत्पर्यंकबंधाः स्तुवे।।

*अंचलिका —***इच्छामि भंते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतरजोयिसिय-कप्पवासियन्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहिं गंधेहिं, दिव्वेहिं अक्खेहिं, दिव्वेहिं पुप्फेहिं, दिव्वेहिं दीवेहिं, दिव्वेहिं धूवेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं वासेहिं, दिव्वेहिं ण्हाणेहिं णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसन्ति चेइयमहाकल्लाणं करंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि,वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

अथ अभिषेकवंदनाक्रियायां.....पंचगुरुभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर वृहद् या लघु पंचगुरु भक्ति पढ़ें।)

लघु चैत्यभक्ति- नव सौ पचीस कोटि त्रेपन, लाख सताइस सहस प्रमाण।
नव सौ अड़तालिस जिन प्रतिमा, त्रिभुवन में हैं करूं प्रणाम।।
ज्योतिष व्यंतर के गृह में, शाश्वत जिनप्रतिमा संख्यातीत।
पंच शतक धनु तुंग पूर्वमुख, पर्यंकासन वंदूँ नित्य।।१।।

अंचलिका — भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन संतोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।
भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्यगंध दिव पुष्प आदि से, दिव्य न्हवन करते नित प्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ सतत।।२।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधि मरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

लघु पंचगुरुभक्ति

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगांगैरष्टभिः स्तुवे।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! पंचमहागुरुभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं अरहंताणं। अट्ठमहाकम्मविप्पमुक्काणं सिद्धाणं। अट्ठपवयण-माउसंजुत्ताणं आइरियाणं। आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं। तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं। भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

अथ अभिषेकवंदनाक्रियायां........शांतिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९जाप्य, थोस्सामि स्तव पढ़कर वृहद् या लघु शांति भक्ति पढ़ें।)

लघु पंचगुरुभक्ति

प्रातिहार्य से युत अर्हंतों, को अठगुण युत सिद्धों को।
वंदूँ अठ प्रवचनमाता से, संयुत श्री आचार्यों को।।
शिष्यों से युत पाठकगण को, अष्ट योग युत साधू को।
वंदूँ पंचमहागुरुवर को, त्रिकरण शुचि से मुद मन हो।।

अंचलिका

दोहा- भगवन् ! पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।

अष्टमहाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हंत जिनेश्वर हैं।
अष्टगुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहें।।
अठ प्रवचनमाता संयुत हैं, श्री आचार्य प्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।२।।

रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूँ वंदूँ, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

लघु शांतिभक्ति

श्रीमत्पंचम - सार्वभौमपदवीं प्रद्युम्नरूपश्रियं।
प्राप्तः षोडश तीर्थकृत्वमखिलं त्रैलोक्यपूजास्पदं।।
यस्तापत्रयशांतितः स्वयमितः शान्ति प्रशांतात्मनाम्।
शांतिं यच्छति तं नमामि परमं शांतिं जिनं शांतये।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! शांतिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसातिसयविसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं बलदेववासुदेवचक्कहर-रिसि-मुणिजदि-अणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्सणिलयाणं, उसहाइवीरपच्छिम-मंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु अभिषेकवंदनाक्रियायां.......सिद्धभक्ति-चैत्यभक्ति-पंचगुरुभक्ति-शांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि स्तव करके समाधि भक्ति पढ़ें।)

लघु शांति भक्ति-

श्रीमत्पंचम सार्वभौम पद, कामदेव पद पाया है।
तीनलोक में पूजा कारक, जो षोडश तीर्थंकर हैं।।
जन्मजरा मृति तीन ताप को, शांत किया प्रभु शांत हुए।
परम शांतिजिन को मैं वंदूँ, निज पर शांती हेतु मैं।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! श्री शांतिभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रुचि से।।
अष्टमहाप्रातिहार्य सहित जो, पंचमहाकल्याणकयुत।
चौंतिस अतिशय विशेष युत, बत्तिस देवेन्द्र मुकुट चर्चित।।
हलधर वासुदेव प्रतिचक्री, ऋषि मुनि यति अनगारसहित।
लाखों स्तुति के निलय वृषभ से, वीर प्रभू तक महापुरुष।।
मंगल महापुरुष तीर्थंकर, उन सबको शुभ भक्ती से।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ महामुद से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

लघु समाधिभक्ति

स्वात्माभिमुखसंवित्तिलक्षणं श्रुतचक्षुषा।

पश्यन्पश्यामि देव! त्वां केवलज्ञानचक्षुषा।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं रयणत्तयसरूव-परमप्पज्झाण-लक्खण समाहिभत्तीये णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

पूर्वाण्ह स्वाध्याय कब और कैसे करें?

ग्राह्यः प्रगे द्विघटिकादूर्ध्वं स प्राक्तश्च मध्यान्हे।

क्षम्योऽपराण्हपूर्वापररात्रेष्वपि दिगेषैव ।।३।।

(अन. ध.अ. ९)

प्रातःकाल सूर्योदय से दो घड़ी—४८ मिनट के बाद पौर्वाण्हिक स्वाध्याय प्रारंभ करना चाहिए पुनः मध्यान्ह के दो घड़ी पहले तक समापन कर देना चाहिए अर्थात् सूर्योदय के दो घड़ी बाद से लेकर मध्यान्ह से दो घड़ी पहले तक पूर्वाण्ह स्वाध्याय का काल माना गया है।

इसी प्रकार मध्यान्ह की दो घड़ी बाद से लेकर सूर्यास्त के दो घड़ी पहले तक अपराण्ह के स्वाध्याय का काल है। रात्रि में सूर्यास्त के दो घड़ी बाद से अर्धरात्रि के दो घड़ी पहले तक पूर्वरात्रिक स्वाध्याय का काल है तथा अर्धरात्रि के दो घड़ी बाद से सूर्योदय के दो घड़ी पहले तक वैरात्रिक स्वाध्याय का काल है। तात्पर्य यह है कि चारों संधि कालों में चार-चार घड़ी का काल स्वाध्याय के लिए अकाल है।

अकाल के और भी भेद हैं यथा-दिक्दाह, बिजली गिरना, वज्रपात होना, इन्द्र धनुष होना,चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, दुर्दिन, धूमकेतु, भूकंप, भयंकर मेघ गर्जन, अग्नि लग जाना, कलह आदि हो जाना इत्यादि प्रसंगों में अकाल माना गया है।

लघु समाधि भक्ति-

स्वात्मरूप के अभिमुख संवेदन, को श्रुत दृग् से लखकर।
भगवन् ! तुमको केवलज्ञान, चक्षु से देखूँ झट मनहर।।

अंचलिका-दोहा-

भगवन् ! समाधि भक्ति अरु, कायोत्सर्ग कर लेत।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेत।।
रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ प्रणमूँ मैं।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

इसी प्रकार से अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, आष्टान्हिक पर्व आदि में भी सिद्धान्त ग्रंथों के पढ़ने का निषेध है। यह प्रकरण धवला[१] पुस्तक ९ में व 'दिगम्बर मुनि' पुस्तक में है। सिद्धान्त ग्रंथों को पढ़ने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारों की शुद्धि शास्त्रों में कही गई है। इन शुद्धियों का उलंघन कर जो अकाल आदि में स्वाध्याय करते हैं उनके ज्ञान की वृद्धि व कर्म निर्जरा आदि के अतिरिक्त ज्ञानावरणीय कर्म का बंध हो जाता है। जैसा कि कहा है-''द्रव्यादिशुद्ध्या ह्यधीतं शास्त्रं कर्मक्षयाय स्यादन्यथा कर्मबंधायेति भावः[२]।''

सिद्धांत ग्रंथ कौन-कौन से हैं?

गणधरदेव, अभिन्नदशपूर्वी आदि महामुनियों द्वारा कथित सूत्रग्रन्थ-सिद्धान्त ग्रंथ हैं। इनके लिए ही द्रव्यादि शुद्धि का विधान है। वर्तमान में षट्खंडागमसूत्र-धवला ग्रंथ, कसायपाहुड़-जयधवला और महाबंध ये ग्रंथ सिद्धान्त ग्रंथ माने जाते हैं। अतः इनको अस्वाध्याय काल में नहीं पढ़ना चाहिए। बाकी के आराधनाग्रंथ-भगवतीआराधना आदि, स्तुति ग्रंथ-आप्तमीमांसा आदि, पुराण ग्रंथ आदि अस्वाध्याय काल में पढ़े जा सकते हैं। मुनि और आर्यिकाओं को स्वाध्याय काल में ही सिद्धान्त ग्रंथों को पढ़ना चाहिए ऐसा मूलाचार[३] में कहा है। आगम के अनुसार विनय से पढ़ा गया शास्त्र केवलज्ञान को प्राप्त कराने वाला है। कहा भी है-

विणएण सुदमधीदं जदि वि पमादेण होइ विस्सरिदं।

तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आहवदि[४]।।

विनय से पढ़ा गया जो श्रुत है, यदि प्रमाद से उसे भूल भी जावें तो भी वह परभव में उपलब्ध हो जाता है और केवलज्ञान को भी प्राप्त करा देता है।

स्वाध्याय में भक्तियाँ-

स्वाध्यायं लघुभक्त्यात्तं श्रुतसूर्योरहर्निशे।

पूर्वेऽपरेऽपि चाराध्य श्रुतस्यैवं क्षमापयेत् ।।२।।(अन. ध. अ. ९)

पूर्वाण्ह, अपराण्ह और पूर्वरात्रिक, अपररात्रिक इन चारों कालों में स्वाध्याय के प्रारंभ में लघु श्रुतभक्ति और लघु आचार्यभक्ति पढ़कर स्वाध्याय प्रारंभ करें, पुनःग्रंथ का वाचन आदि करके लघु श्रुतभक्ति पढ़कर स्वाध्याय का समापन करें।

पौर्वाण्हिक स्वाध्याय प्रारंभ विधि

नमोस्तु पौर्वाह्लिकस्वाध्यायप्रारंभक्रियायां....श्रुतभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(ऐसी प्रतिज्ञा करके पंचांग नमस्कार करें, पुनः खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृष्ठ ५ से या ८ से णमो अरहंताणं आदि, चत्तारिमंगलं आदि सामायिक दण्डक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ श्वासोच्छ्वास में ९ बार णमोकार मंत्र जपकर पंचांग नमस्कार करें। पुनः खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृष्ठ ६ से या

---

१. धवला पुस्तक ९, पृ. २५२ से २५९ तक। २. अनगारधर्मामृत अ.९, श्लोक ४ की टीका। ३. मूलाचार गाथा २७८। ४. मूलाचार गाथा २८६।

९ से थोस्सामिस्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से खड़े-खड़े ही श्रुतभक्ति पढ़ें। कदाचित् खड़े होकर कृतिकर्म नहीं करना हो तो बैठकर ही करें।)

श्रुतभक्ति

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं, गणधररचितं द्वादशांगं विशालं।
चित्रं बह्वर्थयुक्तं, मुनिगण वृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः।।
मोक्षाग्रद्वारभूतं, व्रतचरणफलं श्रेयभावप्रदीपं।
भक्त्या नित्यं प्रवन्दे, श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ।।१।।
जिनेन्द्रवक्त्रप्रतिनिर्गतं वचो, यतीन्द्रभूतिप्रमुखैर्गणाधिपैः।
श्रुतं धृतं तैश्च पुनः प्रकाशितं, द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्यहं श्रुतं।।२।।
कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।३।।
अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।४।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें।

लघुश्रुत भक्ति

अर्हन् मुख से निकली गणधर, रचित सुबारह अंग महान्।
बुद्धिमंत मुनिपुंगव से, धारित बहुअर्थ सहित अमलान।।
मोक्ष अग्र का द्वार चरित, व्रत फलयुत ज्ञेयजगत् दीपक।
सर्वजगत् में सार सर्वश्रुत, को नित वंदूँ भक्तीयुत।।१।।

श्री जिनेंद्र के मुख पंकज से, प्रगट दिव्यध्वनि वचनस्वरूप।
इन्द्रभूति यतिपति गणधर ने,श्रुत को धारण किया अनूप।।
उन गणधर देवों ने द्वादश, अंग सहित द्रव्यश्रुत को।
किया प्रकाशित इस पृथ्वी पर, नमूँ नमूँ मैं सब श्रुत को ।।२।।

इक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।३।।
अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूँथा है गणधर गुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।४।।

अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! सुदभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णय-पाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थयथुइधम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिकस्वाध्यायप्रारंभक्रियायां........आचार्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृष्ठ ७ या १२ से ''णमो अरहंताणं'' आदि सामायिक दण्डक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में ९ बार णमोकार मंत्र जपकर पंचांग नमस्कार करें। पुनः खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृष्ठ १० या १३ से थोस्सामि स्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से खड़े-खड़े ही या बैठकर आचार्य भक्ति पढ़ें।)

लघु आचार्यभक्ति

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रविषयः, प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः, प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः।।१।।

अंचलिका — हे भगवन्! श्रुतभक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, आंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

लघु आचार्य भक्ति-

प्राज्ञ सर्वशास्त्रवित् सब, जग स्थिति को स्फुट देखे।
आशरहित प्रतिभायुत प्रशमवान उत्तर तत्क्षण देते।।
प्रश्नसहिष्णु समरथ पर के, मनहर परनिंदा से दूर।
मितस्पष्ट वचन से धर्म-कथा कहते सूरी गुणपूर।।१।।

श्रुतमविकलं शुद्धा, वृत्तिः परप्रतिबोधने,
परिणतिरुरूद्योगो, मार्गप्रवर्तनसद्विधौ।
बुधनुतिरनुत्सेको, लोकज्ञता मृदुता स्पृहा,
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोस्तु गुरुः सतां।।२।।
श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।३।।
छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिये सदा वन्दे।।४।।
गुरुभक्तिसंजमेण य, तरंति संसारसायरं घोरं।
छिंदंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति।।५।।
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणंतु मां साधवः।।६।।

अविकल श्रुतधर चरितशुद्धधर, पर प्रतिबोधन में तत्पर।
मोक्षमार्ग के वर्तन में नित, अतिशय यत्न करें मुनिवर।।
ज्ञानी में नुति गतउत्सुकता, लोकसमयवित् निस्पृह मृदु।
जिनमें ये गुण सत्पुरुषों के, वे ही गुरु मानें शिवप्रद।।२।।

श्रुतसमुद्रपारंगत स्वमत व, परमतज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्रतपनिधियुत गुणगुरु, हे गुरु! तुमको करूँ नती।।३।।

छत्तिस गुण से पूर्ण पाँच, आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रहनिपुण धर्म-आचार्य सदा वंदूँ तुमको।।४।।

गुरुभक्ती संयम से तिरते, भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं, पाते जन्म-मरण व्याधी।।५।।

व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर, ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट् आवश्यकरत, साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत, सूर्यचंद्र से तेज अधिक।
मोक्ष द्वार उद्घाटन योद्धा, साधु हों प्रसन्न मुझ प्रति।।६।।

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगम्भीराः, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।७।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं आयारादिसुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

(पुनः पद्मासन, अर्धपद्मासन या सुखासन से बैठकर शास्त्र को ऊँची चौकी पर रखकर स्वाध्याय करें। पढ़ें-पढ़ावें या वाचना करें। अर्थात् पौर्वाण्हिक स्वाध्याय का उत्कृष्ट काल मध्यान्ह (१२ बजे) के दो घड़ी (४८ मिनट) पहले तक है। इस काल में अपनी शक्ति के अनुसार षट्खंडागम सूत्र-धवला, जयधवला, समयसार, मूलाचार आदि ग्रंथों का स्वाध्याय करें। स्वाध्याय पूर्ण होने के बाद स्वाध्याय के निष्ठापन की क्रिया करें।)

स्वाध्याय निष्ठापन विधि

नमोस्तु पौर्वाह्निकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां.......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृ. ५ या ८ से सामायिक दण्डक पढ़ें पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में ९ बार णमोकार मंत्र जपकर पंचांग नमस्कार करें। पुनः खड़े होकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृ. ६ या ९ से

ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।७।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! आचार्यभक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।
रत्नत्रय गुणपालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।

थोस्सामि स्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करें अनन्तर "अर्हद्वक्त्रप्रसूतं" इत्यादि पढ़कर बैठकर अंचलिका पढ़कर स्वाध्याय समाप्त करके शास्त्र को यथास्थान विराजमान कर देवें।)

विशेष-कदाचित् खड़े होकर दण्डक भक्ति आदि नहीं कर सकते हैं तो बैठे-बैठे ही सारी क्रिया करें।

पुनः अपराण्हिक स्वाध्याय हेतु चारों दिशा की शुद्धि करें। यह दिक्शुद्धि विधि सिद्धांत ग्रंथों के स्वाध्याय के लिये की जाती है।

अपराण्हिक स्वाध्याय हेतु दिक्शुद्धि

अथ अपराह्णवाचनाहेतोः पूर्वदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(पूर्व दिशा में मुखकर खड़े होकर ऐसा बोलकर २१ श्वासोच्छ्वास में ७ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करें।)

अथ अपराह्णवाचनाहेतोः दक्षिणदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(दक्षिण दिशा में मुखकर उपर्युक्त प्रकार से बोलकर २१ उच्छ्वासों में ७ बार महामंत्र का जाप्य करें।)

अथ अपराह्णवाचनाहेतोः पश्चिमदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(पश्चिम दिशा में मुखकर २१ उच्छ्वासों में ७ बार महामंत्र का जाप्य करें।)

अथ अपराह्णवाचनाहेतोः उत्तरदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(उत्तर दिशा में मुखकर २१ उच्छ्वासों में ७ बार महामंत्र का जाप्य करें।)

आहारचर्या कब और कैसे?

साधु मंदिर में जाकर मध्यान्ह देववन्दना और गुरु वन्दना करके आहार को निकलते हैं ऐसा मूलाचार टीका, अनगार धर्मामृत आदि में विधान है फिर भी आजकल ९ बजे से लेकर ११ बजे तक के काल में आहार को निकलते हैं। संघ के नायक आचार्य आदि गुरु पहले निकलते हैं, उनके पीछे-पीछे क्रम से मुनि, आर्यिकायें, ऐलक, क्षुल्लक और क्षुल्लिकायें निकलते हैं अतः मंदिर में सभी संघ पहुँच जाता है तब मात्र गुरुवंदना करके भगवान् की सामान्य स्तुति वंदना करके निकलते हैं। मुनिगण बायें हाथ में पिच्छी-कमंडलु लेकर दाहिने हाथ की मुद्रा को कंधे पर रखकर निकलते हैं। किसी संघ में मुनिगण दाहिने हाथ में पिच्छी और बायें हाथ में कमंडलु लेकर निकलते हैं पुनः दातार के द्वार पर पड़गाहन के बाद बायें हाथ में पिच्छी लेकर दाहिने हाथ की मुद्रा कंधे पर रख लेते हैं।

नवधा भक्ति

१. पड़गाहन करना २. उच्च आसन देना ३. पाद प्रक्षालन करना ४. अष्टद्रव्य से पूजन करना ५. पंचांग नमस्कार करना ६. मनशुद्धि ७. वचनशुद्धि ८. कायशुद्धि और ९. भोजनशुद्धि कहना ये नवधा भक्ति हैं।

जब श्रावक नवधा भक्ति करके "हे स्वामिन् ! आहार ग्रहण कीजिये।" ऐसी प्रार्थना करके शुद्ध गरम जल से साधु के हाथ धुला देते हैं तब साधु वहीं चौके में पूर्व दिन के ग्रहण किये हुए आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान या उपवास की निष्ठापन क्रिया करते हैं। जैसा कि अनगार धर्मामृत और आचारसार आदि ग्रंथों में लिखा है-

"हेयं-त्याज्यं साधुना निष्ठाप्यमित्यर्थः। किं तत्? प्रत्याख्यानादि प्रत्याख्यानमुपोषितं वा। क्व? अशनादौ-भोजनारंभे। कया? सिद्धभक्त्या। किं विशिष्टया? लघ्व्या।[१]

अर्थ-साधु चौके में भोजन प्रारंभ करते समय लघु सिद्धभक्ति के द्वारा पूर्व दिन के ग्रहण किये गये प्रत्याख्यान या उपवास का निष्ठापन करें-त्याग कर देवें।

कोई साधु मंदिर में या गुरु के पास ही सिद्धभक्ति पूर्वक प्रत्याख्यान की निष्ठापना करके आहार को जाते हैं। सो समझ में नहीं आया, ऐसा कहीं आगम में विधान नहीं है।

पुनः वहीं आहार के अनंतर मुखशुद्धि करके तत्क्षण ही प्रत्याख्यान ग्रहण कर लेवें। सो ही देखिये-

"आदेयं च-लघ्व्या सिद्धभक्त्या प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं तत् ? प्रत्याख्यानादि। क्व? अंते प्रक्रमाद् भोजनस्यैव प्रांते। कथं? आशु शीघ्रं भोजनानंतरमेव। आचार्यासन्निधावेतद्विधेयं।"[२]

साधु शीघ्र ही-भोजन के अनंतर ही आचार्य की अनुपस्थिति में-वहीं चौके में ही लघु सिद्ध भक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण कर लेवें अर्थात् अगले दिन आहार ग्रहणके पूर्व तक चतुर्विध आहार का त्याग कर देवें या अगले दिन उपवास करना है तो उपवास ग्रहण कर लेवें।

उसकी विधि निम्न प्रकार है-

नवधा भक्ति के बाद आहार प्रारंभ करने के पहले की विधि-

प्रत्याख्यान विसर्जन विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार जाप्य)

यदि पहले दिन का उपवास था तो-

नमोऽस्तु उपवासनिष्ठापनक्रियायां......सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र का जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरितसिद्धे य।
णाणम्हि दंसणम्हि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।

इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ

१-२. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ३७ की टीका।

बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

यहां 'प्रत्याख्यान निष्ठापन'' का अर्थ है कि जो चतुर्विध आहार का मैंने त्याग किया था उस त्याग-प्रत्याख्यान को मैं अब निष्ठापित करता हूँ-समाप्त करता हूँ।

पुन:हाथ की अंजुलि जोड़कर आहार ग्रहण करें उसके बाद शीघ्र ही मुखशुद्धि करके वहीं पर निम्न विधि करें।

प्रत्याख्यान ग्रहण विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र का जाप्य)

यदि अगले दिन का उपवास लेना है तो-

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां......सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य)

पृ. ८१ से तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि लघु सिद्ध भक्ति पढ़ें।

(पुन: ''अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु पंचगुरु साक्षी से मेरा अगले दिन आहार ग्रहण करने तक चतुर्विध आहार का त्याग है।'' ऐसा संकल्प करें।)

''प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन'' का अर्थ है कि मैं अब चतुर्विध आहार के प्रत्याख्यान-त्याग को प्रतिष्ठापित-स्वीकार करता हूँ-ग्रहण करता हूँ।

पुन: श्रावक के घर से निकलकर साधु अपनी वसतिका में आकर आचार्य के समीप गवासन से बैठकर प्रत्याख्यान ग्रहण करें। सो ही कहा है-

''सूरौ-आचार्यसमीपे पुनर्ग्राह्यं प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं तत् ? प्रत्याख्यानादि। कया? लघ्व्या सिद्धभक्त्या..........लघु योगिभक्त्यधिकया तथा वंद्य: साधुना? स सूरि:। कया? सूरिभक्त्या। किं विशिष्टया? लघ्व्या[१]।''

पुन:आचार्य के पास में बैठकर साधु लघु सिद्धभक्ति और लघु योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण करें अनंतर लघु आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।

इसके प्रयोग की विधि निम्न प्रकार है-

गुरु के पास प्रत्याख्यान ग्रहण विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि पृ. ८१ से लघु सिद्धभक्ति पढ़े।

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

---

१. अनगार धर्मामृत।

लघु योगिभक्ति

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासा:।
हेमंते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभया: काष्ठवत्त्यक्तदेहा:।।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता: गिरिशिखरगता: स्थानकूटांतरस्था:
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनि:श्रेणिभूता।।१।।
गिह्मे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे बाहिर-सयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।२।।
गिरि - कंदर - दुर्गेषु ये वसंति दिगंबरा:।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।३।।

अंचलिका —**इच्छामि भंत्ते! योगिभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्कपास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्खखवणादिजोगजुत्ताणं**

लघु योगिभक्ति-

बिजली चमके अतिजलवर्षे, वर्षा में तरुतल बैठें।
शीतकाल रात्रि में निर्भय, काष्ठसदृश निर्मम तिष्ठें।।
गर्मी में रविकिरण तप्त गिरि, शिखरों पर निजध्यान धरें।
शिवपथ पथिक साधु पुंगव वे, मुझको धर्म प्रदान करें।।१।।

ग्रीष्मऋतू में पर्वत ऊपर, वर्षा में तरु के नीचे ।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ रुचि से।।२।।

पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर तन रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।३।।

अंचलिका-

हे भगवन्! इस योगभक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।

मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।

णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

यदि अगले दिन का उपवास ग्रहण करना है तो ऐसा बोलना चाहिए-

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य, तवसिद्धे इत्यादि)

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां......योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य, प्रावृट्काले इत्यादि)

इसके बाद आचार्यदेव अगले दिन के लिए प्रत्याख्यान या उपवास दे देते हैं-

(अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिपूर्वकं श्वः आहारग्रहणात् प्राक्पर्यंत चतुर्विधाहारत्यागं कारयामि तव-युष्माकं।)

अनंतर सभी साधु आचार्य वंदना करते हैं-

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां......आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२७ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

लघु आचार्यभक्ति

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।
छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वंदे।।२।।
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।३।।
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क-तेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः।।४।।
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।२।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।३।।

अंचलिका —**इच्छामि भंत्ते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

गोचार प्रतिक्रमण कब और कैसे करें?

आचार्य देव की वंदना के बाद साधुवर्ग गोचार प्रतिक्रमण करें। जिनके घर में आहार हुआ है उनका नाम आदि बताकर आहार में जो कुछ अतिचार आदि लगे हों उनको कहना चाहिए। किन्हीं-किन्हीं संघ में आहार में जो कुछ ग्रहण किया है उन सब वस्तुओं को भी बतलाते हैं यह भी अच्छी परम्परा है। इससे शिष्यों के स्वास्थ्य के अनुकूल-प्रतिकूल वस्तु की जानकारी हो जाने से गुरु उसे अनुकूल वस्तु लेने व प्रतिकूल वस्तु न लेने आदि की शिक्षा भी देते हैं।

गोचार प्रतिक्रमण का अर्थ है-

''पडिक्कमामि भंते! अणेसणाए पाणभोयणाए......''

इत्यादि दण्डक का पढ़ना किन्तु अनगार धर्मामृत में इन लघु प्रतिक्रमणों को 'दैवसिक प्रतिक्रमण' में ही अन्तर्भूत माना गया है अतः इस समय पृथक् इस दण्डक को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

यथा-''तथा स प्रतिक्रमो निषिद्धिकेर्यालुंचाशदोषार्थश्चांतर्भवति। क्व? अपरे आह्निकादौ प्रतिक्रमे।''[१]

निषिद्धिका, ईर्यापथ, लोच, गोचार और स्वप्नदोष ये लघु प्रतिक्रमण दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण में अंतर्भूत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि लोच, रात्रिक, दैवसिक, गोचार, निषेधिकागमन, ईर्यापथ और दोष ये सात लघु प्रतिक्रमण होते हैं। इनमें से ईर्यापथशुद्धि प्रतिक्रमण जो कि त्रिकाल देववंदना में आता है उसमें निषेधिका गमन प्रतिक्रमण गर्भित हो जाता है। दोष प्रतिक्रमण-निद्रासंबंधि प्रतिक्रमण रात्रिक में एवं लोच और गोचार प्रतिक्रमण दैवसिक में अंतर्भूत हो जाते हैं।

अनगार धर्मामृत में एक प्रश्न हुआ है कि साधु गुरु के परोक्ष में ही चौके में ही प्रत्याख्यान क्यों ले लेते हैं? उसका समाधान दिया है कि ''दैवयोग से यदि कदाचित् गुरु के पास आते समय मार्ग में ही आयु समाप्त हो गई हो प्रत्याख्यान के बिना मृत्यु हो जाने से वह साधु विराधक-असमाधि से मरण करने वाला हो जावेगा अतः शीघ्र ही प्रत्याख्यान स्वयं ले लेना चाहिए फिर आकर गुरु के पास भी लेना चाहिए।[२]

विशेष ज्ञातव्य-आजकल किन्हीं संघों में साधु आहार के पहले ही गुरु के पास प्रत्याख्यान निष्ठापन की भक्ति पढ़ लेते हैं और गुरु के पास ही प्रत्याख्यान का त्याग करके आहार को जाते हैं। सो यह परम्परा कैसे चालू हुई कौन जाने? यह आगमोक्त नहीं है। आचारसार में भी लिखा है कि ''साधु दातार द्वारा पड़गाहन आदि नवधाभक्ति के पूर्ण हो जाने के बाद ही सिद्धभक्ति करके प्रत्याख्यान का निष्ठापन करे पुनः आहार ग्रहण करे।''[३]

---

१. अनगारधर्मामृत अ. ८, श्लोक ५८ की टीका। २. अनगारधर्मामृत अ. ९, श्लोक ३८।
३. आचारसार अ. ५, श्लोक ११६ से १२२।

क्रियाकलाप में पंडित पन्नालाल जी सोनी ने भी यही विधि लिखी है। यथा-"भोजन के पहले लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास का त्याग-निष्ठापन करें और भोजन के बाद शीघ्र ही लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण करें। यह तो आचार्य की असमक्षता में करें। आचार्य के समीप में लघु सिद्धभक्ति, लघु योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास धारण करें। अनन्तर लघु आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।"[१]

मध्यान्ह देववन्दना

११.३० बजे मध्यान्ह सामायिक का काल माना गया है। प्रात:कालीन सामायिक-देववंदना के सदृश ही जिनमंदिर में जाकर विधिवत् देववंदना करें। यदि कदाचित् अपनी वसतिका में ही सामायिक करना हो तो भी परोक्ष में ही पूर्ववत् सारी विधि करें। "दृष्टाष्टक स्तोत्र" नहीं भी पढ़ें तो कोई बात नहीं है। "नि:संगोहं जिनानां" आदि से लेकर "ईर्यापथशुद्धि" स्तोत्र पढ़कर "पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए" तक पूरा पाठ पढ़ना होता है अथवा "पडिक्कमामि" से ही शुरू करें।

यदि कदाचित् खड़े होकर सामायिक न करें तो बैठकर ही कृतिकर्म, आवर्त, शिरोनति, पंचांग प्रणाम आदि पूर्वक ही सामायिक विधि पूर्ण करके आत्मध्यान, पिंडस्थ, पदस्थ आदि ध्यान अथवा महामंत्र आदि का जाप्य करें।

इसके बाद मध्यान्ह की आचार्य वंदना करें।

आचार्य वंदना

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! सिद्धभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुण-**

लघु सिद्धभक्ति-
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।

अंचलिका-
हे भगवन् !श्री सिद्ध भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।१।।

---

१. क्रियाकलाप पृ. ४१-४२।

संपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजम-सिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य)

लघु श्रुतभक्ति

श्रुतमपि जिनवर विहितं गणधररचितं द्वय्नेकभेदस्थम्।
अंगांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि ।।

अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! सुदभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंग-पइण्णयपाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थयथुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोस्तु आचार्यवंदनायां.....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

अठविध कर्म रहित प्रभु, ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय,हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

लघुश्रुत भक्ति-जिनवर कथित रचित गणधर से, युत अंगांगबाह्य संयुत।
द्वादशभेद अनेक अनंत, विषययुत वंदूँ मैं जिनश्रुत।।

अंचलिका — हे भगवन् ! श्रुत भक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, आंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्तियुत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

आचार्यभक्ति

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगंभीराः, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालण-रयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

अपराण्हिक स्वाध्याय विधि

नमोऽस्तु अपराह्निकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां...श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करके तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृ. ८ से सामायिक दण्डक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके ९ जाप्य करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृष्ठ ९ से थोस्सामि स्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करें। अनंतर श्रुतभक्ति पढ़ें।)

लघु श्रुतभक्ति

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।

आचार्य भक्ति- ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरित जलधि गंभीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।

अंचलिका- हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।

लघुश्रुतभक्ति- इक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।१।।

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाण - महोवहिं सिरसा।।२।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! सुदभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णय-पाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

लघु आचार्य भक्ति

नमोस्तु अपराह्निकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां......आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ८ से सामायिक दंडक पढ़कर ९ जाप्य करें पुनः पृ. ९ से थोस्सामि पढ़कर आचार्यभक्ति पढ़ें।)

लघु आचार्यभक्ति

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।।

अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूँथा है गणधर गुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।२।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! श्रुत भक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, आंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्तियुत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

आचार्यभक्ति-

श्रुतसमुद्रपारंगत स्वमत व, परमत ज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्रतपनिधियुत गुणगुरु, हे गुरु! तुमको करूँ नती।।१।।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिये सदा वन्दे।।२।।
गुरुभत्तिसंजमेण य, तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।३।।
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षटकर्माभिरतास्तपोधनधनाः, साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणंतु मां साधवः।।४।।
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगम्भीराः, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुण-पालणरयाणं**

छत्तिस गुण से पूर्ण पाँच, आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रह निपुण धर्म-आचार्य सदा वंदूँ तुमको।।२।।

गुरूभक्ति संयम से तिरते, भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं, पाते जन्ममरण व्याधी।।३।।

व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर, ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट्आवश्यकरत, साधू उत्तम क्रिया धरें।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत, सूर्यचंद्र से तेज अधिक।
मोक्षद्वार उद्घाटन योद्धा, साधू हों प्रसन्न मुझ प्रति।।४।।

ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।५।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।

सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

(पुनः धवला, जयधवला, प्रवचनसार, अनगारधर्मामृत, आदिपुराण आदि ग्रंथों का स्वाध्याय करें। पढ़ना-पढ़ाना, प्रश्न करना—चर्चा करना, पढ़े हुए का चिंतन करना, घोकना—पाठ याद करना या धर्मोपदेश देना सभी स्वाध्याय के अंतर्गत हैं। सूर्यास्त के दो घड़ी पहले तक स्वाध्याय का काल है। यथाशक्ति स्वाध्याय करें।)

स्वाध्याय के बाद समापन विधि करें-

नमोऽस्तु अपराह्निकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां...श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ८ से सामायिक दण्डक पढ़कर ९बार महामंत्र जपकर पृ. ९ से थोस्सामिस्तव पढ़कर लघु श्रुतभक्ति पढ़ें। ''कोटीशतं द्वादश'' इत्यादि।)

इसके बाद पूर्वरात्रिक स्वाध्याय के लिए दिक्शुद्धि विधि करें।

पूर्वरात्रिक स्वाध्याय हेतु दिक्शुद्धि

अथ पूर्वरात्रिकवाचनाहेतोः पूर्वदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(पूर्व दिशा में मुखकर खड़े होकर १५ उच्छ्वास में ५ बार महामंत्र का जाप्य करें।)

अथ पूर्वरात्रिकवाचनाहेतोः दक्षिणदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(दक्षिण दिशा में मुखकर खड़े होकर १५ उच्छ्वास में ५ बार महामंत्र जपें।)

अथ पूर्वरात्रिकवाचनाहेतोः पश्चिमदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(पश्चिम दिशा में मुख करके १५ उच्छ्वास में ५बार महामंत्र जपें।)

अथ पूर्वरात्रिकवाचनाहेतोः उत्तरदिक्शुद्धिं करोम्यहं।

(उत्तर दिशा में मुख करके १५ उच्छ्वास में ५ बार महामंत्र जपें।)

विशेष-पूर्वरात्रि को प्रदोष भी कहते हैं अतः यहाँ ''प्रादोषिक-वाचनाहेतोः'' भी बोल सकते हैं।

****

दैवसिक प्रतिक्रमण कब करें?

सूर्यास्त के दो घड़ी (४८मिनट)पहले ही सभी साधु आचार्यश्री के पास उपस्थित होकर 'नमोऽस्तु' करके उचित व्यवस्था से बैठकर ''**जीवे प्रमादजनिताः**'' आदि पढ़ते हुए दैवसिक प्रतिक्रमण करें। जो पिछली रात्रि में रात्रिक प्रतिक्रमण विधि थी, वही प्रतिक्रमण यहाँ पढ़ना है। अन्तर इतना ही

रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं,मम जिन गुण संपति होवे।।

है कि इसमें ''**अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिकप्रतिक्रमणक्रियायां**'' बोलना चाहिए। सर्वत्र '**देवसियम्मि**' '**देवसिओ**' '**देवसियस्स**' आदि पाठ बोलें। '**राइयम्मि, राइओ, राइयस्स**' आदि न बोलें। अनन्तर सभी साधु मिलकर आचार्य की वंदना करें। गवासन से आचार्यवंदना की जाती है।

आचार्य वंदना

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२७ उच्छ्वास में ९जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति

सम्मत्तणाणदंसण-वीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलघुमव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१।।
तवसिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अतीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ**

लघु सिद्धभक्ति-

समकित दर्शनज्ञान वीर्य, सूक्ष्मत्व तथा अवगाहन हैं।
अव्याबाध अगुरुलघु ये, सिद्धों के आठ महागुण हैं।।१।।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध, नमूँ सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।१।।

अठविध कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।

भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्ति युक्ता।।३।।

कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२७ उच्छ्वास में ९जाप्य)

लघु श्रुतभक्ति

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्य-मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।
अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।२।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णय-पाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां......आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२७ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

लघुश्रुत भक्ति-

इक सौ बारह कोटि तिरासी-लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।१।।
अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूंथा है गणधरगुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।२।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! श्रुत भक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, आंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।१।।

प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ भक्तियुत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

लघु आचार्यभक्ति

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।।
छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वन्दे।।२।।
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति।।३।।
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणंतु मां साधवः।।४।।
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगम्भीराः मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! आइरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं**

लघु आचार्य भक्ति-

श्रुतसमुद्र पारंगत स्वमत, व परमतज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्र तप निधियुत गुणगुरु, हे गुरु! तुमको करूँ नती।।१।।
छत्तिस गुण से पूर्ण पाँच, आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रह निपुण धर्म-आचार्य सदा वंदूँ तुमको।।२।।
गुरुभक्ती संयम से तिरते, भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं, पाते जन्ममरण व्याधी।।३।।
व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर, ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट् आवश्यकरत, साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत, सूर्यचन्द्र से तेज अधिक।
मोक्ष द्वार उद्घाटन योद्धा, साधु हों प्रसन्न मुझ प्रति।।४।।
ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।५।।

अंचलिका- हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।

सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

रात्रियोग प्रतिष्ठापना कब और कैसे?

पुनः सभी साधु रात्रियोग ग्रहण कर लेवें। आर्यिकायें अपनी वसतिका में जाकर ही रात्रियोग ग्रहण करें। इसका मतलब यह है कि-'योगं-अद्य रात्रावत्र वसत्यां स्थातव्यमिति नियमविशेषं।'' आज रात्रि में हमें इस वसतिका में ही रहना है। इस नियम विशेष का नाम ''रात्रियोग'' है।

रात्रि में मलमूत्रादि विसर्जन के स्थान को साधु दिन में पहले से ही देखकर निश्चित कर लेते हैं, पुनः बाधा होने पर जा सकते हैं। अतः उतनी परिधि खुली रखनी चाहिए।

रात्रियोग प्रतिष्ठापना विधि

नमोऽस्तु रात्रियोगप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ या ८ से णमो अरिहंताणं आदि सामायिक दंडक पढ़कर २७ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र जपकर पृ. ६ या ९ से थोस्सामिस्तव पढ़ें पुनः 'जातिजरोरुरोग' इत्यादि या 'प्रावृट्काले' इत्यादि योगिभक्ति पढ़ें।)

योगिभक्ति

दुवई छंद- **जातिजरोरुरोगमरणातुरशोकसहस्रदीपिताः ।**
दुःसहनरकपतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्धचेतसः।।
जीवितमंबुबिंदुचपलं तडिदभ्रसमा विभूतयः।
सकलमिदं विचिन्त्य मुनयः प्रशमाय वनान्तमाश्रिताः।।१।।

सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।

योगिभक्ति-

जन्म जरा बहु मरण रोग अरु, शोक सहस्रों से तापित।
दुःसह नरक पतन से डरते, सम्यग्बोध हुआ जाग्रत।।

भद्रिका छंद

व्रतसमितिगुप्तसंयुता:, शमसुखमाधाय मनसि वीतमोहा:।
ध्यानाध्ययनवशंगतास्त्र, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति।।२।।
दिनकरकिरणनिकरसंतप्तशिलानिचयेषु नि:स्पृहा:।
मलपटलावलिप्ततनव: शिथिलीकृतकर्मबंधना:।।
व्यपगतमदनदर्परतिदोषकषायविरक्तमत्सरा:।
गिरिशिखरेषु चंडकिरणाभिमुखस्थितयो दिगंबरा:।।३।।
सज्ज्ञानामृतपायिभि: क्षान्तिपय: सिच्यमानपुण्यकायै:।
धृतसंतोषच्छत्रकै:, तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रै:।।४।।
शिखिगलकज्जलालिमलिनैर्विबुधाधिपचापचित्रितै:।
भीमरवैर्विसृष्टचण्डाशनिशीतलवायुवृष्टिभि:।।
गगनतलं विलोक्य जलदै: स्थगितं सहसा तपोधना:।
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशंकमासते।।५।।

जलबुद्बुदवत् जीवन चंचल, विद्युतवत् वैभव सारे।
ऐसा समझ प्रशमहेतू मुनि-जन वन का आश्रय धारें।।१।।
पंच महाव्रत पंच समिति त्रय, गुप्ति सहित हैं मोह रहित।
शम सुख को मन में धारण कर, चर्या करते शास्त्र विहित।।
ध्यान और अध्ययनशील नित, इन दोनों के वश रहते।
कर्म विशुद्धी करने हेतू, घोर तपश्चर्या करते।।२।।
ग्रीषम ऋतु में सूर्य किरण से, तपी शिलाओं पर बैठें।
मल से लिप्त देहयुत निस्पृह, कर्म बंध को शिथिल करें।।
काम दर्प रति दोष कषायों, से मत्सर से रहित मुनीश।
पर्वत के शिखरों पर रवि के, सन्मुख मुख कर खड़े यतीश।।३।।
सम्यग्ज्ञान सुधा को पीते, पाप ताप को शांत करें।
क्षमा नीर से पुण्यकाय का, वे मुनि सिंचन नित्य करें।।
धरें सदा संतोष छत्र को, तीव्र ताप सन्ताप सहें।
ऐसे मुनिवर ग्रीष्म काल में, कर्मेन्धन को शीघ्र दहें।।४।।
वर्षा ऋतु में मोरकंठ सम, काले इन्द्रधनुष वाले।
खूब गरजते शीतल वर्षा, वज्रपात बिजली वाले।।
ऐसे मेघों को लखकर वे, मुनिगण सहसा रात्रि में।
पुनरपि वृक्ष तलों में बैठे, निर्भय ध्यान धरें वन में।।५।।

जलधाराशरताडिता न चलन्ति चरित्रत: सदा नृसिंहा:।
संसारदु:खभीरव: परीषहारातिघातिन: प्रवीरा:।।६।।
अविरतबहलतुहिनकणवारिभिरंघ्रिपपत्रपातनै-
रनवरतमुक्तासात्कार[१] रवै:परुषैरथानिलै: शोषितगात्रयष्टय:।।
इह श्रमणा धृतिकंबलावृता: शिशिरनिशां।
तुषारविषमां गमयन्ति चतु:पथे स्थिता:।।७।।
इति योगत्रयधारिण:सकलतप:शालिन:प्रवृद्धपुण्यकाया:।
परमानंदसुखैषिण: समाधिमग्र्यं दिशंतु नो भदन्ता:।।८।।

क्षेपक श्लोक

गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसरे वाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।९।।
गिरिकंदरदुर्गेषु, ये वसन्ति दिगम्बरा:।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिं।।१०।।

मूसल जलधारा बाणों से, ताड़ित होते मुनि पुंगव।
फिर भी चारित से नहिं डिगते, सदा अटल नरसिंह सदृश।।
भव दु:ख से भयभीत परीषह, शत्रू का संहार करें।
शूरों में भी शूर महामुनि, वीरों में भी वीर बने।।६।।
शीतल ऋतु में बरफ कणों से, सहित शीत वायू चलती।
तरु के पत्ते गिरते नित प्रति, परुष भयंकर ध्वनि करती।।
शुष्क देह युत श्रमण शीत में, महाधैर्य कंबल ओढ़ें।
चतुष्पथों में खड़े शीत की, रात्रि बितावें ध्यान धरें।।७।।
आतापन तरुमूल चतुष्पथ, इस विध तीन योगधारी।
सकल तपश्चर्याशाली नित, पुण्य योग वृद्धिंकारी।।
परमानन्द सुखामृत इच्छुक, वे भगवान महामुनिगण।
हमको श्रेष्ठसमाधि शुक्ल शुचि, ध्यान प्रदान करें उत्तम।।८।।
ग्रीष्म ऋतू में गिरि शिखरों पर, वर्षा रात्री में तरुतल।
शीत काल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ प्रति पल।।९।।
पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर हैं रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।१०।।

---

१. सीत्कार इति पाठोलभ्यते।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूल-अब्भोवा-सठाणमोणवीरासणेक्कपासकुक्कुडासणचउत्थपक्ख-खवणादियोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

अपरान्हिक देववन्दना विधि

सूर्यास्त के बाद साधु मंदिर जी में या अपनी वसतिका में ही सायंकालीन सामयिक शुरू करें। इसकी सारी विधि 'पौर्वाह्निक देववंदना' के समान ही है। अन्तर इतना ही है कि ''पौर्वाह्निक'' के स्थान में 'अपराह्निक' बोलें। दृष्टाष्टक स्तोत्र छोड़कर 'नि:संगोऽहं जिनानां' इत्यादि बोलते हुए या ''पडिक्कमामि भंते!'' से शुरू करके पूरी भक्तिक्रिया करें। अनन्तर यथावकाश आत्म ध्यान जाप्य करें।

पूर्वरात्रिक स्वाध्याय कब करें?

सूर्यास्त के दो घड़ी बाद से पूर्वरात्रिक स्वाध्याय काल शुरू हो जाता है। इस काल को प्रादोषिक काल भी कहते हैं। इस काल में विधिवत् स्वाध्याय करें।

पूर्वरात्रिक स्वाध्याय विधि

नमोऽस्तु प्रादोषिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ८ से ''णमो अरहंताणं'' आदि लघु सामायिक दण्डक पढ़कर २७ उच्छ्वास में ९जाप्य करके पृ. ९ से लघु थोस्सामिस्तव पढ़कर लघु श्रुतभक्ति पढ़ें।)

अंचलिका-

हे भगवन! इस योगि भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।
मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।२।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।३।।

नमोऽस्तु प्रादोषिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां......आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ८ से सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, पृ. ९ से थोस्सामिस्तव पढ़कर लघु आचार्यभक्ति पढ़ें।)

(अनन्तर धर्म ग्रंथों का स्वाध्याय करें। यदि कदाचित् दीपक विद्युत-दीपक आदि प्रकाश की व्यवस्था न हो सके तो जो पाठ मौखिक याद हैं उन्हें पढ़कर उनके अर्थ का चिंतवन करते हुए स्वाध्याय पूर्ण निष्ठापनविधि करें। इस स्वाध्याय का काल अर्धरात्रि के दो घड़ी (४८ मिनट) पहले तक माना गया है। फिर भी अपने स्वास्थ्य और शक्ति के अनुसार ही जागें पुन: निद्रा ग्रहण करें।)

नमोऽस्तु प्रादोषिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ८ से सामायिक दण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके पृ. ९ से थोस्सामिस्तव पढ़कर लघु श्रुतभक्ति पढ़ें।)

वैरात्रिक या अपररात्रिक स्वाध्याय के लिए दिक्शुद्धि का विधान शास्त्रों में नहीं है अत: इस स्वाध्याय के बाद दिक्शुद्धि नहीं करना है। चूंकि पिछली रात्रि में सिद्धांत ग्रंथ पढ़ने का निषेध है।

इसके बाद एकत्व भावना, वैराग्य भावना आदि का चिंतन करते हुए रात्रि में पाटा, चटाई या घास पर एक पसवाड़े से—एक करवट आदि से सो जावें।

यह पूर्वरात्रिक अनुष्ठान समाप्त हुआ।

यहां तक दिनचर्या पूर्ण हुई।

नैमित्तिक क्रियायें

(पर्वचर्या)

चतुर्दशी क्रिया कब और कैसे करें?

त्रिसमयवंदने भक्तिद्वयमध्ये श्रुतनुतिं चतुर्दश्याम् ।
प्राहुस्तद्भक्तित्रयमुखान्तयो: केऽपि सिद्धशांतिनुती।।

प्राकृतक्रियाकांड चारित्रसार मत के अनुसार चतुर्दशी के दिन त्रिकाल देववंदना-सामायिक में ही चैत्यभक्ति और पंचगुरु भक्ति के मध्य श्रुतभक्ति पढ़ें। पुन: संस्कृत क्रियाकांड मत के अनुसार चतुर्दशी के दिन त्रिकाल देववंदना में सिद्ध, चैत्य, श्रुत, पंचगुरु और शांति ऐसी पाँच भक्तियाँ करें।

चतुर्दशी क्रिया विधि

पूर्वाण्ह आदि में सामायिक करते समय प्रथम ही ईर्यापथ शुद्धि से लेकर ''भगवन् नमोऽस्तु........एषोऽहं सर्वसावद्ययोगाद्विरतोऽस्मि'' पर्यंत क्रिया करके ऐसी प्रतिज्ञा करें-

नमोऽस्तु पौर्वाह्निकदेववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां.....चैत्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृष्ठ ६४ के अनुसार विधिवत् चैत्यभक्ति पढ़कर आगे प्रतिज्ञा करें।)

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिकदेववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य और थोस्सामि पढ़कर आगे लिखी गई अष्टमी क्रिया में से पृष्ठ ११६ से श्रुतभक्ति लेकर पढ़ें।)

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिकदेववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां....पंचगुरु-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त विधि करके पृष्ठ ७१ से पंचगुरु भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिकदेववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां....समाधि-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्व विधि से कायोत्सर्ग करके पृष्ठ १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

पुनः यथावकाश आत्मध्यान आदि करके सामायिक विधि पूर्ण करें अथवा संस्कृत क्रिया-कांड के अनुसार सामायिक में पांच भक्तियां पढ़नी हैं तो निम्न प्रतिज्ञा वाक्य से पढ़ें।

द्वितीय चतुर्दशी क्रियाविधि

अथवा पडिक्कमामि भंते! 'इरियावहियाए....' से लेकर विरतोऽस्मि' तक पाठ पढ़कर।

नमोऽस्तु देववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां..सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृष्ठ ११३ से सिद्ध भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु देववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां.....चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सर्वविधिपूर्वक ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृष्ठ ६४ से चैत्यभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु देववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां...श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त विधि से ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृष्ठ ११६ से श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु देववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां....पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त विधि से ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृष्ठ ७१ से पंचगुरु भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु देववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त विधि से ९जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृष्ठ १३६ से शांति भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु देववंदनायां चतुर्दशीपर्वक्रियायां......सिद्धचैत्यश्रुतपंचगुरु-शांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर 'प्रथमं करणं' आदि समाधि भक्ति करें। पुनः यथावकाश आत्मध्यान जाप्य आदि करके सामायिक पूर्ण करें।)

पाक्षिकी क्रिया कब करे ?

चतुर्दशीक्रिया धर्मव्यासंगादिवशान्न चेत्,
कर्तुं पार्येत पक्षांते तर्हि कार्याष्टमी क्रिया।।[१]

यदि धर्मकार्य विशेष के निमित्त से कदाचित् चतुर्दशी क्रिया करना भूल जावें तो पूर्णमासी या अमावस्या को अष्टमी क्रिया करना चाहिए। इसका स्पष्टीकरण ऐसा है कि अष्टमी की क्रिया में से श्रुतभक्ति निकाल दें तो यही पाक्षिकी क्रिया कहलाती है।[२] उसकी प्रयोग विधि निम्न प्रकार है।

पाक्षिकी क्रिया विधि

नमोऽस्तु पाक्षिकीक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक, ९जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृष्ठ ११३ से 'सिद्धानुद्धूत' आदि सिद्धभक्ति पढ़ें।

नमोऽस्तु पाक्षिकीक्रियायां.......सालोचनाचारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृ. १२२ से 'येनेन्द्रान्' इत्यादि चारित्रभक्ति पढ़ें। 'इच्छामि भंते! 'चरित्तायारो' आदि चारित्रालोचना भी करें।)

नमोऽस्तु पाक्षिकीक्रियायां......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् दंडक, ९जाप्य, थोस्सामि पढ़कर शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पाक्षिकीक्रियायां.......सिद्धचारित्रशांतिभक्तीः कृत्वा समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् दंडक, ९ जाप्य, 'थोस्सामि' पढ़कर समाधिभक्ति पढ़ें।)

अष्टमी क्रिया कैसे करें।

''स्यात् सिद्धश्रुतचारित्रशांतिभक्त्याष्टमी क्रिया।''

सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, सालोचना चारित्रभक्ति और शांतिभक्ति ऐसी चार भक्तियां करें। उसकी विधि निम्न प्रकार है-

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग नमस्कार करके तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दण्डक पढ़कर पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करें। अनन्तर २७ उच्छ्वास में ९ बार मंत्र जपकर तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामि स्तव पढ़कर पुनरपि तीन आवर्त एक शिरोनति करके सिद्ध-भक्ति पढ़ें।)

---

१. अनगारधर्मामृत अ. ९, श्लोक ४६। २. अनगारधर्मामृत अ. ९, श्लोक ४७।

सिद्धभक्ति

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्साधितात्मस्वभावान् ।
वंदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः।।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारात्।
योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः।।१।।
नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी।।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरुपसमाहारविस्तारधर्मा।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः।।२।।
स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या-
सम्पद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः।।

सिद्धभक्ति

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् प्रणाम, सामायिक दण्डक, २७ उच्छ्वास में ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव करके सिद्ध भक्ति पढ़ें।)

(शंभु छंद)

सब सिद्ध कर्म प्रकृती विनाश, निज के स्वभाव को प्राप्त किये।
अनुपमगुण से आकृष्ट तुष्ट, मैं वंदूँ सिद्धी हेतु लिये।।
गुणगण आच्छादक दोष नशें, सिद्धी स्वात्मा की उपलब्धी।
जैसे पत्थर सोना बनता, हों योग्य उपादान अरु युक्ती।।१।।

नहिं मुक्ति अभावरूप निजगुण की, हानि तपों से उचित न है।
आत्मा अनादि से बंधा स्वकृतफल-भुक् तत्क्षय से मुक्ति लहे।।
ज्ञाता दृष्टा यह स्वतनुमात्र, संहार विसर्पण गुणयुत भी।
उत्पाद व व्यय ध्रुवयुत निजगुणयुत, अन्य प्रकार नहीं सिद्धी।।२।।

जो अंतर्बाह्य हेतु से प्रगटित, निर्मल दर्शन ज्ञान कहा।
चारित संपत्ती प्रहरण से, सब घाति चतुष्टय हानि किया।।

कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्य-सम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ।।३।।
जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं संप्रतृप्यन्वितन्वन्,
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुसभं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा।।
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयंभू प्रवृत्तः।।४।।
छिन्दन्शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वंव्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेग्र्ये।।५।।
अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः[1]।
क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह -
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।६।।

फिर प्रगट अचिन्त्य सार अद्भुतगुण, केवलज्ञान सुदर्शन सुख।
अरु प्रवर वीर्य सम्यक्त्व प्रभा-मण्डल चमरादिक से राजित।।३।।
जानें देखें यह त्रिभुवन को जो सदा तृप्त हो सुख भोगें।
तम के विध्वंसक समवसरण में सब को तर्पित कर शोभें।।
वे सभी प्रजा के ईश्वर पर की ज्योति तिरस्कृत कर क्षण में।
बस स्व में स्व से स्व को प्रगटित कर स्वयं स्वयंभू आप बनें।।४।।
अवशेष अघाती बेड़ीवत् जो कर्म बली उनको घाता।
सूक्ष्मत्व अगुरुलघु आदि अनंत, स्वाभाविक क्षायिक गुण पाया।।
वे अन्य कर्म क्षय से निज की, शुद्धी से महिमाशाली हैं।
प्रभु ऊर्ध्वगमन से एक समय में लोक अग्र पर ठहरे हैं।।५।।
जो अन्याकार प्राप्ति हेतु नहिं हुआ विलक्षण किंचित् कम।
वो पूर्व स्वयं संप्राप्त देह, प्रतिकृति है रुचिर अमूर्त अमम।।
सब क्षुधा तृषा ज्वर श्वास कास,जर मरण अनिष्ट योग रहिता।
आपत्ती आदि उग्र दुःखकर भवगत सुख कौन माप सकता।।६।।

---

१. ह्यमूर्तिः इति पाठांतरं टीकायां।

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं।
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निष्प्रतिद्वन्द्वभावम् ।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममभितं शाश्वतं सर्वकालं।
उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ।।७।।
नार्थः क्षुत्तृट्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या-
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्नहि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात् ।
आतंकार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते।।८।।
तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपः संयमज्ञानदृष्टि-
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः।
भूता भव्या भवन्तः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैः
तान्सर्वान्नौम्यनंतान्निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ।।९।।

क्षेपक श्लोक-आर्या-

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्टदोषविरहितं सुपरिशुद्धम् ।
अतिभक्ति-संप्रयुक्तो, यो वंदते स लघु लभते परमसुखम्।।

सब सिद्ध स्वयं के उपादान से स्वयं अतिशयी बाधरहित।
वृद्धि व ह्रास से रहित विषय-विरहित, प्रतिशत्रू रहित अमित।
सब अन्य द्रव्य से निरापेक्ष निरुपम, त्रैकालिक अविनश्वर।
उत्कृष्ट अनंतसार सिद्धों के, हुआ परमसुख अति निर्भर।।७।।
नहिं भूख प्यास अतएव विविध रस-अन्न पान से नहिं मतलब।
नहिं अशुची ग्लानी निद्रादिक, माला शय्या से है क्या तब।।
नहिं रोग जनित पीड़ा है तब, उपशमन हेतु औषधि से क्या।
सब तिमिर नष्ट हो गया दिखे, सब जगत् पुनः दीपक से क्या।।८।।
जो विविध सुनय तप संयम दर्शन, ज्ञान चरित से सिद्ध हुए।
गुण संपद् से युत विश्वकीर्ति व्यापी, देवों के देव हुए।।
उत्कृष्ट जनों से संस्तुत जग में, भूत भावि सांप्रत सिद्धा।
मैं नमूं अनंतों को त्रैकालिक, उन स्वरूप की है इच्छा।।९।।

दोहा- बत्तिस दोषों से रहित, परम शुद्ध शुभ खान।
करके कायोत्सर्ग जो, भक्ति सहित अमलान।।
नित प्रति वंदे भाव से, सिद्ध समूह महान्।
वह पावे झट परम सुख, ज्ञान सहित शिव धाम।।

अंचलिका —**इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं तवसिद्धाणं-णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं-चरित्तसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां.......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त सामायिक दण्डक ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर श्रुतभक्ति पढ़ें।)

श्रुतभक्ति

आर्या छंद

स्तोष्ये संज्ञानानि, परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि।
लोकालोकविलोकनलोलितसल्लोकलोचनानि सदा।।१।।

अंचलिका (चौबोल छंद)-

हे भगवन् ! श्री सिद्ध भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।
अठ विधकर्मरहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयम सिद्ध चरित सिध जो।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूं, वंदू नमूं भक्ति युक्ता।।
दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधि मरणं मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर श्रुतभक्ति पढ़ें।)

श्रुतभक्ति

(चौबोल छंद)

लोकालोक विलोकन लोकित, सल्लोचन है सम्यग्ज्ञान।
भेद कहे प्रत्यक्ष परोक्ष, द्वय हैं सदा नमूं सुखदान।।१।।

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं।
बह्वाद्यवग्रहादिककृतषट्त्रिंशत्त्रिशतभेदम् ।।२।।
विविधर्द्धिबुद्धिकोष्ठस्फुटबीजपदानुसारिबुद्ध्यधिकं।
संभिन्नश्रोतृतया सार्धं श्रुतभाजनं वंदे।।३।।
श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि ।।४।।
पर्यायाक्षरपदसंघातप्रतिपत्तिकानुयोगविधीन् ।
प्राभृतकप्राभृतकं, प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च।।५।।
तेषां समासतोऽपि च, विंशतिभेदान् समश्नुवानं तत्।
वंदे द्वादशधोक्तं, गभीरवर - शास्त्रपद्धत्या।।६।।
आचारं सूत्रकृतं, स्थानं समवायनामधेयं ।
व्याख्याप्रज्ञप्तिं च, ज्ञातृकथोपासकाध्ययने।।७।।
वंदेंऽतकृद्दशमनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम् ।
प्रश्नव्याकरणं हि, विपाकसूत्रं च विनमामि।।८।।

मतिज्ञान अभिमुख नियमित बोधन इन्द्रिय मन से उपजे।
अवग्रहादिक बहुआदिकयुत, तीन सौ छत्तीस भेद लसें।।२।।
विविध ऋद्धि बुद्धि कोष्ठ स्फुट बीज सुपदानुसारी हैं।
ऋद्धि कही संभिन्नश्रोतृता, इन युत श्रुत को वंदू मैं।।३।।
जिनवर कथित रचित गणधर से, युत अंगांग बाह्य संयुत।
द्वादश भेद अनेक अनंत, विषययुत वंदूं मैं जिनश्रुत।।४।।
पर्याय अक्षर पद संघात, प्रतिपत्तिक अनुयोग सहित।
प्राभृत-प्राभृत कहे तथा, प्राभृतक वस्तु अरु पूर्व दशक।।५।।
प्रत्येकों दस में समासयुत, बीस भेद होते उनको।
वर गंभीर शास्त्र पद्धति से, द्वादश अंग नमूं सबको।।६।।
आचारांग सूत्रकृत स्थानांग तथा समवाय महान।
व्याख्याप्रज्ञप्ति अरु ज्ञातृकथा उपासक अध्ययनांग।।७।।
अंतकृत दश अनुत्तरोपपादिक दश युत अंग कहे।
अंग प्रश्नव्याकरण विपाक, सूत्र अंग प्रणमूं नित मैं।।८।।

परिकर्म च सूत्रं च, स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते।
सार्द्धं चूलिकयापि च, पंचविधं दृष्टिवादं च।।९।।
पूर्वगतं तु चतुर्दश-धोदितमुत्पादपूर्वमाद्यमहम् ।
आग्रायणीयमीडे, पुरुवीर्यानुप्रवादं च ।।१०।।
संततमहमभिवंदे, तथास्तिनास्तिप्रवादपूर्वं च।
ज्ञानप्रवादसत्यप्रवादमात्मप्रवादं च ।।११।।
कर्मप्रवादमीडेऽथ, प्रत्याख्याननामधेयं च।
दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च ।।१२।।
कल्याणनामधेयं, प्राणावायं क्रियाविशालं च।
अथ लोकविंदुसारं, वंदे लोकाग्रसारपदं।।१३।।
दश च चतुर्दश चाष्टा-वष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च।
षोडश च विंशतिं च, त्रिंशतमपि पंचदश च तथा।।१४।।
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम्।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि, विंशतिं विंशतिं नौमि।।१५।।

दृष्टिवाद युत द्वादशांग हैं, दृष्टिवाद के पांच प्रकार।
परीकर्म अरु सूत्र प्रथम, अनुयोग पूर्व चूलिका सुसार।।९।।
कहे पूर्वगत चौदह उनमें, है उत्पाद पूर्व पहला।
अग्रायणि अरु पुरुवीर्यानुप्रवाद पूर्व हैं नमूं सदा।।१०।।
अस्तिनास्ति सुप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवाद पूर्व शुभ हैं।
सत्यप्रवाद पूर्व अरु आत्मप्रवाद पूर्व प्रणमूँ नित मैं।।११।।
कर्म प्रवादपूर्व अरु प्रत्याख्यानपूर्व है उत्तम श्रुत।
वंदूं विद्यानुप्रवाद को , क्षुद्रमहाविद्या संयुत ।।१२।।
कल्याणानुप्रवाद प्राणावाय सुक्रियाविशालं श्रुत।
पूर्व लोकविंदूसारं ये, चौदह पूर्व नमूं संतत।।१३।।
दस चौदह अठ अठरह बारह, बारह सोलह बीस अरु तीस।
पंद्रह दस-दस-दस-दस क्रम से, चौदह पूर्व की वस्तु कथित।।१४।।
एक-एक वस्तू में होते, बीस-बीस प्राभृतक नमूं।
चौदह पूर्व सुप्राभृतयुत, इक सौ पंचानवे वस्तु नमूं।।१५।।

पूर्वांतं ह्यपरातं ध्रुवमध्रुवच्यवनलब्धिनामानि।
अध्रुवसंप्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च।।१६।।
सर्वार्थकल्पनीयं, ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालं।
सिद्धिमुपाध्यं च तथा, चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य।।१७।।
पंचमवस्तुचतुर्थ - प्राभृतकस्यानुयोगनामानि।
कृतिवेदने तथैव, स्पर्शनकर्मप्रकृतिमेव।।१८।।
बंधननिबंधनप्रक्रमानुपक्रममथाभ्युदयमोक्षौ ।
संक्रमलेश्ये च तथा, लेश्यायाः कर्मपरिणामौ।।१९।।
सातमसातं दीर्घं, ह्रस्वं भवधारणीयसंज्ञं च।
पुरुपुद्गलात्मनाम च, निधत्तमनिधत्तमभिनौमि।।२०।।
सनिकाचितमनिकाचितमथ कर्मस्थितिकपश्चिमस्कंधौ।
अल्पबहुत्वं च यजे, तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ।।२१।।
कोटीनां द्वादशशत-मष्टापंचाशतं सहस्राणाम् ।
लक्षत्र्यशीतिमेव च, पंच च वंदे श्रुतपदानि।।२२।।

पूर्वांतरु अपरांत ध्रुवं, अध्रुव अरु च्यवन लब्धि नामक।
अध्रुव संप्रणिधि अरू अर्थ, अरु भौमावयादि संयुत।।१६।।
श्रुत सर्वारथकल्पनीय है, ज्ञान अतीत भाविकालिक।
सिद्धि उपाध्यं ये चौदह, वस्तु अग्रायणि पूर्वकथित।।१७।।
इनमें पंचम वस्तु का, चौथा प्राभृत जो कहा जिनेश।
उसके हैं अनुयोग द्वार, चौबीस वरणे मैं नमूं हमेश।।१८।।
कृतिवेदन स्पर्शन कर्म अरु, प्रकृति कहें ये पांच तथा।
बंधन और निबंधन प्रक्रम, अनुपक्रम अभ्युदय कहा।।१९।।
मोक्ष तथा संक्रम लेश्या, लेश्या के कर्म अरू परिणाम।
सातासात दीर्घ अरु ह्रस्वं, अरु भवधारणीय शुभ नाम।।२०।।
पुरु पुद्गलात्मक है तथा निधत्त, अनिधत्त निकाचित अनिकाचित।
कर्म स्थिति पश्चिमी स्कंध अरु, अल्पबहुत्व नमूं चौबीस।।२१।।
एक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पांच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूं, नमाकर माथ।।२२।।

षोडशशतं चतुस्त्रिंशत्कोटीनां त्र्यशीतिलक्षाणि।
शतसंख्याष्टासप्तति-मष्टाशीतिं च पदवर्णान् ।।२३।।
सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वंदना प्रतिक्रमणं।
वैनयिकं कृतिकर्म च, पृथुदशवैकालिकं च तथा।।२४।।
वरमुत्तराध्ययनमपि, कल्पव्यवहारमेवमभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि, महाकल्पं पुण्डरीकं च ।।२५।।
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।
निपुणान्यशीतिकं च, प्रकीर्णकान्यङ्गबाह्यानि।।२६।।
पुद्गलमर्यादोक्तं, प्रत्यक्षं सप्रभेदमवधिं च।
देशावधिपरमावधि-सर्वावधिभेदमभिवन्दे ।।२७।।
परमनसि स्थितमर्थं, मनसा परिविद्य मंत्रिमहितगुणम्।
ऋजुविपुलमतिविकल्पं, स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम् ।।२८।।
क्षायिकमनन्तमेकं, त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम् ।
सकलसुखधाम सततं, वन्देऽहं केवलज्ञानम् ।।२९।।

सोलह सौ चौतीस करोड़, तेरासी लाख अरु सात सहस।
अठ सौ अठ्यासी इतने ये, पद के वर्ण कहे शाश्वत।।२३।।
सामायिक चउबिस तीर्थंकर, स्तुति वंदन औ प्रतीक्रमण।
वैनयिक कृतिकर्म तथा दश, वैकालिक का करूं नमन।।२४।।
श्रेष्ठ उत्तराध्ययन कल्प, व्यवहार कहा वंदूं उनको।
कल्पाकल्प महाकल्पं अरु, पुंडरीक वंदूं सबको।।२५।।
परिपाटी से नमूं महायुत, पुंडरीक श्रुत को नित ही।
अंग बाह्य ये कहे प्रकीर्णक, निपुण महाश्रुत पूज्य सही।।२६।।
अवधिज्ञान मर्यादायुत, पुद्गल प्रत्यक्ष करे बहुविध।
देशावधि परमावधि सर्वावधि को वंदूं भेद सहित।।२७।।
पर मन में स्थित सब वस्तू, को प्रत्यक्ष करे जो ज्ञान।
ऋजुमति विपुलमति मनःपर्यय, उनको वंदूं भव भय हान।।२८।।
केवलज्ञान त्रिकालिक सर्व, पदार्थ प्रकाशे युगपत ही।
क्षायिक एक अनंत सकल, सुखधाम उसे वंदूं नित ही।।२९।।

एवमभिष्टुवतो मे, ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि, र्ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम् ।।३०।।

अंचलिका

इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्मसुत्तपढमाणुओगपुव्वगयचूलिया चेव[1] सुत्तत्थयथुइधम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां......सालोचनाचारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वोक्त विधि से सामायिक दण्डक, ९ जाप्य और थोस्सामिस्तव पढ़कर चारित्रभक्ति पढ़ें पुनः 'इच्छामि भंत्ते! अट्ठमियम्मि......' आदि पाठ पढ़ें।)

इस विध स्तुति करते मुझको, सकल लोकचक्षू सब ज्ञान।
ज्ञान ऋद्धि देवें झट ज्ञानों, का फल अच्युत सौख्य निधान।।३०।।

अंचलिका

हे भगवन् ! श्रुतभक्ती, कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, अंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूं, वदूं नमूं भक्ति युत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊं झटिति से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां.......सालोचनाचारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर चारित्र भक्ति पढ़ें।)

---

१. सुत्तत्थय ऐसा भी पाठ है।

चारित्र भक्ति

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूरहारांगदान्।
भास्वन्मौलिमणिप्रभाप्रविसरोत्तुङ्गोत्तमाङ्गान्नतान् ।।
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा।
वंदे पंचतयं तमद्य निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ।।१।।

अर्थव्यंजनतद्द्वयाविकलताकालोपधाप्रश्रयाः।
स्वाचार्याद्यनपन्हवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम्।।
श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽजसा।
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ।।२।।

शंकादृष्टिविमोहकांक्षणविधिव्यावृत्तिसन्नद्धतां।
वात्सल्यं विचिकित्सनादुपरतिं धर्मोपबृंहक्रियाम् ।।

चारित्रभक्ति

चमकित मुकुट मणि की प्रभ से, व्याप्त सु उन्नत है मस्तक।
कंकण हारादिक से शोभित, त्रिभुवन के इंद्रादिक सब।।
जिससे उनको स्वपद कमल में, नमित किया नित मुनियों ने।
उन अर्चित पंचाचारों को, कथन हेतु अब नमूं उन्हें।।१।।
व्यंजन अर्थ उभय शुद्धी युत, काल विनय शुद्धि उपधा।
निज सूरि का निन्हव नहिं, बहुमान कहीं ये अष्ट विधा।।
श्रीमद् प्रभू जातिकुल पुंगव, तीर्थंकर से कथित महान् ।
ज्ञानाचार त्रिधा मैं प्रणमूं, कर्म नाश हेतू सुखदान।।२।।
शंका कांक्षा मूढ़दृष्टि से, रहित सदा वात्सल्य सहित।
विचिकित्सा से दूर धर्म के, वृद्धिंगत में तत्पर नित।।
जिन शासन उद्दीपन हित, पथभ्रष्टों को करना स्थिर।
आदर से शिर नत वंदूं, अष्टांग दर्शनाचार प्रवर।।३।।
अनशन अवमोदर्य वृत्ति, परिसंख्या कायक्लेश सुतप।
इन्द्रिय हस्ती को मद कारक, विविध रसों का त्याग सुतप।।

शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद्भ्रष्टस्य संस्थापनम् ।
वंदे दर्शनगोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ।।३।।
एकान्ते शयनोपवेशनकृतिः संतापनं तानवम् ।
संख्यावृत्तिनिबन्धनामनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम् ।।
त्यागं चेन्द्रियदन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्।
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं तपः।।४।।
स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनम् ।
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ।।
कायोत्सर्जनसत्क्रिया विनय इत्येवं तपः षड्विधं।
वंदेऽभ्यंतरमन्तरंगबलवद्विद्वेषिविध्वंसनम् ।।५।।
सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधतः श्रद्धानमर्हन्मते।
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा लघ्वी भवोदन्वतो।
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं वंदे सतामर्चितम् ।।६।।
तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः।
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि।।

नित एकांत शयन उपवेशन, ये छह बाह्य कहे हैं तप।
शिवगति प्राप्ति के उपाय में, मैं इनकी स्तुति करूं सतत।।४।।

क्रिया व्रतों में दोष लगे तब, प्रायश्चित स्वाध्याय महान् ।
बाल वृद्ध रोगी यति गुरु की वैयावृत्ति नित्य शुचि ध्यान।।
कायोत्सर्ग विनय तप षट् विधि, अंतरंग ये कहे प्रधान।
अंतरंग रागादि दोष विध्वंसक इनको नमूं सुजान।।५।।

अर्हत मत के श्रद्धानी जो, सम्यग्ज्ञान चक्षु धारी।
तप में शक्ति नहीं छिपाते, करें प्रयत्न सदा भारी।।
उनकी चर्या छिद्र रहित, नौका सम भवदधि तरणी है।
ऐसा वीर्याचार नमूं मैं, गुणमय सज्जन अर्चित है।।६।।

मन वच काय निमित्तक उत्तम, तीन गुप्ति भव दुःख वारक।
ईर्या समिति आदि पंच हैं, पंच महाव्रत भी चारित।।

चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीरं नमामो वयम् ।।७।।
आचारं सहपंचभेदमुदितं तीर्थं परं मंगलं।
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्रमहतो वंदे समग्रान्यतीन् ।।
आत्माधीनसुखोदयामनुपमां लक्ष्मीमविध्वंसिनी-
मिच्छन्केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्वलाम् ।।८।।
अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यहं चान्यथा।
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति।।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतं।
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं भवतु मे स्वं निंदतो निंदितम्।।९।।
संसारव्यसनाहतिप्रचलिता नित्योदयप्रार्थिनः।
प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतयः शांतैनसः प्राणिनः।।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपानमुच्चैस्तरा-
मारोहन्तु चारित्रमुत्तममिदं जैनेन्द्रमोजस्विनः।।१०।।

वृषभ वीर के सिवा त्रयोदश, चरित अन्य ने नहीं कहा।
परमेष्ठी जिनपती वीर को, सच्चरित्र को नमूं सदा।।७।।

पंचाचार भवोदधि तारक, तीर्थ महा मंगल उसको।
वंदू चारित युत सब यतिपति, निर्ग्रंथों को भी नति हो।।
आत्माधीन सुखोदय वाली, लक्ष्मी अविनाशी अनुपम।
केवलदर्शन ज्ञान प्रकाशी, उज्जवल उसको इच्छुक हम।।८।।

यदि आगम प्रतिकूल चरित को, मैंने किया कराया है।
उससे अर्जित पाप नाश हों, चारित तप की महिमा से।।
इस चारित तप से ये अद्भुत, सात ऋद्धि निधि भी होवें।
स्व की निंदा करते मेरे, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।।९।।

भव दुःख से भयभीत सदोदय, सुख के इच्छुक जो प्राणी।
मुक्ति के हैं निकट सुमतियुत, पाप शांतयुत ओजस्वी।।
मोक्षमहल की सीढ़ी सम यह, चारित उत्तम अतुल विशाल।
वे इस पर चढ़ मोक्षमहल में, पहुँचे रहें अनन्तों काल।।१०।।

_अंचलिका_ —इच्छामि भन्ते! चारित्तभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। सम्मण्णाणुज्जोयस्स सम्मत्ताहिट्ठिस्स सव्वपहाणस्स णिव्वाणमग्गस्स कम्मणिज्जरफलस्स खमाहारस्स पंचमहव्वयसंपुण्णस्स तिगुत्तिगुत्तस्स पंचसमिदिजुत्तस्स णाणज्झाण-साहणस्स समयाइवपवेसयस्स सम्मचारित्तस्स, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वन्दामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

_चारित्रालोचना_ —इच्छामि भंते! अट्ठमियम्मि आलोचेउं अट्ठण्हं दिवसाणं अट्ठण्हं राईणं अब्भंतरादो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

तत्थ णाणायारो, काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे, तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-तदुभये चेदि णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खरहीणं

_अंचलिका_

_दोहा-_ भगवन् ! चारित भक्ति अरु, कायोत्सर्ग महान् ।
कर उसकी आलोचना, करना चहूँ प्रधान।।१।।
सम्यग्ज्ञान युक्त सम्यक् से, सहित सभी में श्रेष्ठ प्रधान।
मोक्ष मार्गमय कर्म निर्जरा, के फल रूप क्षमा आधार।।
पंच महाव्रत संयुत पंच, समिति अरु तीन गुप्ति से युक्त।
ज्ञान ध्यान के साधक समता से संयुत उत्तम चारित।।२।।
उस चरित्र को नितप्रति अर्चूं, पूजूं वंदूँ नमूं महान।
शुद्ध भाव से भक्ति करके, पाऊँ पंचम चरित प्रधान।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिन गुण संपति होवे।।३।।

_शंभु छंद-_ हे भगवन्! मैं अष्टमी दिवस का चाहूं आलोचन करना।
आठ दिवस औ आठ रात्री के भीतर हुए दोष हरना।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व वीर्याचार तपाचारा।
चारित्राचार पांच ये हैं आचार मोक्ष के आधारा।।
इनमें है ज्ञानाचार प्रथम, जो आठ भेद शुद्धीयुत है।
वह काल विनय उपधान[1] तथा बहुमान[2] अनिह्नव व्यंजन है।।

---

१. नियम विशेष करके स्वाध्याय करना। २. गंध पुष्पों से द्रव्य पूजा और सिद्ध श्रुत आचार्य भक्ति करके पढ़ना भाव पूजा है। इन पूजा से युक्त होकर पढ़ना।

वा, सरहीणं वा, पदहीणं वा, विंजणहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु वा, थुईसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्दारेसु वा, अकाले सज्झाओ कओ वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा परिहाविदो अच्छाकारिदं, मिच्छा मेलिदं, आमेलिदं, वामेलिदं, अण्णहादिण्णं, अण्णहा पडिच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।

दंसणायारो अट्ठविहो, णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा[1] अमूढदिट्ठी य, उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल[2] पहावणा चेदि। अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए कंखाए विदिगिंछाए[3] अण्णदिट्ठीपसंसणदाए परपाखण्ड-पसंसणदाए अणायदणसेवणदाए अवच्छल्लदाए अप्पहावणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।२।।

तवायारो वारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं[4] वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्त-

---

पुनि अर्थ उभय[5] इन शुद्धि से स्तव[6] स्तुति[7] अर्थाख्याना[8]।।
अनुयोग[9] और अनुयोगद्वार[10] में किया यदी अक्षर हीना।।
या पद से कम या व्यंजन कम या अर्थहीन या ग्रंथ कमी।
यदि अकाल में स्वाध्याय किया या करवाया या अनुमति दी।
या काल में नहिं स्वाध्याय किया या झटिति पढ़ा मिथ्या मिश्रण।
विपरीत अर्थकर पढ़ा अन्यथा कहा अन्यथा किया ग्रहण।।
छह आवश्यक में हानी की इस ज्ञानाचार में दोष किया।
पणविध स्वाध्याय की सिद्धी हो, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।१।।
दर्शनाचार आठविध है नि:शंकित नि:कांक्षित गुण से।
अरु निर्विचिकित्सा अमूढ़दृक् उपगूहन स्थितिकरण गुण से।।
वात्सल्य प्रभावना इन अठ में शंका कांक्षा व जुगुप्सा की।
मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा की अरु परपाखंड प्रशंसा की।।
अनायतन की सेवा की वात्सल प्रभावना नहीं किया।
इन दोषों से जो हानी की वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।२।।
छह अभ्यंतर छह बाहिर से बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।

---

१. णिव्विदिगिंछो इति पाठ:। २. वच्छल्लं इति पाठ:। ३. परपासंड इति पाठ:। ४. ओमोदरियं इति पाठ: ग्रंथत्रयीषु। ५. व्यंजन और अर्थ की शुद्धि। ६. अनेक तीर्थंकरों के गुणों का गान स्तव है। ७. एक तीर्थंकर के गुणों का वर्णन स्तुति है। ८. चरित्रपुराण ग्रंथ। ९. प्रथमानुयोग, करणानुयोग आदि। १०. कृतिवेदना आदि चौबीस हैं।

सयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण जहुत्तमाणेण बलेण वीरिएण परिक्कमेण[1] णिगूहियं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।४।।

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वयाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं। से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फ-

तनुपरित्याग-तनुक्लेश[2] विविक्त शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत स्वाध्याय ध्यान[3] व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।३।।
है वीर्याचार पांचविध से वर वीर्य पराक्रम से जानो।
आगमवर्णित[4] तप परीमाण, बल[5] वीर्य[6]-सहज शक्ती मानो।।
परक्रम[7]-परिपाटी से मैंने पण वीर्याचार में हानी की।
निज शक्ति छिपायी तपश्चरण करने में तप में हानी की।
तप क्रिया न की परीषह आदि से पीड़ित हो यदि छोड़ दिया।
इस वीर्याचार में दोष किया वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।४।।
हे भगवन् ! इच्छा करता हूँ, चारित्राचार त्रयोदशविध।
वह पांच महाव्रत पांच समिति, अरु तीन गुप्तिमय जिनभाषित।।
इनमें हिंसा का त्याग महाव्रत प्रथम कहा है जिनवर ने।
भूकायिक जीव असंख्यातासंख्यात व जलकायिक इतने[8]।।
अग्नीकायिक भि असंख्यातासंख्यात पवनकायिक इतने[9]।
जो वनस्पतिकायिक प्राणी, वे सभी अनंतानंत भणें।।

१. परक्कमेण इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। २. कायक्लेश को पांचवां माना है। ३. यहाँ ध्यान को पाँचवां माना है। ४. यथोक्तमान-आगम में कही गई विधि से कवलचांद्रायण आदि तप करना। ५. काल, क्षेत्र और आहार का बल। ६. वीर्य-सहज अपनी सामर्थ्य। ७. परक्रम-आगम में प्रतिपादित क्रम से तप करना, जैसे पहले मूलगुणों का पालन कर उत्तर गुणों को पालना। ८. जलकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। ९. वायुकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं।

दिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तस्स उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खिकिमिशंख-खुल्लय-वराडय-अक्ख[1]-रिट्ठ-गंडवाल-संबुक्क[2]-सिप्पि-पुलविकाइया[3] (पुलविआइया) तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथुद्देहियविंछिय-गोभिंद-गोजूव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमंसय (मसय)-मक्खिय-पयंग-कीड-भमर-महुयरि-गोमक्खि-याइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो

ये हरित बीज अंकुर स्वरूप, नानाविध छिन्न-भिन्न भी हों।
इन सबको प्राणों से मारा, संताप दिया पीड़ा दी हो।।
उपघात किया मनवचतन से, या अन्यों से करवाया हो।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।
दो इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुक्षि कृमि[4] शंख कहे।
क्षुद्रक कौड़ी व अक्ष अरिष्टय[5], गंडबाल लघु शंख कहे।।
जो सीप जोंक आदिक इनको, मारा या त्रास दिया भी हो।
पीड़ा दी या उपघात किया, या पर से भी करवाया हो।।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।
त्रय इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुंथु[6] देहिक बिच्छू।
जूं गोजों खटमल इंद्रगोप, चिउंटी आदिक बहुविध जंतू।।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।
चउ इंद्रिय जीव असंख्यातासंख्यात उन्हीं में डांस मशक।
बहु कीट पतंगे भ्रमर मधूमक्खी गोमक्खी आदि विविध।।

१. अक्खमहान्तो इति पाठः ग्रन्थत्रयीषु। २. संबूय इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। ३. पुलविआइया-जलौकाः, आदिशब्देनैवमादिकाः ग्रन्थत्रयीषु। ४. लट, घाव आदि के जीव। ५. बच्चों के शरीर में पैदा हो जाते हैं ऐसे क्षुद्र जीव। ६. सूक्ष्म जीव।

कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिदिया जीवा असंखेज्जासंखेजा, अंडाइया पोदाइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदिजोणि-पमुह-सदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।

अहावरे[1] दुव्वे[2] महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा राएण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा (पदोसेण वा) पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केणवि कारणेण जादेण वा सव्वो मुसावादो भासिओ भासाविओ भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।२।।

अहावरे तव्वे[3] महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमणं, से गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मंडबे वा मंडले वा पट्टणे वा दोणमुहे वा घोसे वा आसमे

इनको मारा परिताप विराधन, या उपघात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।
पंचेंद्रिय जीव असंख्यातासंख्यात इन्हों में अंडज हैं।
पोतज व जरायुज रसज पसीनज सम्मूर्छन उद्भेदिम हैं।।
उपपाद जन्मयुत भी चौरासी, लाख योनि वालों में जो।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया जो हो।।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।
अब अन्य द्वितीय महाव्रत में विरती है झूठ बोलने से।
इसमें जो क्रोध मान माया या लोभ राग या द्वेषों से।।
या मोह हास्य या भय प्रदोष या प्रमाद प्रेम या गृद्धी[4] से।
लज्जा गारव[5] व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से।।
जो कुछ भी झूठ वचन बोले या पर से भी बुलवाया हो।
या अन्यों को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।
अब अन्य तृतीय महाव्रत में बिन दी वस्तू से विरती है।
ग्राम नगर खेट[6] कर्वट[7] मटंब[8], मण्डल पत्तन[9] या द्रोणमुखे[10]।।

१. प्रतिक्रमणग्रंथत्रयीषु पाठांतरं पृ. १२६, १२७ देखें। २. ''दोच्चे'' इति पाठांतरं प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयीषु। ३. ''तच्चे'' इति पाठ ग्रन्थत्रयीषु। ४. पिपासा-विषयों की गृद्धी। ५. महत्त्वाकांक्षा। ६. नदी और पर्वत से वेष्टित खेट है। ७. पर्वत से वेष्टित। ८. गांव से युक्त। ९. शहर को पत्तन कहते हैं। १०. समुद्र के किनारे बसा द्रोणामुख है।

वा सहाए वा संवाहे वा सण्णिवेसे वा तिणं[1] वा कट्ठं वा वियडिं वा मणिं वा एवमाइयं अदत्तं गिण्हियं[2] गेण्हावियं गेण्हिज्जंतं समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

अहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, से *देविएसु वा माणुसिएसु वा तेरिच्छिएसु[3] वा अचेयणिएसु वा मणुणामणुणेसु[4] रूवेसु मणुणामणुणेसु सद्देसु मणुणामणुणेसु गंधेसु मणुणामणुणेसु रसेसु मणुणामणुणेसु फासेसु चक्खिंदियपरिणामे सोदिंदियपरिणामे घाणिंदियपरिणामे जिब्भिंदिय-परिणामे फासिंदियपरिणामे णोइंदियपरिणामे अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण णवविहं बंभचरियं[5] ण रक्खियं ण रक्खावियं ण रक्खिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।४।।

गोकुल आश्रम व सभा संवाहन[6] राजधानी[7] इन आदी में।
तृण लकड़ी विकृती[8] मणि आदी कुछ भी बिन दिये ग्रहा मैंने।।
या पर से ग्रहण कराया हो अनुमति दी लेने वालों को।
जो दोष हुए हों इस व्रत में वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।
अब अन्य चतुर्थ महाव्रत में मैथुन सेवन से विरती है।
इसमें देवी के नारी के तिर्यंचि अचेतन पुतली के।।
(आर्यिकाओं को उपरोक्त पंक्ति की जगह निम्न पंक्ति बोलना चाहिए)
(इसमें देवों के मानव के तिर्यंच अचेतन चित्रों के।।)
सुन्दर व असुन्दर रूपों में प्रिय अप्रिय शब्द व गंधों में।
चक्षूइंद्रिय के विषयों में कर्णेन्द्रिय के परिणामों में।।
घ्राणेंद्रिय के विषयों में रसनेंद्रिय की अभिलाषा में।।
स्पर्शेन्द्रिय के विषयों में या मन के अनियत विषयों में।
मन वच तन को वश में नहिं कर इंद्रिय को वश नहिं करके मैं।।
इन नवविध ब्रह्मचर्य की रक्षा नहिं की नहीं करायी हो।
नहिं रक्षक को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।।

१. ''तणं'' इति पाठः ग्रन्थत्रयीषु। २. 'गेण्हियं' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। * देवेसु वा माणुसेसु तेरिच्छेसु वा अचेयणेसु वा, आर्यिकाओं को ऐसा बोलना चाहिए। ३. 'तिरिक्खिएसु' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। ४. 'मणुण्णामणुण्णेसु' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। ५. नवविधं ब्रह्मचर्यम्-कामिनीस्थलवासः, प्रेमरुचिनिरीक्षणं, प्रेमालापः, पूर्वरतानुस्मरणं, गरिष्ठाहारः, शृङ्गारःव, बल्लभापर्यङ्कशयनं, कामकथा, परिपूर्णोदरभोजनश्चेति। ६. पर्वत पर बसा गांव संवाहन है। ७. सन्निवेश-राजधानी या गोष्ठीस्थल। ८. राख आदि वस्तुएं।

अहावरे पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, सो वि परिग्गहो दुविहो, अब्भंतरो बाहिरो चेदि तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेयणीयं मोहणीयं आउग्गं णामं गोदं अंतरायं चेदि अट्ठविहो, तत्थ बाहिरो परिग्गहो उवयरणभंड-फलह-पीढ-कमंडलु-संथार-सेज्ज-उवसेज्ज-भत्त-पाणादिभेएण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरयं बद्धं बद्धावियं बद्धज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।५।।

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं, से असणं पाणं खाइयं साइयं चेदि चउव्विहो आहारो, से तित्तो वा कडुओ वा कसाइलो वा अमिलो[१] वा महुरो वा लवणो वा दुच्चिंतिओ दुब्भासिओ दुप्परिणामिओ दुस्सिमिणिओ रत्तीए भुत्तो भुंजवियो भुज्जिज्जंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।छ।।

अब अन्य पांचवे महाव्रत में, परिग्रह रखने से विरती है।
वह परिग्रह अभ्यंतर व बाह्य से द्विविध तथा अभ्यंतर में।।
वो ज्ञानावरणी दर्शनावरण वेदनीय मोहनी आयु कहे।
पुनि नाम गोत्र अरु अन्तराय ये अठविध अंतर परिग्रह हैं।।
बाहिर परिग्रह उपकरण शास्त्र पिच्छी व भांड[२] फलक आसन।
कमंडलु संस्तर काठ[३] व तृण वसती[४] व देवकुल[५] आदि ग्रहण।।
भोजनपानादिक भेदों से बहुविध परिग्रह के लेने में।
जो अठविध कर्मों को मैंने बांधा है अज्ञानादी से।
पर को भी बंध कराया हो या करते को अनुमति दी हो।
जो परिग्रह त्याग में दोष किये, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।५।।

अब अन्य छठे अणुव्रत में भी रात्रि भोजन से विरती है।
इसमें भोजन पानक व खाद्य अरु स्वाद्य चतुर्विध भोजन है।।
इसमें जो तीखा कटु कषायला खट्टा मीठा लवणमयी।
जो कुछ अयोग्य वस्तू खाने का चिंतन किया व प्रेरणा दी।।
अथवा अयोग्य आहार किया या स्वप्न मे मैंने खाया हो।
या पर को खिलाया अनुमति दी वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।छ।।

---

१. 'कषाओ वा अंबिलो वा' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। २. औषधि व तेल आदि के बर्तन। ३. बिना पाये का फड़ पाटे आदि। ४. शय्या-वसति। ५. उपशय्या-देवकुल आदि स्थान।

पंचसमिदीओ ईरियासमिदी भासासमिदी एसणासमिदी आदाण-णिक्खेवणसमिदी उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणासमिदी चेदि। तत्थ ईरियासमिदी पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिम-चउदिसि-विदिसासु विहर-माणेण जुगंतर-दिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा डवडव-चरियाए पमाददोसेण पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।६।।

तत्थ भासासमिदी कक्कसा कडुया (कडुआ) परुसा णिट्ठुरा परकोहिणी[१] मज्झंकिसा[२] अइमाणिणी अणयंकरा छेयंकरा[३] भूयाण वहंकरा[४] चेदि दसविहा भासा भासिया भासाविया भासिज्जंतो पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।७।।

पण समिति में ईर्यासमिति व भाषासमिति एषणासमिती है।
आदान निक्षेपण समिति अरू मलमूत्रादिविसर्जन समिती है।।
इसमें ईर्यासमिती पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम चउदिश में।
विदिशा में भी चलना चाहिए चउ हाथ देखकर आगे में।।
फिर भी प्रमाद से शीघ्र चला या इधर-उधर मुख कर करके।
जो प्राणभूत अरु जीव सत्त्व का घात किया नहिं लख करके।।
या पर से घात कराया हो या करते को अनुमति दी हो।
ईर्यासमिती में दोषों का वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।६।।

भाषासमिती में कर्कश[५] कडुवे मर्मभेदि[६] निष्ठुर वच हैं।
परक्रोधजनक हड्डी में घुसते मध्यंकृश[७] अतिमदकर[८] हैं।।
विद्वेषकरी अनयंकर[९] छेदंकर निमूलनाशी वच हैं।
प्राणी के वधकर ये दशविध की भाषा जिनमतभाषित हैं।।
ऐसी भाषा बोली मैंने या पर से भी बुलवायी हो।
बोलते अन्य को अनुमति दी वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।७।।

---

१. ''परकोविणी'' इति पाठः। २. 'मज्झकिसा' इति पाठः। ३. 'छेयकंरी' इति पाठः। ४. 'वहंकरी' इति पाठः। ५. संताप जनक वचन। ६. परुषा-मर्मभेदी। ७. हड्डी में भी छेद कर दे ऐसी भाषा मध्यकृशा है। ८. अति घमंड सूचक भाषा। ९. अनयंकरा-शीलव्रतों का खंडन करने वाली या परस्पर में विद्वेष कराने वाली।

तत्थ एसणासमिदी आहाकम्मेण वा पच्छाकम्मेण वा पुराकम्मेण वा उद्दिट्ठयडेण वा णिद्दिट्ठयडेण वा कीडयडेण वा साइया रसाइया सइंगाला सधूमिया अइगिद्धीए अग्गिव छण्हं जीवणिकायाणं विराहणं काऊण अपरिसुद्धं[१] भिक्खं अण्णं पाणं आहारादियं आहारियं आहारावियं आहारिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।८।।

तत्थ आदाणणिक्खेवणसमिदी चक्कलं वा फलहं वा पोथयं वा कमंडलुं वा वियडिं वा मणिं वा एवमाइयं उवयरणं अप्पडिलेहिऊण गेण्हंतेण वा ठवंतेण वा पाणभूद-जीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।९।।

तत्थ उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणिया समिदी रत्तीए वा वियाले वा अचक्खुविसए अवत्थंडिले अब्भोवयासे[२] सणिद्धे सबीए

एषणसमिती में अध:कर्म[३] है महादोष उसको करके।
पश्चात्[४] कर्म या पुराकर्म[५] उद्दिष्ट[६] निर्दिष्ट[७] क्रीत[८] युत से।।
स्वादिष्ट रसीले आसक्तिक इंगाल[९] व धूमदोष[१०] करके।
अतिगृद्धी से ही अग्नीसम छह जीवकाय बाधा करके।।
नहिं योग्य[११] अन्नपान भिक्षा आहार लिया या लिवाया हो।
लेते को भी अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।८।।
आदान निक्षेपण समिती में चक्कल[१२] पाटा या ग्रंथों को।
या कमंडलु विकृति या मणि इत्यादिक बहु उपकरणों को।।
पिच्छी से शोधन नहिं करके धरते या उठाकर लेने से।
जो प्राण भूत अरु जीव सत्त्व का घात किया हो प्रमाद से।।
पर से उपघात कराया हो या करने की अनुमति दी हो।
इस समिती में जो दोष हुआ, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।९।।
उत्सर्ग समिति मल मूत्र थूक कफ विकृति विसर्जन करने में।
रात्री में या संध्या[१३] में नयन अगोचर अप्रासुक[१४] थल में।।

१. 'अपरिसुद्धा' इति पाठ: ग्रंथत्रयीषु। २. 'अब्भावयासे' इति पाठ:। ३. षट्जीवकाय के घात आदि आरंभ को स्वयं करके भोजन बनाना अध:कर्म है। ४. मुनि के आहार कर जाने के बाद भोजन बनाना। ५. मुनि के आने पर भोजन बनाना। ६. मुनि या देवता या पाखंडी आदि का उद्देश्य करके भोजन बनाना। ७. आपके लिए यह वस्तु बनायी है ऐसा कहना। ८. मुनि के घर में आने पर अन्य जगह में भोजन खरीद कर लाना। ९. अत्यासक्ति से आहार लेना इंगाल दोष है। १०. दाता या भोज्य वस्तु की निन्दा करते हुए आहार लेना। ११. अपरिशुद्ध-अयोग्य आहार। १२. इसका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है। १३. वियाले-विकाल, संध्या आदि। १४. अवत्थंडिल-अपस्थंडित-अप्रासुक भूमि।

सहरिए एवमाइएसु अप्पासुगट्ठाणेसु पइट्ठावंतेण पाणभूद-जीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१०।।

तिण्णि गुत्तीओ, मणगुत्तीओ वचिगुत्तीओ कायगुत्तीओ[१] चेदि, तत्थ मणगुत्ती अट्टे झाणे रुद्दे झाणे इहलोयसण्णाए परलोयसण्णाए आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए एवमाइयासु जा मणगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया व रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।११।।

तत्थ वचिगुत्ती इत्थिकहाए अत्थकहाए भत्तकहाए रायकहाए चोरकहाए वेरकहाए परपासंडकहाए एवमाइयासु जा वचिगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१२।।

तत्थ कायगुत्ती चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा कट्ठकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु

स्थानखुला गीली भू हरितघासयुत बीज सहित थल में।
इत्यादि अप्रासुक थल में जो मल आदि त्याग के करने में।।
जो प्राण भूत अरु जीव सत्त्व का घात किया या कराया हो।
करते को भी अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१०।।

मनगुप्ति वचनगुप्ती व कायगुप्ती त्रयगुप्ती हैं इनमें।
जो आर्तध्यान अरु रौद्र ध्यान इह भव अरु परभव संज्ञा में।।
आहार व भय मैथुन परिग्रह, इन चारों ही संज्ञाओं से।
इत्यादि अशुभ संकल्पों से मन को न नियंत्रित रखने से।।
नहिं रखी सुरक्षित मनगुप्ती नहिं अन्यों से रखवायी हो।
नहिं रखते को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।११।।

वचगुप्ती में जो स्त्रीकथा धन कथा व भोजन राजकथा।
अरु चोर वैर की कथा व परपाखंड कथा इत्यादि कथा।।
इनको कर मैं वचगुप्ती की रक्षा नहिं की न करायी हो।
नहिं करते को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१२।।

जो कायगुप्ति में चित्रकर्म[२] या पुस्तकर्म[३] या काठकर्म[४]।
या लेप्यकर्म इत्यादि विविध स्त्रीरूपादिक बिन चेतन।।

१. 'मणगुत्ति वचिगुत्ति कायगुत्ति' इति पाठ:। २. चित्र में स्त्री आदि के रूप हों। ३. घास फूस मिट्टी आदि से बनी हुई झांकियां। ४. लकड़ी के बने हुए स्त्री आदि रूप।

वा एवमाइयासु जा कायगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१३।।

णव बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, दोसु, अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामेसु, मिच्छाणाण[१]-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु, दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारस-सीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुण-सयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अट्ठमियम्मि अइक्कमो वदिक्कम्मो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि

इनमें नहिं कायगुप्ति रक्खी पर से रक्षा न करायी हो।
नहिं रक्षण करते को अनुमति दी वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१३।।

नव[२] ब्रह्मचर्य गुप्ती चउ संज्ञा चार हि आस्रव[३] कारण हैं।
दो आर्तरौद्र संक्लेश भाव त्रय अप्रशस्तसंक्लेश[४] कहें।।

मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्या चरित्र चउ उपसर्गा।
चारित्र पाँच छह जीवकाय छह आवश्यक किरिया उक्ता।।

भय सात आठ शुद्धी दश विध हैं श्रमण धर्म दश धर्म ध्यान।
दश मुंडन बारह संयम बाइस परिषह भावना बीस[५] पांच।।

पच्चीस क्रिया अठरह हजार हैं शील व गुण चौरासि लाख।
अठबीस मूलगुण बहु उत्तरगुण इन सबमें कीना विघात।।

इन आठ दिनों में अष्टमि में अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अरू।
जो अनाचार आभोग अनाभोग उन सबका प्रतिक्रमण करूं।।

प्रतिक्रमण सुकरते हुए मेरा सम्यक्त्वमरण व समाधिमरण।
हो पंडितमरण व वीरमरण जिससे नहिं होवे पुनः मरण।।

---

१. 'मिच्छणाण' इत्यादि पाठः। २. मनुष्यिनी देवी और तिर्यंचनी को मन वचन काय से गुणा करने से नव भेद हुए या सामान्य स्त्री को मन वचन काय से व कृत कारित अनुमोदना से गुणा करने पर नव भेद हुए। ३. प्रत्यय-आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार हैं। ४. अप्रशस्त संक्लेश परिणाम-मिथ्या, माया और निदान ये तीन हैं। ५. पच्चीस।

मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ती होउ मज्झं।

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां......शांतिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कृतिकर्मपूर्वक ९जाप्य करके शांतिभक्ति पढ़ें।)

शांतिभक्ति

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पादद्वयं ते प्रजाः।
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः, संसारघोरार्णवः।।
अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकर-व्याकीर्णभूमण्डलो।
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिल-च्छायानुरागं रविः।।१।।

क्रुद्धाशीर्विषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो।
विद्याभेषजमन्त्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा।।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुग-स्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्।
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा, शाम्यन्त्यहो! विस्मयः।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय होवे मम बोधिलाभ होवे।।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण मम जिनगुणसंपति होवे।।

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां.......शांतिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कृतिकर्मपूर्वक ९ जाप्य करके शांतिभक्ति पढ़ें।)

शांतिभक्ति

भगवन् ! सब जन तव पद युग की, शरण प्रेम से नहिं आते।
उसमें हेतु विविध दुःखों से, भरित घोर भववारिधि हैं।।
अतिस्फुरित उग्र किरणों से, व्याप्त किया भूमण्डल है।
ग्रीषम ऋतु रवि राग कराता, इंदुकिरण छाया, जल में।।१।।

कुद्धसर्प आशीविष डसने, से विषाग्नियुत मानव जो।
विद्या औषध मंत्रित जल, हवनादिक से विष शांति हो।।
वैसे तव चरणाम्बुज युग-स्तोत्र पढ़ें जो मनुज अहो।
तनु नाशक सब विघ्न शीघ्र, अति शांत हुए आश्चर्य अहो।।२।।

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते।
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्, पीडाः प्रयान्ति क्षयं।।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता।
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा, शीघ्रं यथा शर्वरी।।३।।

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मकान् ।
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो, जीवस्य संसारिणः।।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना, कालोग्रदावानला-
न्नस्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम्।।४।।

लोकालोकनिरन्तरप्रविततज्ञानैकमूर्ते! विभो!।
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रय! ।।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः।
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः।।५।।

दिव्यस्त्रीनयनाभिराम! विपुलश्रीमेरुचूडामणे!
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामंडल!।।

तपे श्रेष्ठ कनकाचल की, शोभा से अधिक कांतियुत देव।
तव पद प्रणमन करते जो, पीड़ा उनकी क्षय हो स्वयमेव।।
उदित रवी की स्फुट किरणों से, ताड़ित हो झट निकल भगे।
जैसे नाना प्राणी लोचन-द्युतिहर रात्रि शीघ्र भगे।।३।।

त्रिभुवन जन सब जीत विजयि बन, अतिरौद्रात्मक मृत्युराज।
भव भव में संसारी जन के, सन्मुख धावे अति विकराल।।
किस विध कौन बचे जन इससे, काल उग्र दावानल से।
यदि तव पाद कमल की स्तुति-नदी बुझावे नहीं उसे।।४।।

लोकालोक निरन्तर व्यापी, ज्ञानमूर्तिमय शान्ति विभो।
नानारत्न जटित दण्डेयुत, रुचिर श्वेत छत्रत्रय हैं।।
तव चरणाम्बुज पूतगीत रव, से झट रोग पलायित हैं।
जैसे सिंह भयंकर गर्जन, सुन वन हस्ती भगते हैं।।५।।

दिव्यस्त्रीदृगसुन्दर विपुला, श्रीमेरु के चूड़ामणि।
तव भामण्डल बाल दिवाकर, द्युतिहर सबको इष्टअति।।

अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं, त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते।।६।।
यावन्नोदयते प्रभापरिकरः, श्रीभास्करो भासयं-
स्तावद्-धारयतीह पंकजवनं, निद्रातिभारश्रमम् ।।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्।।७।।
शांतिं शान्तिजिनेन्द्र! शांतमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शांत्यर्थिनः प्राणिनः।।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः।।८।।
शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तमम्बुजनेत्रम्।।९।।
पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्र-नरेन्द्रगणैश्च।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि।।१०।।

अव्याबाध अचिंत्य अतुल, अनुपम शाश्वत जो सौख्य महान्।
तव चरणारविंदयुगलस्तुति से ही हो वह प्राप्त निधान।।६।।

किरण प्रभायुत भास्कर भासित, करता उदित न हो जब तक।
पंकजवन नहिं खिलते, निद्राभार धारते हैं तब तक।।
भगवन् ! तव चरणद्वय का हो, नहीं प्रसादोदय जब तक।
सभी जीवगण प्रायः करके, महत् पाप धारें तब तक।।७।।

शांति जिनेश्वर शांतचित्त से, शांत्यर्थी बहु प्राणीगण।
तव पादाम्बुज का आश्रय ले, शांत हुए हैं पृथिवी पर।।
तव पदयुग की शांत्यष्टकयुत, संस्तुति करते भक्ति से।
मुझ भाक्तिक पर दृष्टि प्रसन्न, करो भगवन् ! करुणा करके।।८।।

शशि सम निर्मल वक्त्र शांतिजिन, शीलगुण व्रत संयम पात्र।
नमूं जिनोत्तम अंबुजदृग को, अष्टशतार्चित लक्षण गात्र।।९।।

चक्रधरों में पंचमचक्री, इन्द्र नरेन्द्र वृंद पूजित।
गण की शांति चहूँ षोडश-तीर्थंकर नमूं शांतिकर नित।।१०।।

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे, यस्य विभाति च मंडलतेजः।।११।।

तं जगदर्चितशांतिजिनेन्द्रं, शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं, मह्यमरं पठते परमां च।।१२।।

येभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपाः।
तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु।।१३।।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।१४।।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं।।
दुर्भिक्षं चोरिमारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्वसौख्यप्रदायि।।१५।।

तरुअशोक सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि दिव्यध्वनि सिंहासन।
चमर छत्र भामण्डल ये अठ, प्रातिहार्य प्रभु के मनहर।।११।।
उन भुवनार्चित शांतिकरं, शिर से प्रणमूँ शांति प्रभु को।
शांति करो सब गण को मुझको, पढ़ने वालों को भी हो।।१२।।
मुकुटहारकुंडल रत्नों युत, इन्द्रगणों से जो अर्चित।
इन्द्रादिक से सुरगण से भी, पादपद्म जिनके संस्तुत।।
प्रवरवंश में जन्मे जग के, दीपक वे जिन तीर्थंकर।
मुझको सतत शांतिकर होवें, वे तीर्थेश्वर शांतिकर।।१३।।
संपूजक प्रतिपालक जन, यतिवर सामान्य तपोधन को।
देश राष्ट्र पुर नृप के हेतू, हे भगवन् ! तुम शांति करो।।१४।।
सभी प्रजा में क्षेम नृपति, धार्मिक बलवान् जगत में हो।
समय-समय पर मेघवृष्टि हो, आधि व्याधि का भी क्षय हो।।
चोरि मारि दुर्भिक्ष न क्षण भी, जग में जन पीड़ाकर हो।
नित ही सर्व सौख्यप्रद जिनवर, धर्मचक्र जयशील रहो।।१५।।

क्षेपक श्लोकौ

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः, संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण, रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे।।१६।।
प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शांतिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।।१७।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! संतिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसातिसयविशेषसंजुत्ताणं, बत्तीसदेवेंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं, बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

—क्षेपक श्लोक—

वे शुभद्रव्य क्षेत्र अरु काल, भाव वर्तें नित वृद्धि करें।
जिनके अनुग्रह सहित मुमुक्षु, रत्नत्रय को पूर्ण करें।।१६।।
घातिकर्म विध्वंसक जिनवर, केवलज्ञानमयी भास्कर।
करें जगत में शांति सदा, वृषभादि जिनेश्वर तीर्थंकर।।१७।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! श्री शांतिभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रुचि से।।
अष्टमहाप्रातिहार्य सहित जो, पंचमहाकल्याणक युत।
चौंतिस अतिशय विशेष युत, बत्तिस देवेन्द्र मुकुट चर्चित।।
हलधर वासुदेव प्रतिचक्री, ऋषि मुनि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुति के निलय वृषभ से, वीर प्रभू तक महापुरुष।।
मंगल महापुरुष तीर्थंकर, उन सबको शुभ भक्ति से।
नित्यकाल मैं अर्चूं, पूजूं, वंदू, नमूं महामुद से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां.......सिद्ध-श्रुत-सालोचना-चारित्र-शांति-भक्तीः कृत्वा समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करके समाधिभक्ति पढ़ें। कदाचित् समयाभाव में लघु समाधि भक्ति पढ़ लेवें।)

समाधि भक्तिः

स्वात्माभिमुखसंवित्तिलक्षणं श्रुतचक्षुषा।
पश्यन्पश्यामि देव त्वां, केवलज्ञानचक्षुषा।।१।।
शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ।।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यंतां मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः।।२।।
जैनमार्गरुचिरन्यमार्गनिर्वेगता जिनगुणस्तुतौ मतिः।
निष्कलंकविमलोक्तिभावनाः, सम्भवन्तु मम जन्मजन्मनि।।३।।

नमोऽस्तु अष्टमीपर्वक्रियायां......सिद्ध-श्रुत-सालोचना-चारित्र-शान्ति-भक्तिः कृत्वा समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करके समाधि भक्ति पढ़ें। कदाचित् समयाभाव में लघु समाधिभक्ति पढ़ लेवें।)

समाधिभक्ति

स्वात्मरूप के अभिमुख, संवेदन को श्रुतदृग् से लखकर।
भगवन् ! तुमको केवलज्ञान, चक्षु से देखूँ झट मनहर।।१।।
शास्त्रों का अभ्यास, जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्रजन के गुण गाऊँ, दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्म तत्त्व को नित भाऊं।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव भव में इन सबको पाऊँ।।२।।
जैनमार्ग में रुचि हो अन्य, मार्ग निर्वेग हो भव-भव में।
निष्कलंक शुचि विमल भाव हों, मति हो जिनगुण स्तुति में।।३।।

गुरुमूले यतिनिचिते, चैत्यसिद्धांतवार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि, सन्यसन समन्वितं मरणम्।।४।।
जन्मजन्मकृतं पापं, जन्मकोटिसमार्जितम् ।
जन्ममृत्युजरामूलं, हन्यते जिनवंदनात् ।।५।।
आबाल्याज्जिनदेवदेव! भवतः श्रीपादयोःसेवया।
सेवासक्तविनेयकल्पलतया कालोद्ययावद्गतः।।
त्वां तस्याः फलमर्थये, तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे।
त्वन्नामप्रतिबद्धवर्णपठने, कंठोस्त्वकुंठो मम।।६।।
तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।७।।
एकापि समर्थेयं, जिनभक्तिदुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः।।८।।
पंच अरिंजयणामे, पंचय मदिसायरे जिणे वंदे।
पंच जसोयरणामे, पंचय सीमंदरे वंदे[1]।।९।।

गुरुपदमूल में यतिगण हों, अरु चैत्यनिकट आगम उद्घोष।
होवे जन्म जन्म में मम, सन्यासमरण यह भाव जिनेश।।४।।
जन्म जन्म कृत पाप महत अरु, जन्म करोड़ों में अर्जित।
जन्म जरा मृत्यु के जड़ वे, जिन वंदन से होते नष्ट।।५।।
बचपन से अब तक जिनदेवदेव! तव पाद कमल युग की।
सेवा कल्पलता सम मैंने, की है भक्तिभाव धर ही।।
अब उसका फल माँगू भगवन् ! प्राण प्रयाण समय मेरे।
तव शुभ नाम मंत्र पढ़ने में, कंठ अकुंठित बना रहे।।६।।
तव चरणाम्बुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरणयुग में।
तावत् रहे जिनेश्वर! यावत्, मोक्षप्राप्ति नहिं हो जग में।।७।।
जिनभक्ती ही एक अकेली, दुर्गति वारण में समरथ।
जन का पुण्य पूर्णकर मुक्ति-श्री को देने में समरथ।।८।।
पंच अरिंजय नाम पंच-मतिसागर जिन को वंदूं मैं।
पंच यशोधर नमूं पंच-सीमंधर जिन को वंदूं मैं।।९।।

---

१. पंचसुअ दीवणामे पंचम्मिय सायरे जिणे वंदे। पंच जसोयरणामे पंचम्मिय मंदरे वंदे।। इति पाठांतरं।

रयणत्तयं च वंदे, चउवीसजिणे च सव्वदा वंदे।
पंचगुरूणां वंदे, चारणचरणं सदा वंदे।।१०।।

अर्हमित्यक्षरब्रह्म - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे।।११।।

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।१२।।

आकृष्टिं सुरसंपदां विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यतां।
उच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वैषमात्मैनसाम्।।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम्।
पायात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता।।१३।।

अनंतानन्तसंसार - संततिच्छेदकारणम् ।
जिनराजपदाम्भोज - स्मरणं शरणं मम।।१४।।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर!।।१५।।

रत्नत्रय को वंदूं नित, चउवीस जिनवर को वंदूं मैं।
पंचपरमगुरु को वंदूं, नित चारण चरण को वंदूं मैं।।१०।।
''अर्हं'' यह अक्षर है, ब्रह्मरूप परमेष्ठी का वाचक।
सिद्धचक्र का सही बीज है, उसको नमन करूँ मैं नित।।११।।
अष्टकर्म से रहित मोक्ष-लक्ष्मी के मंदिर सिद्ध समूह।
सम्यक्त्वादि गुणों से युत श्री-सिद्धचक्र को सदा नमूं।।१२।।
सुरसंपति आकर्षण करता, मुक्तिश्री को वशीकरण।
चतुर्गति विपदा उच्चाटन, आत्म-पाप में द्वेष करण।।
दुर्गति जाने वाले का, स्तंभन मोह का सम्मोहन।
पंचनमस्कृति अक्षरमय, आराधन देव! करो रक्षण।।१३।।
अहो अनंतानंत भवों की, संतति का छेदन कारण।
श्री जिनराज पदाम्बुज है, स्मरण करूँ मम वही शरण।।१४।।
अन्य प्रकार शरण नहिं जग में, तुम ही एक शरण मेरे।
अतः जिनेश्वर करुणा करके, रक्ष मेरी रक्षा करिये।।१५।।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।१६।।

जिने भक्ति-र्जिने भक्ति-र्जिने भक्ति-र्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे।।१७।।

याचेऽहं याचेऽहं जिन! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।
याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव।।१८।।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषो निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।१९।।

इच्छामि भंते! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं रयणत्तयसरूव-परमप्पज्झाणलक्खण समाहिभत्तीये णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

सिद्धवंदना कैसे करे?

''सिद्धभक्त्यैकया सिद्धप्रतिमायां क्रिया मता।''

त्रिभुवन में नहिं त्राता कोई, नहिं त्राता है नहिं त्राता।
वीतराग प्रभु छोड़ न कोई, हुआ न होता नहिं होगा।।१६।।
जिन में भक्ती सदा रहे दिन-दिन जिनभक्ती सदा रहे।
जिन में भक्ती सदा रहे, मम भव-भव में भी सदा रहे।।१७।।
तव चरणाम्बुज की भक्ती को, जिन! मैं याचूं मैं याचूं।
पुनः पुनः उस ही भक्ति की, हे प्रभु! याचन करता हूँ।।१८।।
विघ्नसमूह प्रलय हो जाते, शाकिनि भूत पिशाच सभी।
श्री जिनस्तव करने से ही, विष निर्विष होता झट ही।।१९।।

दोहा-

भगवन् ! समाधिभक्ति अरु, कायोत्सर्ग कर लेत।
चाहूँ आलोचन करन दोष विशोधन हेत।।१।।
रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूं नमूं उसे।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

सिद्धप्रतिमा की वंदना के समय सिद्धभक्ति पढ़कर वंदना करनी चाहिए। चिन्ह और अष्ट प्रातिहार्य से रहित प्रतिमायें सिद्ध प्रतिमा मानी जाती हैं। वंदना विधि निम्न प्रकार है-

सिद्ध प्रतिमा वंदना क्रिया

नमोऽस्तु सिद्धप्रतिमावंदनायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरिहंताणं आदि सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर सिद्धभक्ति पढ़ें।)

जिन प्रतिमा वंदना क्रिया

अरहंत प्रतिमा की वंदना के समय सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति और शांतिभक्ति पढ़कर वंदना करें। छह महिने के पूर्व जिनके दर्शन होते हैं उन्हें पूर्व जिनचैत्य कहते हैं। इन पूर्व जिनप्रतिमा की वंदना में भी ये सिद्ध, चारित्र और शांति भक्तियां करें। उसी का स्पष्टीकरण-

नमोऽस्तु पूर्वजिनप्रतिमावंदनाक्रियायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कृतिकर्म विधिपूर्वक ९ जाप्य, थोस्सामि, पुनः सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वजिनप्रतिमावंदनाक्रियायां......चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् विधिपूर्वक ९ जाप्य, थोस्सामि, पुनः चारित्रभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वजिनप्रतिमावंदनाक्रियायां........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदंडक, ९ जाप्य, थोस्सामि, पुनः शांति भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वजिनप्रतिमावंदनाक्रियायां.....समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् ९जाप्य करके समाधि भक्ति पढ़ें।)

अपूर्व चैत्य वंदना कब और कैसे?

छह माह के बाद जो जिन प्रतिमा का दर्शन होता है उसे अपूर्व जिन प्रतिमा कहते हैं। यदि पुनः अपूर्व जिन प्रतिमा का दर्शन त्रिकाल देववंदना और अष्टमी की क्रिया इन तीनों को एक साथ करने का योग आ जावे तो अष्टमी की क्रिया में शांतिभक्ति के पहले चैत्य, पंचगुरु भक्तियां कर लेना चाहिए अर्थात् ऐसी क्रिया में सिद्ध, श्रुत,चारित्र, चैत्य, पंचगुरु और शांति ऐसी छह भक्तियां करनी चाहिए। उसका स्पष्टीकरण-

अपूर्व चैत्यवन्दना अष्टमी क्रिया

नमोऽस्तु पूर्वाह्नदेववंदनाअपूर्वचैत्यवंदनाअष्टमीपर्वक्रियायां...........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृष्ठ ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वाह्नदेववंदनाअपूर्वचैत्यवंदनाअष्टमीपर्वक्रियायां.............श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वाह्नदेववंदनाअपूर्वचैत्यवंदनाअष्टमीपर्वक्रियायां..........चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. १२२ से चारित्रभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वाह्नदेववंदनाअपूर्वचैत्यवंदनाअष्टमीपर्वक्रियायां......चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. ६४ से चैत्यभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वाह्नदेववंदनाअपूर्वचैत्यवंदनाअष्टमीपर्वक्रियायां.........पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. ७१ से पंचगुरुभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वाह्नदेववंदनाअपूर्वचैत्यवंदनाअष्टमीपर्वक्रियायां शांति-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पूर्वाह्नदेववंदनाअपूर्वचैत्यवंदनाअष्टमीपर्वक्रियायां...........समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधि भक्ति पढ़ें।)

पाक्षिक प्रतिक्रमण कब और कैसे करें?

प्रत्येक चतुर्दशी को या अमावस्या और पूर्णिमा को पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है। पक्ष अर्थात् पन्द्रह दिन के दोषों का प्रतिक्रमण 'पाक्षिक' कहलाता है।

पाक्षिक प्रतिक्रमण के प्रयोग की विधि को कहते हैं—

पाक्षिक्यादिप्रतिक्रांतौ वंदेरन् विधिवद्गुरुम् ।
सिद्धवृत्तस्तुती कुर्याद्गुर्वी चालोचनां गणी।।५२।।

देवस्याग्रे परे सूरेः सिद्धयोगिस्तुती लघू।
सवृत्तालोचने कृत्वा प्रायश्चित्तमुपेत्य च।।५३।।

वंदित्वाचार्यमाचार्य भक्त्या लघ्व्या ससूरयः।
प्रतिक्रांतिस्तुतिं कुर्युः प्रतिक्रामेत्ततो गणी।।५४।।

अथ वीरस्तुतिं शांतिचतुर्विंशतिकीर्तनाम्।
सवृत्तालोचनां गुर्वीं सगुर्वालोचनां यताः।।५५।।

मध्यां सूरिनुतिं तां च लघ्वीं कुर्युः परे पुनः।
प्रतिक्रमा बृहन्मध्यसूरिभक्ति द्वयोज्झिताः[१]।।५६।।

पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिक इन बड़े प्रतिक्रमणों के प्रारंभ में विधिवत् -लघु सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति पढ़कर गुरु की-आचार्य की वंदना करे। पुनः सभी और आचार्य मिलकर 'समता सर्वभूतेषु' इत्यादि पढ़कर कृतिकर्म पूर्वक 'सिद्धानुद्धूत' इत्यादि वृहत् सिद्धभक्ति और 'येनेंद्रान्' इत्यादि चारित्रभक्ति पढ़ें, यह चारित्रभक्ति आलोचना सहित होती है। अतः 'इच्छामि भंते! पक्खियम्मि आलोचेउं' से लेकर 'जिनगुण संपत्ति होउ मज्झं' पर्यंत चारित्रालोचना करें। यह आचार्य और सभी साधुओं की साधारण क्रिया है।

इसके बाद केवल-अकेले आचार्य विधिवत्-कृतिकर्म सहित लघु सिद्धभक्ति और 'प्रावृट्काले' इत्यादि लघु योगभक्ति पढ़कर ''इच्छामि भन्ते चरित्तायारो तेरसविहो'' इत्यादि पांच दण्डकों को पढ़कर 'वदसमिदिंदिय' पाठ को तीन बार पढ़कर श्रीजिनेन्द्रदेव के सामने अपने दोषों की आलोचना करके आप स्वयं प्रायश्चित ले लेवें।

पुनः सभी साधुवर्ग आचार्यश्री के समक्ष लघु सिद्धभक्ति और लघु योगिभक्ति ''इच्छामि भंते! चरित्तायारो'' आदि पूर्वोक्त आचार्य द्वारा पठित पूरे पाठ को पढ़कर आचार्यश्री के सामने क्रम-क्रम से अपने दोषों की आलोचना करें, अनन्तर आचार्यश्री सभी को यथायोग्य प्रायश्चित देकर ''पंचमहाव्रत पंचसमिति......'' आदि पाठ तीन बार बोलें। इसके बाद सभी साधु ''नमोऽस्तु निष्ठापनाचार्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं'' बोलकर आचार्यवंदना करें।

पुनः आगे की क्रिया सभी साधु वर्ग और आचार्यदेव मिलकर करें। प्रतिक्रमण भक्ति की प्रतिज्ञा करके सामायिक दण्डक पढ़कर कायोत्सर्ग करें। इसके बाद केवल आचार्य महाराज 'थोस्सामि' पढ़कर गणधर वलय से लेकर पूरे दण्डक सूत्रों को पढ़ें, तब तक सभी साधुवर्ग कायोत्सर्ग मुद्रा से बैठे-बैठे सुनते रहें।

इसके बाद सभी साधु थोस्सामिस्तव पढ़ें। पुनः आचार्य और साधु मिलकर ''वदसमिदिंदियरोधो'' इत्यादि पढ़कर वीरभक्ति के लिए प्रतिज्ञा करके सामायिक दण्डक पढ़कर पाक्षिक प्रतिक्रमण में ३०० उच्छ्वासों में १०८ बार महामंत्र का जाप्य करें।

अनन्तर आचार्य और सभी थोस्सामिस्तव, चन्द्रप्रभस्तुति, वीरभक्ति पढ़कर शांतिचतुर्विंशतितीर्थंकर-भक्ति, चारित्रालोचनाचार्यभक्ति, बृहदालोचनाचार्यभक्ति, क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्ति ये तीन आचार्य भक्तियाँ करें। प्रथम आचार्य भक्ति में इच्छामि भंते! चरित्तायारो.....'' इत्यादि आलोचना पढ़ी जाती है। द्वितीय आचार्यभक्ति है 'देसकुलजाइसुद्धा' इत्यादि। इसमें ''इच्छामि भन्ते! पक्खियम्मि'' इत्यादि वृहद आलोचना है और तीसरी आचार्य भक्ति है ''प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्र'' इसमें ''इच्छामि भंत्ते! आइरियभत्ति'' इत्यादि लघु आलोचना है। लघु का नाम ही क्षुल्लक है अतः इसे 'क्षुल्लकालोचनाचार्य भक्ति' कहा है। बाद में समाधि भक्ति पढ़कर पाक्षिक प्रतिक्रमण पूरा करके पुनरपि सभी शिष्यवर्ग लघु सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्तिपूर्वक आचार्यश्री की वंदना करें।

अनगार धर्मामृत के नवमें अध्याय के पांच श्लोकों की स्वोपज्ञविवृत्ति टीका के आधार से यह विस्तार लिया गया है।

क्रियाकलाप ग्रंथ में उपरोक्त विधि से सहित ही पाक्षिक प्रतिक्रमण छपा है। यही प्रतिक्रमण

१. अनगार धर्मामृत अ. ९।

धर्मध्यान दीपक, विमल भक्ति संग्रह आदि अनेक पुस्तकों में प्रकाशित हो चुका है। इन्हीं भक्तियों को पाक्षिक प्रतिक्रमण में पढ़ने का विधान आचार ग्रंथ में भी आया है। यथा-

सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणभक्तयः,
चतुर्विंशतितीर्थेशभक्तिश्चनियमे यतेः।।६६।।
पाक्षिक चातुर्मासिकसांवत्सरिककर्मसु,
प्रतिक्रमणसंज्ञेषु नियमोक्तक्रियैव तु।।६७।।
पश्चाच्चारित्रभक्तिः स्यात्सिद्धभक्तेः क्रियांतगाः,
चारित्रबृहदालोचनालघ्वाचार्यत्रिभक्त्यः[१]।।६८।।

दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण में साधु सिद्ध, प्रतिक्रमण, निष्ठितकरणवीर और चतुर्विंशतितीर्थंकर ये चार भक्तियां करें। पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण क्रिया में सिद्ध, चारित्र, प्रतिक्रमण, निष्ठितकरणवीर,चतुर्विंशतितीर्थंकर, चारित्रालोचनाचार्य, बृहदालोचनाचार्य और लघुआलोचनाचार्य ये भक्तियां करें।

इन उद्धरणों से भी यह स्पष्ट है कि अनगारधर्मामृत, आचारसार, मूलाचारप्रदीप आदि मुनियों के सभी आचार ग्रंथों में एक जैसा ही कथन है।

कुछ लोगों का कहना है कि साधुओं के दैवसिक, रात्रिक और पाक्षिक प्रतिक्रमण में संशोधन करना चाहिए। इन प्रतिक्रमणों में जो अनावश्यक भक्तियां हैं उन्हें निकालकर मात्र प्राकृत के दण्डक सूत्रों को ही रखना चाहिए। किन्तु वास्तव में आचारसार[१] और अनगारधर्मामृत में इन दण्डकों के साथ भक्तियों का भी विधान है। जो प्रतिक्रमण पाठ आज उपलब्ध हैं उनमें दोनों का-भक्तियों का और दण्डक सूत्रों का समावेश है और अनगारधर्मामृत में तो टीका में बहुत ही अच्छा खुलासा है। जैसा वहाँ वर्णन है वैसा ही पाठ मुद्रित है अतः इसमें भक्तियाँ निकालना या भक्तियाँ रखकर दण्डक सूत्र हटाना यह कुछ भी संशोधन या परिवर्तन ठीक नहीं है।

कहने का तात्पर्य यही है कि यद्यपि यह पाक्षिक प्रतिक्रमण बहुत बड़ा है इसके पढ़ने में कम से कम भी दो, सवा दो घण्टे लग जाते हैं फिर भी इसमें से कोई भी पाठ कम नहीं करना चाहिए। साधुओं के पास इन आवश्यक क्रियाओं के सिवाय भला और कार्य ही क्या है? अर्थात् साधु जीवन में आगम कथित क्रियाओं को करना यही सर्वोत्तम है। इनमें से यदि समय बचता है तो अन्य धर्मकार्यों में लगावें। इसीलिए तो चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में सिद्धान्त आदि के स्वाध्याय का निषेध किया गया है कि जिससे आवश्यक क्रियाओं की हानि न होवे।

तात्पर्य यही है कि यह पाक्षिक प्रतिक्रमण पूर्णतया प्रामाणिक है। इसमें दण्डक सूत्र तो श्री गौतम स्वामी के मुख से निकले हुए हैं और भक्तियों में से कोई तो श्री कुंदकुंददेव कृत हैं और कोई श्री पूज्यपाद आचार्यकृत हैं। इन दोनों को समाविष्ट किन आचार्यों ने किया है कौन जाने? किन्तु ''आचारसार'' के कर्ता सिद्धान्त चक्रवर्ती श्रीवीरनन्दि आचार्य के समय यह पूरा पाठ ऐसा ही था तथा अनगारधर्मामृत के कर्त्ता पं. आशाधर जी व चारित्रसार के कर्त्ता श्री चामुंडराय के सामने भी यही पाठ उपलब्ध था ऐसा निश्चित हो जाता है। तब पुनः आज हम और आप जैसे साधुओं को या पंडितों

१. आचारसार अ. ९।

को इनमें से दण्डक सूत्र या भक्तियों को अलग करने का अतिसाहस नहीं करना चाहिए, प्रत्युत महती श्रद्धा के साथ इन्हीं प्रतिक्रमण पाठों को विधिवत् करना चाहिए।

कृतिकर्म विधि-

इस पाक्षिक प्रतिक्रमण में कृतिकर्म पूर्वक भक्तिपाठ ग्यारह बार आता है-

यथा-१. सिद्धभक्ति २. सालोचना चारित्रभक्ति ३. सिद्धभक्ति ४. सालोचनायोगि भक्ति ५. प्रतिक्रमणभक्ति ६. निष्ठितकरणवीर भक्ति ७. शांतिचतुर्विंशतितीर्थंकर भक्ति ८. चारित्रालोचनाचार्य भक्ति ९. वृहदालोचनाचार्य भक्ति १०. क्षुल्लकालोचनाचार्य भक्ति और ११. समाधि भक्ति। इन ग्यारह जगह प्रतिज्ञा करके-

दोणदं तु जधाजादं वारसावत्तमेव च।
चदुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे।।६०३।।

इस गाथा के अनुसार मन-वचन-काय की शुद्धि से दो नमस्कार, बारह आवर्त, चार शिरोनति पूर्वक कृतिकर्म का प्रयोग करना होता है।

यहाँ कोई कहे कि यह सब तो पुनः पुनः आने से पुनरुक्ति दोष हो जाता है सो ऐसा नहीं है। प्रत्युत यह पुनरुक्ति तो गुण मानी गई है इसी गाथा के आगे मूलाचार में पुनरुक्ति का वर्णन किया गया है। सो ही देखिये-

तिविहं तियरणसुद्धं मयरहियं दुविह ठाण पुणरुत्तं।
विणएण कमविसुद्धं किदियस्मं होदि कायव्वं।।६०४।।

अर्थ-अवनति, आवर्त और शिरोनति ये तीन विध, मन-वचन-काय से शुद्ध, मदरहित, पर्यंक और कायोत्सर्ग इन दो स्थान युक्त और पुनरुक्ति से सहित विनयपूर्वक क्रमानुसार कृतिकर्म करना होता है। यहाँ पर जो "पुनरुक्त" पद आया है। उससे यही समझना चाहिए कि 'कृतिकर्म' में सामायिक दण्डक और थोस्सामिस्तव पाठ आता ही आता है।इस पाक्षिक प्रतिक्रमण में ग्यारह बार सामायिक दण्डक और थोस्सामिस्तव पढ़ना भी पुनरुक्त दोष नहीं है।

इसी प्रकार दैवसिक प्रतिक्रमण में पांच बार कृतिकर्म है इत्यादि। साधुओं के अट्ठाईस कृतिकर्म जो अहोरात्र संबंधी हैं उनमें भी उतनी बार तो सामायिक दण्डक और थोस्सामिस्तव है ही, साथ में सर्वदोष विशुद्धि हेतु जो समाधिभक्ति की जाती है उसमें भी यह कृतिकर्म विधि की जाती है। अष्टमी आदि नैमित्तिक क्रियाओं में भी यह विधि की जाती है। निष्कर्ष यही है कि बार-बार भी कृतिकर्म पूर्वक कायोत्सर्ग करते हुए सामायिक दण्डक और थोस्सामि पढ़ते रहना पुनरुक्त नहीं है।

*****

पाक्षिकादि-प्रतिक्रमणम्

(शिष्यसधर्माणः पाक्षिकादिप्रतिक्रमे लघ्वीभिः सिद्धश्रुताचार्यभक्तिभिराचार्यं वन्देरन् ।

[1]नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(जाप्य ९)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१।।
तवसिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनश्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(जाप्य ९)

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य-शीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाश-दष्टौ च सहस्त्र-संख्य-मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।

पाक्षिकादि प्रतिक्रमण

(हिन्दी पद्यानुवाद)

(शिष्य साधुवर्ग पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण में लघु सिद्ध श्रुत आचार्य भक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।)

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां प्रतिष्ठापनसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(९ जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति-

समकित दर्शनज्ञान वीर्य सूक्ष्मत्व तथा अवगाहन हैं।
अव्याबाध अगुरुलघु ये सिद्धों के आठ महागुण हैं।।१।।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध नमूं सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां प्रतिष्ठापनश्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(९ जाप्य)

इक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूं नमाकर माथ।।१।।

---

१. एष लघुभक्तित्रयपाठः पुस्तके नास्ति सूचनानुसारेण योजितः।

अरहंत - भासियत्थं, गणहर - देवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाण - महोवहिं सिरसा।।२।।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

(जाप्य ९)

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः, स्वपर-मतविभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।।

छत्तीस-गुणसमग्गे, पंचविहाचार-करणसंदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्माइरिए सदा वंदे।।२।।

गुरुभत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुलाः
षट्कर्माभि-रता-स्तपोधनधनाः, साधुक्रियाः साधवः।
शील-प्रावरणा गुणप्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिका
मोक्षद्वार-कपाटपाटन-भटाः, प्रीणंतु मां साधवः।।४।।

अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक् गूंथा है गणधरगुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से प्रणमूं भक्ति समन्वित मैं।।२।।

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां प्रतिष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(९जाप्य)

श्रुतसमुद्रपारंगत स्वमत व परमतज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्रतप निधियुत गुणगुरु हे गुरु! तुमको करूं नती।।१।।

छत्तीस गुण से पूर्ण पाँच आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रहनिपुण धर्मआचार्य सदा वंदूं तुमको।।२।।

गुरुभक्ती संयम से तिरते भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं पाते जन्ममरण व्याधी।।३।।

व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट् आवश्यकरत साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत सूर्यचंद्र से तेज अधिक।
मोक्षद्वार उद्घाटन योद्धा साधु हों प्रसन्न मुझ प्रति।।४।।

गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञानदर्शन - नायकाः।
चारित्रार्णवगंभीरा, मोक्षमार्गो - पदेशकाः।।५।।

(ततः इष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं ''समता सर्वभूतेषु'' इत्यादि पठित्वा गणी शिष्यसधर्मगणयुक्तः ''सिद्धानुद्धूतकर्म'' इत्यादिकां गुर्वीं सिद्धभक्ति सांचलिकां, ''येनेन्द्रान्'' इत्यादिकां च चारित्रभक्तिं वृहदालोचनासहितां, अर्हद्भट्टारकस्याग्रे कुर्यात् । सैषा सूरेः शिष्यसधर्मणां च साधारणी क्रिया।)

नमः श्रीवर्धमानाय, निर्धूत-कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते।।१।।

समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्र-परित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम्।।२।।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणायां[1] पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरिहंताणं इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कृत्वा थोस्सामि इत्यादिकं विधाय सिद्धानुद्धूतकर्म इत्यादिसिद्धभक्तिं सांचलिकां पठेत्।)

ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ उपदेशक पथ में धरिये।।५।।

(इसके बाद 'जिनने कर्मकलिलधोया' इत्यादि श्लोक से इष्ट देवता को नमस्कार करके ''सभी प्राणियों में समता हो'' इत्यादि पढ़कर आचार्यदेव सभी साधुवर्गों से सहित ''सब सिद्ध'' इत्यादि बड़ी सिद्धभक्ति अंचलिका सहित पढ़कर ''चमकित मुकुट'' इत्यादि चारित्रभक्ति वृहद् आलोचना सहित अर्हंत भगवान् के सामने पढ़ें। यह आचार्य और साधुओं की साधारण क्रिया है।)

जिनने कर्मकलिल धोया, श्रीवर्धमान को नित्य नमें।
जिनके ज्ञानमयी दर्पण में, लोकालोक सकल झलकें।।१।।

सभी प्राणियों में समता हो, संयम हो शुभ भाव रहे।
आर्त रौद्र दुर्ध्यान त्याग हो यही श्रेष्ठ सामायिक है।।२।।

सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दण्डक पढ़कर कायोत्सर्ग करके थोस्सामि स्तवन पढ़कर ''सब सिद्ध कर्मप्रकृती'' इत्यादि सिद्धभक्ति पढ़ें।)

---

१. चातुर्मासिकप्रतिक्रमणायां सांवत्सरिकप्रतिक्रमणायां चेति तत्तत्प्रतिक्रमणायां पठेत् ।

सिद्ध भक्ति

सिद्धानुद्धूत-कर्मप्रकृति-समुदयान्-साधितात्मस्वभावान्-
वन्दे सिद्धि-प्रसिद्ध्यै, तदनुपम-गुण-प्रग्रहा-कृष्टितुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः, प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहाराद्
योग्यो-पादान-युक्त्या, दृषद इह यथा हेम-भावोपलब्धिः।।१।।

नाभावः सिद्धिरिष्टा, न निज-गुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्तेः
रस्त्यात्मानादिबद्धः, स्वकृतज-फलभुक्तत्क्षयान्मोक्षभागी।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेह - प्रमिति - रुपसमाहार - विस्तारधर्मा
ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मा, स्व-गुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः।।२।।

स त्वन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभवविमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-
संपद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरिततया व्यञ्जिता-चिन्त्य-सारैः।
कैवल्य-ज्ञान-दृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य-सम्यक्त्व-लब्धि-
ज्योति-र्वातायनादि-स्थिर-परमगुणै-रद्भुतैर्भासमानः।।३।।

सिद्धभक्ति (शंभु छन्द)

सब सिद्ध कर्म प्रकृती विनाश निज के स्वभाव को प्राप्त किये।
अनुपमगुण से आकृष्ट तुष्ट मैं वंदूं सिद्धी हेतु लिये।।
गुणगुण आच्छादक दोष नशें, सिद्धि स्वात्मा की उपलब्धी।
जैसे पत्थर सोना बनता, हों योग्य उपादान अरु युक्ती।।१।।

नहिं मुक्ति अभावरूप जिनगुण की हानि तपों से उचित न है।
आत्मा अनादि से बंधा स्वकृतफलभुक् तत्क्षय से मुक्ति लहे।
ज्ञाता दृष्टा यह स्वतनुमात्र संहार विसर्पण गुणयुत भी।
उत्पाद व व्यय ध्रुवयुत जिनगुणयुत अन्य प्रकार नहीं सिद्धी।।२।।

जो अन्तर्बाह्य हेतु से प्रगटित निर्मल दर्शन ज्ञान कहा।
चारित संपत्ती प्रहरण से सब घाति चतुष्टय, हानि किया।।
फिर प्रगट अचिन्त्य सार अद्भुतगुण केवलज्ञान सुदर्शन सुख।
अरु प्रवर वीर्य सम्यक्त्व प्रभामंडल चमरादिक से राजित।।३।।

जानन्-पश्यन्-समस्तं, सममनुपरतं सम्प्रतृप्यन्वितन्वन्
धुन्वन्-ध्वान्तं नितांतं निचितमनुसभं प्रीणय-न्नीशभावम्।
कुर्वन्-सर्वप्रजाना-मपर-मभिभवन् ज्योति-रात्मान-मात्मा
आत्मन्ये-वात्मनासौ क्षण-मुपजनयन्-सत्स्वयम्भूः प्रवृत्तः।।४।।

छिंदन् शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनंतस्वभावैः
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहा-गुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यै-श्चान्यव्यपोह-प्रवणविषय-संप्राप्ति-लब्धिप्रभावैः
ऊर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये।।५।।

अन्या-काराप्तिहेतु-र्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः।
प्रागात्मोपात्तदेह प्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्तृष्णा-श्वास-कासज्वर-मरणजरानिष्ट-योग-प्रमोह-
व्यापत्या-द्युग्र-दुःख-प्रभवभवहतेः कोस्य सौख्यस्य माता।।६।।

आत्मोपादानसिद्धं स्वय-मतिशयवद्-वीतबाधं विशालं
वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं विषय-विरहितं निष्प्रति-द्वन्द्वभावम्।

जानें देखें सह त्रिभुवन को जो सदा तृप्त हो सुख भोगें।
तमके विध्वंसक समवसरण में सब को तर्पित कर शोभें।।
वे सभी प्रजा के ईश्वर पर की ज्योति तिरस्कृत कर क्षण में।
बस स्व में स्व से स्व को प्रगटित कर स्वयं स्वयंभू आप बने।।४।।

अवशेष अघाती बेड़ीवत् जो कर्म बली उनको घाता।
सूक्ष्मत्व अगुरुलघु आदि अनंत, स्वाभाविक क्षायिक गुण पाया।।
वे अन्य कर्म क्षय से निज की, शुद्धी से महिमाशाली हैं।
प्रभु ऊर्ध्वगमन से एक समय में लोक अग्र पर ठहरें हैं।।५।।

जो अन्याकार प्राप्ति हेतू नहिं हुआ विलक्षण किंचित् कम।
वो पूर्व स्वयं संप्राप्त देह, प्रतिकृति है रुचिर अमूर्त अमम।।
सब क्षुधा तृषा ज्वर श्वास कास, जर मरण अनिष्ट योग रहिता।
आपत्ती आदि उग्र दुःखकर भगवत सुख कौन माप सकता।।६।।

सब सिद्ध स्वयं के उपादान से स्वयं अतिशयी बाधरहित।
वृद्धि व ह्रास से रहित विषय-विरहित, प्रतिशत्रू रहित अमित।।

अन्यद्रव्या - नपेक्षं निरुपम - ममितं शाश्वतं सर्वकालं
उत्कृष्टा-नन्तसारं परमसुख-मतस्तस्य सिद्धस्य जातम्।।७।।

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशाद्विविधरसयुतै-रन्नपानै-रशुच्या-
नास्पृष्टे-र्गन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनै-र्ग्लानिनिद्राद्यभावात्।
आतङ्कार्ते - रभावे तदुपशमन - सद्भेषजानर्थतावद्
दीपा-नर्थक्यवद्वा व्यपगत - तिमिरे दृश्यमाने समस्ते।।८।।

तादृक्-सम्पत्समेता विविधनय-तपः संयम-ज्ञानदृष्टि-
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रवितत-यशसो विश्वदेवाधिदेवाः।
भूता भव्या भवंतः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैः
तान्सर्वान्नौम्य-नंतान्निजिगमिषु-ररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम्।।९।।

अंचलिका — **इच्छामि भंते! सिद्धभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं**

सब अन्य द्रव्य से निरापेक्ष, निरुपम, त्रैकालिक अविनश्वर।
उत्कृष्ट अनंतसार सिद्धों के, हुआ परमसुख अति निर्भर।।७।।

नहिं भूख प्यास अतएव विविध रस-अन्न पान से नहिं मतलब।
नहिं अशुची ग्लानि निद्रादिक, माला शय्या से है क्या तब।।
नहिं रोग जनित पीड़ा है तब, उपशमन हेतु औषधि से क्या।
सब तिमिर नष्ट हो गया दिखे, सब जगत् पुनः दीपक से क्या।।८।।

जो विविध सुनय तप संयम दर्शन, ज्ञान चरित्र से सिद्ध हुए।
गुण संपद् से युत विश्वकीर्ति, व्यापी देवों के देव हुए।।
उत्कृष्ट जनों से संस्तुत जग में, भूत भावि सांप्रत सिद्धा।
मैं नमूं अनंतों को त्रैकालिक, उन स्वरूप की है इच्छा।।९।।

दोहा-

बत्तिस दोषों से रहित, परम शुद्ध शुभ खान।
करके कायोत्सर्ग जो, भक्ति सहित अमलान।।
नित प्रति वंदे भाव से, सिद्ध समूह महान्।
वह पावे झट परम सुख, ज्ञान सहित शिव धाम।।९।।

अंचलिका

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।

सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्प-मुक्काणं, अट्ठ-गुणसंपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं,चरित्त-सिद्धाणं अतीता-णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि,वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं आलोचनाचारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(इत्युच्चार्य ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दंडकं पठित्वा कायमुत्सृज्य ''थोस्सामि'' इत्यादि दण्डकमधीत्य ''येनेन्द्रान् '' इत्यादि चारित्रभक्ति सालोचनां पठेत्।)

चारित्रभक्तिः

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूर-हारांगदान् ।
भास्वन्-मौलि-मणि-प्रभा-प्रविसरोत्तुंगो-त्तमाङ्गान्नतान्।।
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा।
वंदे पंचतयं तमद्य निगदन्-नाचार-मभ्यर्चितम्।।१।।

अठ विधकर्मरहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयम सिद्ध चरितसिध जो।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूं, वंदूं नमूं भक्ति युक्ता।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधि मरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं आलोचनाचारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर, ९ जाप्य करके, थोस्सामिस्तवन पढ़कर चारित्र भक्ति पढ़ें। पुनः आलोचना पढ़ें।)

*****

चारित्रभक्ति

चौबोल छन्द-

चमकित मुकुट मणी की प्रभ से, व्याप्त सु उन्नत है मस्तक।
कंकण हारादिक से शोभित, त्रिभुवन के इंद्रादिक सब।।
जिससे उनको स्वपद कमल में, नमित किया नित मुनियों ने।
उन अर्चित पंचाचारों को, कथन हेतु अब नमूं उन्हें।।१।।

अर्थ-व्यंजन-तद्द्वया-विकलता-कालोपधा-प्रश्रयाः।
स्वाचार्या-द्यनपन्हवो बहुमति-श्चेत्यष्टधा व्याहृतम्।।
श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा।
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपता-म्युद्धूतये कर्मणाम्।।२।।

शंकादृष्टि-विमोह-कांक्षण-विधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धतां।
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं धर्मोपबृंह-क्रियाम्।।
शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद्-भ्रष्टस्य संस्थापनम्।
वंदे दर्शनगोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ।।३।।

एकान्ते शयनोपवेशन कृतिः संतापनं तानवम् ।
संख्यावृत्ति-निबन्धना-मनशनं विष्वाण-मर्द्धोदरम्।।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्।
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति-प्राप्त्यभ्युपायं तपः।।४।।

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनम्।
ध्यानं व्यापृति-रामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ।।

व्यंजन अर्थ उभय शुद्धी युत, काल विनय शुद्धी उपधा।
निज सूरि का निन्हव नहिं, बहुमान कहीं ये अष्ट विधा।।
श्रीमद् प्रभू जातिकुल इन्द्र, तीर्थंकर से कथित महान् ।
ज्ञानाचार त्रिधा मैं प्रणमूं, कर्म नाश हेतू सुखदान।।२।।

शंका कांक्षा मूढ़दृष्टि से, रहित सदा वात्सल्य सहित।
विचिकित्सा से दूर धर्म के, वृद्धिंगत में तत्पर नित।।
जिन शासन उद्दीपन हित, पथभ्रष्टों को करना स्थिर।
आदर से शिर नत वंदूं, अष्टांग दर्शनाचार प्रवर।।३।।

अनशन अवमोदर्य वृत्ति-परिसंख्या कायक्लेश सुतप।
इन्द्रिय हस्ती को मद कारक-विविध रसों का त्याग सुतप।।
नित एकांत शयन उपवेशन, ये छह बाह्य कहे हैं तप।
शिवगति प्राप्ति के उपाय, मैं इनकी संस्तुति करूं सतत।।४।।

क्रिया व्रतों में दोष लगे तब, प्रायश्चित स्वाध्याय महान।
बाल वृद्ध रोगी यति गुरु की, वैयावृत्ति नित्य शुचि ध्यान।।

कायोत्सर्जन-सत्क्रिया विनय इत्येवं तपः षड्विधं।
वंदेऽभ्यंतर-मन्तरंगबलवद्-विद्वेषि-विध्वंसनम्।।५।।
सम्यग्ज्ञान-विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्मते।
वीर्यस्या-विनिगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।।
या वृत्ति-स्तरणीव नौ-रविवरा लघ्वी भवोदन्वतो।
वीर्याचारमहं तमूर्जित-गुणं वंदे सतामर्चितम्।।६।।
तिस्रः सत्तम-गुप्तयस्तनुमनोभाषा-निमित्तोदयाः।
पंचेर्यादि-समाश्रयाःसमितयः पंचव्रतानीत्यपि।।
चारित्रो-पहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परैः।
आचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीरं नमामो वयम्।।७।।
आचारं सहपंचभेद - मुदितं तीर्थं परं मंगलं।
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र महतो-वंदे समग्रान्यतीन्।।
आत्माधीन-सुखोदया-मनुपमां लक्ष्मी-मविध्वंसिनीं।
इच्छन्केवलदर्शनावगमन-प्राज्य-प्रकाशोज्वलाम्।।८।।

कायोत्सर्ग विनय तप षट् विधि, अंतरंग ये कहे प्रधान।
अंतरंग रागादि दोष विध्वंसक इनको नमूं सुजान।।५।।

अर्हत मत के श्रद्धानी जो, सम्यग्ज्ञान चक्षु धारी।
तप में शक्ती नहीं छिपाते, करें प्रयत्न सदा भारी।।
उनकी चर्या छिद्र रहित, नौका सम भवदधि तरणी है।
ऐसा वीर्याचार नमूं मैं, गुणमय सज्जन अर्चित है।।६।।

मन वच काय निमित्तक उत्तम, तीन गुप्ति भव दुःख वारक।
ईर्या समिती आदि पंच हैं, पंच महाव्रत भी चारित।।
वृषभ वीर के सिवा त्रयोदश, चरित अन्य ने नहीं कहा।
परमेष्ठी जिनपती वीर को, सच्चरित्र को नमूं सदा।।७।।

पंचाचार भवोदधि तारक, तीर्थ महा मंगल उसको।
वंदूं चारित युत सब यतिपति, निर्ग्रंथों को भी नति हो।।
आत्माधीन सुखोदय वाली, लक्ष्मी अविनाशी अनुपम।
केवलदर्शन ज्ञान प्रकाशी, उज्ज्वल उसके इच्छुक हम।।८।।

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनो-ऽवर्तिष्यहं चान्यथा।
तस्मिन्नर्जित-मस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति।।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसा-मृद्धिं नयत्यद्भुतं।
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं भवतु मे स्वं निंदतो निंदितम्।।९।।
संसार-व्यसना-हति-प्रचलिता नित्योदय-प्रार्थिनः।
प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः शांतैनसः प्राणिनः।।
मोक्षस्यैव कृतं विशाल-मतुलं सोपान-मुच्चैस्तराम्।
आरोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं जैनेन्द्र-मोजस्विनः।।१०।।

चारित्रालोचना —**इच्छामि भन्ते! अट्ठमियम्मि आलोचेउं, अट्ठण्हं दिवसाणं अट्ठण्हं राईणं अब्भंतरादो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।**

इच्छामि[1] भन्ते! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्हं दिवसाणं पण्ण-रसण्हं राईणं अब्भंतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

यदि आगम प्रतिकूल चरित को, मैंने किया कराया है।
उससे अर्जित पाप नाश हों, चारित तप की महिमा से।।
इस चारित तप से ये अद्भुत, सात ऋद्धि निधि भी होवें।
स्व की निंदा करते मेरे, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।।९।।
भव दुःख से भयभीत सदोदय, सुख के इच्छुक जो प्राणी।
मुक्ति के हैं निकट सुमतियुत, पाप शांतयुत ओजस्वी।।
मोक्षमहल की सीढ़ी सम यह, चारित उत्तम अतुल विशाल।
वे इस पर चढ़ मोक्षमहल में, पहुँचे रहें अनन्तों काल।।१०।।

शंभु छंद- हे भगवन् ! **मैं अष्टमी दिवस** का चाहूं आलोचन करना।
आठ दिवस औ आठ रात्री के भीतर हुए दोष हरना।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व तप आचार तथा वीर्याचारा।
चारित्राचार पांच ये हैं आचार मोक्ष के आधारा।।
हे भगवन्! **पाक्षिक प्रतिक्रमण** का चाहूं आलोचन करना।
पन्द्रह दिन पन्द्रह रात्रि के भीतर हुए दोषों को हरना।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व तप आचार तथा वीर्याचारा।
चारित्राचार पांच ये हैं आचार मोक्ष के आधारा।।

१. इसे पाक्षिक प्रतिक्रमण के समय बोलें।

इच्छामि[1] भंते! चाउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तर-सय-दिवसाणं वीसुत्तर-सयराईणं अब्भंतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

इच्छामि भंते! संवच्छरियम्मि[2] आलोचेउं, वारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं छावट्ठि-सय-दिवसाणं, तिण्हं छावट्ठि-सयराइणं अब्भंतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

तत्थ णाणायारो, काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे, तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-तदुभये चेदि णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, पदहीणं वा, विंजणहीणं, वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु वा, थुईसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्दारेसु वा, अकाले सज्झाओ कओ वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, काले वा

हे भगवन्! **चातुर्मासिक** का आलोचन करूं चउ महीने में।
इन आठ पक्ष में इकसौ बीस दिवस इकसौ बीस निशि में।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व तप आचार तथा वीर्याचारा।।
चारित्राचार पांच ये हैं आचार मोक्ष के आधारा।।
हे भगवन्! **वार्षिक का** आलोचन करूं सु बारह महिने में।
चउबीस पक्ष में त्रय सौ छ्यासठ दिवस व इतनी रात्रि में।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व तप आचार तथा वीर्याचारा।
चारित्राचार पांच हैं ये आचार मोक्ष के आधारा।।
इनमें है ज्ञानाचार प्रथम, जो आठ भेद शुद्धीयुत है।
वह काल विनय उपधान[3] तथा बहुमान[4] अनिह्नव व्यंजन है।।
पुनि अर्थ उभय[5] इन शुद्धि से स्तव[6] स्तुति[7] अर्थाख्याना[8]।।
अनुयोग[9] और अनुयोगद्वार[10] में किया यदी अक्षर हीना।।
या पद से कम या व्यंजन कम या अर्थहीन या ग्रंथ कमी।
यदि अकाल में स्वाध्याय किया या करवाया या अनुमति दी।।

१. इसे चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में बोलें। २. इसे वार्षिक प्रतिक्रमण में बोलें। ३. नियम विशेष करके स्वाध्याय करना। ४. गंध पुष्पों से द्रव्य पूजा और सिद्ध श्रुत आचार्य भक्ति करके पढ़ना भाव पूजा है। इन पूजा से युक्त होकर पढ़ना। ५. व्यंजन और अर्थ की शुद्धि। ६. अनेक तीर्थंकरों के गुणों का गान स्तव है। ७. एक तीर्थंकर के गुणों का वर्णन स्तुति है। ८. चरित्र पुराण ग्रंथ। ९. प्रथमानुयोग, करणानुयोग आदि। १०. कृतिवेदना आदि चौबीस हैं।

परिहाविदो, अच्छाकारिदं, मिच्छा मेलिदं, आमेलिदं, वामेलिदं अण्णहादिण्णं, अण्णहा पडिच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।

दंसणायारो अट्ठविहो, णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा[१] अमूढदिट्ठी य, उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल[२] पहावणा चेदि। अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए कंखाए विदिगिंछाए अण्णदिट्ठीपसंसणदाए परपाखण्ड[३]पसंसणदाए अणायदणसेवणदाए अवच्छल्लदाए अप्पहावणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।२।।

तवायारो वारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं[४] वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण, पडिक्कंतं, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

या काल में नहिं स्वाध्याय किया या झटिति पढ़ा मिथ्या मिश्रण।
विपरीत अर्थकर पढ़ा अन्यथा कहा अन्यथा किया ग्रहण।।
छह आवश्यक में हानी की, इस ज्ञानाचार में दोष किया।
पणविध स्वाध्याय की सिद्धी हो, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।१।।

दर्शनाचार आठविध है निःशंकित निःकांक्षित गुण से।
अरु निर्विचिकित्सा अमूढ़दृक् उपगूहन स्थितिकरण गुण से।।
वात्सल्य प्रभावन इन अठ में शंका कांक्षा व जुगुप्सा की।
मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा की अरु परपाखंड प्रशंसा की।
अनायतन की सेवा की वात्सल प्रभावना नहीं किया।
इन दोषों से जो हानी की वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।२।।

छह अभ्यंतर छह बाहिर से बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।
तनुपरित्याग-तनुक्लेश[५] विविक्त शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत स्वाध्याय ध्यान[६] व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।३।।

---

१. णिव्विदिगिंछो इति पाठः। २.वच्छल्लं इति पाठः। ३. परपासंड इति पाठः। ४. ओमोदरियं इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। ५. यहाँ कायक्लेश को बाह्य तप में पाँचवां माना है। ६. यहां ध्यान को अभ्यंतर तप में पांचवां माना है।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण जहुत्तमाणेण बलेण वीरिएण परिक्कमेण[१] णिगूहियं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।४।।

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वयाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं। से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तस्स उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

है वीर्याचार पांचविध से वर, वीर्य पराक्रम से जानो।
आगमवर्णित[२] तपपरीमाण, बल[३] वीर्य[४]-सहज शक्ती मानो।।
परक्रम[५]-परिपाटी से मैंने, पण वीर्याचार में हानी की।
निज शक्ति छिपायी तपश्चरण, करने में तप में हानी की।
तप क्रिया न की परीषह आदि, से पीड़ित हो यदि छोड़ दिया।
इस वीर्याचार में दोष किया, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।४।।

हे भगवन् ! इच्छा करता हूँ, चारित्राचार त्रयोदशविध।
वह पांच महाव्रत पांच समिति, अरु तीन गुप्तिमय जिनभाषित।।
इनमें **हिंसा का त्याग महाव्रत**, प्रथम कहा है जिनवर ने।
भूकायिक जीव असंख्यातासंख्यात व जलकायिक इतने[६]।।
अग्नीकायिक भि असंख्यातासंख्यात पवनकायिक इतने[७]।
जो वनस्पतिकायिक प्राणी, वे सभी अनंतानंत भणें।।
ये हरित बीज अंकुर स्वरूप, नानाविध छिन्न-भिन्न भी हों।
इन सबको प्राणों से मारा, संताप दिया पीड़ा दी हो।।
उपघात किया मनवचतन से, या अन्यों से करवाया हो।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।

---

१. परक्कमेण इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। २. यथोक्तमान-आगम में कही गई विधि से कवलचांद्रायण आदि तप करना। ३. काल, क्षेत्र और आहार का बल। ४. वीर्य-सहज अपनी सामर्थ्य। ५. परक्रम-आगम में प्रतिपादित क्रम से तप करना, जैसे मूलगुणों का पालन कर उत्तर गुणों को पाला। ६. जलकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। ७. वायुकायिक जीव भी असंख्यातसंख्यात हैं।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खिकिमि-शंख-खुल्लय-वराडय-अक्ख[१]-रिट्ठ-गंडवाल-संबुक्क[२]-सिप्पि-पुलविकाइया[३] (पुलविआइया) तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथु-द्देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं, परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय (मसय)-मक्खिय-पयंग-कीड-भमर-महुयरि-गोमक्खियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो व कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया पोदाइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उव्वादिमा अवि चउरासीदिजोणि-पमुह-

दो इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुक्षि कृमि[४] शंख कहे।
क्षुद्रक कौड़ी व अक्ष अरिष्टय[५], गंडबाल लघु शंख कहे।।
जो सीप जोंक आदिक इनको, मारा या त्रास दिया भी हो।
पीड़ा दी या उपघात किया, या पर से भी करवाया हो।।
या करते को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।
त्रय इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुंथु[६] देहिक बिच्छू।
जूं गोजों खटमल इंद्रगोप, चिउंटी आदिक बहुविध जंतू।।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।
चउ इंद्रिय जीव असंख्यातासंख्यात उन्हों में डांस मशक।
बहु कीट पतंगे भ्रमर मधूमक्खी गोमक्खी आदि विविध।।
इनको मारा परिताप विराधन, या उपघात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।।
पचेंद्रिय जीव असंख्यातासंख्यात इन्हों में अंडज हैं।
पोतज व जरायुज रसज पसीनज सम्मूर्छन उद्भेदिम हैं।।
उपपाद जन्मयुत भी चौरासी, लाख योनि वालों में जो।

१. अक्खमहान्तो इति पाठः ग्रन्थत्रयीषु। २. संबूय इति पाठः ग्रन्थत्रयीषु। ३. पुलविआइया-जलौकाः, आदिशब्देनैवमादिकाः ग्रन्थत्रयीषु। ४. लट, घाव आदि के जीव। ५. बच्चों के शरीर में पैदा हो जाते हैं ऐसे क्षुद्र जीव। ६. सूक्ष्म जीव।

सदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।

अहावरे[१] दुव्वे[२] महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा राएण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा (पदोसेण वा) पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केणवि कारणेण जादेण वा सव्वो मुसावादो भासिओ भासाविओ भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।२।।

अहावरे तव्वे[३] महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमणं, से गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंबे वा मंडले वा पट्टणे वा दोणमुहे वा घोसे वा आसमे वा सहाए वा संवाहे वा सण्णिवेसे वा तिणं[४] वा कट्ठं वा वियडिं वा मणिं वा एवमाइयं अदत्तं गिण्हियं[५] गेण्हावियं गेण्हिज्जंतं समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

इनको मारा संताप दिया पीड़ा दी घात किया जो हो।।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।
अब अन्य **द्वितीय महाव्रत** में विरती है झूठ बोलने से।
इसमें जो क्रोध मान माया या लोभ राग या द्वेषों से।।
या मोह हास्य या भय प्रदोष या प्रमाद प्रेम या गृद्धी[६] से।
लज्जा गारव[७] व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से।।
जो कुछ भी झूठ वचन बोले या पर से भी बुलवाया हो।
या अन्यों को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।
अब अन्य **तृतीय महाव्रत** में बिन दी वस्तु से विरती है।
ग्राम नगर खेट[८] कर्वट[९] मटंब[१०], मण्डल पत्तन[११] या द्रोणमुखे[१२]।।
गोकुल आश्रम व सभा संवाहन[१३] राजधानी[१४] इन आदी में।
तृण लकड़ी विकृती[१५] मणि आदी कुछ भी बिन दिये ग्रहा मैंने।।
या पर से ग्रहण कराया हो अनुमति दी लेने वालों को।
जो दोष हुए हों इस व्रत में वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।

१. प्रतिक्रमणग्रंथत्रयीषु पाठांतरं। २. "दोच्चे" इति पाठांतरं, प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयीषु। १. "तच्चे" इति पाठः ग्रन्थत्रयीषु। २. "तणं" इति पाठः ग्रन्थत्रयीषु। ३. 'गेण्हियं' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। ६. पिपासा-विषयों की गृद्धी। ७. महत्त्वाकांक्षा। ८. नदी और पर्वत से वेष्टित खेट है। ९.पर्वत से वेष्टित। १०. गांव से युक्त। ११. शहर को पत्तन कहते हैं। १२. समुद्र के किनारे बसा द्रोणामुख है। १३. पर्वत पर बसा गांव संवाहन है। १४. सन्निवेश-राजधानी या गोष्ठीस्थल। १५. राख आदि वस्तुएं।

अहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, से *देविएसु वा माणुसिएसु वा तेरिच्छिएसु[1] वा अचेयणिएसु वा मणुणामणुणेसु[2] रूवेसु मणुणामणुणेसु सद्देसु मणुणामणुणेसु गंधेसु मणुणामणुणेसु रसेसु मणुणामणुणेसु फासेसु चक्खिदियपरिणामे सोदिंदियपरिणामे घाणिंदियपरिणामे जिब्भिंदिय-परिणामे फासिंदियपरिणामे णोइंदियपरिणामे अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण णवविहं बंभचरियं ण रक्खियं ण रक्खावियं रक्खिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।४।।

अहावरे पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, सो वि परिग्गहो दुविहो, अब्भंतरो बाहिरो चेदि तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेयणीयं मोहणीयं आउग्गं णामं गोदं अंतरायं चेदि अट्ठविहो, तत्थ बाहिरो परिग्गहो उवयरण-भंड-फलह-पीढ-कमंडलु-संथार-सेज्जउवसेज्ज-भत्त-

अब अन्य **चतुर्थ महाव्रत** में मैथुन सेवन से विरती है।
इसमें देवी के नारी के तिर्यंचि अचेतन पुतली के।।
(आर्यिकाओं को उपरोक्त पंक्ति की जगह निम्न पंक्ति बोलना चाहिए)
(इसमें देवों के मानव के तिर्यंच अचेतन चित्रों के।)
सुन्दर व असुन्दर रूपों में प्रिय अप्रिय शब्द व गंधों में।
चक्षूइंद्रिय के विषयों में कर्णेन्द्रिय के परिणामों में।।
घ्राणेंद्रिय के विषयों में रसनेंद्रिय की अभिलाषा में।।
स्पर्शेन्द्रिय के विषयों में या मन के अनियत विषयों में।
मन वच तन को वश में नहिं कर इंद्रिय को वश नहिं करके मैं।।
इन नवविध ब्रह्मचर्य की रक्षा नहिं की नहीं करायी हो।
नहिं रक्षक को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।।
अब अन्य **पांचवे महाव्रत** में, परिग्रह रखने से विरती है।
वह परिग्रह अभ्यंतर व बाह्य, से द्विविध तथा अभ्यंतर में।।
वो ज्ञानावरणी दर्शनावरण वेदनीय मोहनी आयु कहे।
पुनि नाम गोत्र अरु अन्तराय ये अठविध अंतर परिग्रह हैं।।
बाहिर परिग्रह-उपकरण-शास्त्र पिच्छी व भांड[3] फलक आसन।
कमंडलु[4] संस्तर काठ व तृण वसती[5] व देवकुल[6] आदि ग्रहण।।

*देवेसु वा माणुसेसु तेरिच्छेसु वा अचेयणेसु वा' आर्यिकाओं को ऐसा बोलना चाहिए। १. 'तिरिक्खिएसु' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। २. 'मणुण्णामणुण्णेसु' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। ३. औषधि व तेल आदि के बर्तन। ४. बिना पाये का फड़ पाटे आदि। ५. शय्या-वसति। ६. उपशय्या-देवकुल आदि स्थान।

पाणादिभेएण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरयं बद्धं बद्धावियं बद्धज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।५।।

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं, से असणं पाणं खाइयं साइयं चेदि चउव्विहो आहारो, से तित्तो वा कडुओ वा कसाइलो वा अमिलो[1] वा महुरो वा लवणो वा दुच्चिंतिओ दुब्भासिओ दुप्परिणामिओ दुस्सिमिणिओ रत्तीए भुत्तो भुंजवियो भुज्जिजंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।छ।।

पंचसमिदीओ ईरियासमिदी भासासमिदी एसणासमिदी आदाण-णिक्खेवणसमिदी उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणासमिदी चेदि। तत्थ ईरिया-समिदी पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिम-चउदिसि-विदिसासु विहर-माणेण जुगंतर-दिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा डवडव-चरियाए पमाददोसेण पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।६।।

भोजनपानादिक भेदों से बहुविध परिग्रह के लेने में।
जो अठविध कर्मों को मैंने, बांधा है अज्ञानादी से।
पर को भी बंध कराया हो या करते को अनुमति दी हो।।
जो परिग्रह त्याग में दोष किये, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।५।।
अब अन्य **छठे अणुव्रत** में भी रात्री भोजन से विरती है।
इसमें भोजन पानक व खाद्य अरु स्वाद्य चतुर्विध भोजन है।।
इसमें जो तीखा कटु कषायला खट्टा मीठा लवणमयी।
जो कुछ अयोग्य वस्तू खाने का चिंतन किया व प्रेरणा दी।।
अथवा अयोग्य आहार किया या स्वप्न में मैंने खाया हो।
या पर को खिलाया अनुमति दी वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।छ।।
पण समिति में ईर्यासमिति व भाषासमिति एषणासमिती है।
आदान-निक्षेपण समिति अरू मलमूत्रादिविसर्जन समिती है।।
इसमें ईर्यासमिती पूर्वोत्तर दक्षिण पश्चिम चउदिश में।
विदिशा में भी चलना चाहिए चउ हाथ देखकर आगे में।।
फिर भी प्रमाद से शीघ्र चला या इधर-उधर मुख कर करके।
जो प्राण भूत अरु जीव सत्त्व का घात किया नहिं लख करके।।
या पर से घात कराया हो या करते को अनुमति दी हो।
ईर्यासमिती में दोषों का वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।६।।

१. 'कषाओ वा अंबिलो' इति पाठः ग्रंथत्रयीषु।

तत्थ भासासमिदी कक्कसा कडुया (कडुआ) परुसा णिट्ठुरा परकोहिणी[१] मज्झंकिसा[२] अइमाणिणी अणयंकरा छेयंकरा[३] भूयाण वहंकरा[४] चेदि दसविहा भासा-भासिया भासाविया भासिज्जंतो पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।७।।

तत्थ एसणासमिदी आहाकम्मेण वा पच्छाकम्मेण वा पुराकम्मेण वा उद्दिट्ठयडेण वा णिद्दिट्ठयडेण वा कीडयडेण वा साइया रसाइया सइंगाला सधूमिया अइगिद्धीए अग्गिव छण्हं जीवणिकायाणं विराहणं काऊण अपरिसुद्धं[५] भिक्खं अण्णं पाणं आहारादियं आहारियं आहाराविय आहारिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।८।।

भाषासमिती में कर्कश[६] कडुवे मर्मभेदि[७] निष्ठुर वच हैं।
परक्रोधजनक हड्डी में घुसते मध्यंकृश[८] अतिमदकर[९] है।।
विद्वेषकरी अनयंकर[१०] छेदंकर निमूलनाशी वच हैं।
प्राणी की वधकर ये दशविध की भाषा जिनमतभाषित हैं।।
ऐसी भाषा बोली मैंने या पर से भी बुलवायी हो।
बोलते अन्य को अनुमति दी वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।७।।

एषणसमिती में अध:कर्म[११] है महादोष उसको करके।
पश्चात्[१२] कर्म या पुराकर्म[१३] उद्दिष्ट[१४] निर्दिष्ट[१५] क्रीत[१६] युत से।।
स्वादिष्ट रसीले आसक्तिक इंगाल[१७] व धूमदोष[१८] करके।
अतिगृद्धी से ही अग्नीसम छह जीवकाय बाधा करके।।
नहिं योग्य[१९] अन्नपान भिक्षा आहार लिया या लिवाया हो।
लेते को भी अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।८।।

---

१. ''परकोविणी'' इति पाठ:। २. 'मज्झकिसा' इति पाठ:। ३. 'छेयंकरी' इति पाठ:। ४. ''वहंकरी इति पाठ: ग्रंथत्रयीषु। ५. 'अपरिसुद्धा' इति पाठ: ग्रंथत्रयीषु। ६. संताप जनक वचन। ७. परुषा-मर्मभेदी। ८. हड्डी में भी छेद कर दे ऐसी भाषा मध्यकृशा है। ९. अति घमंड सूचक भाषा। १०. अनयंकरा- शीलव्रतों का खंडन करने वाली या परस्पर में विद्वेष करने वाली। ११. षट्कायजीव के घात आदि आरंभ को स्वयं करके भोजन बनाना अध:कर्म है। १२. मुनि के आहार कर जाने के बाद भोजन बनाना। १३. मुनि के आने पर भोजन बनाना। १४. मुनि या देवता या पाखंडी आदि का उद्देश्य करके भोजन बनाना। १५. आपके लिए यह वस्तु बनायी है ऐसा कहना। १६. मुनि के घर में आने पर अन्य जगह से भोजन खरीद कर लाना। १७. अत्यासक्ति से आहार लेना इंगाल दोष है। १८. दाता या भोज्य वस्तु की निन्दा करते हुए आहार लेना। १९. अपरिशुद्ध-अयोग्य आहार।

तत्थ आदाणणिक्खेवणसमिदी चक्कलं वा फलहं वा पोथयं वा कमंडलुं वा वियडिं वा मणिं वा एवमाइयं उवयरणं अप्पडिलेहिऊण गेण्हंतेण वा ठवंतेण वा पाणभूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।९।।

तत्थ उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणिया समिदी रत्तीए वा वियाले वा अचक्खुविसए अवत्थंडिले अब्भोवयासे[१] सणिद्धे सबीए सहरिए एवमाइऐसु अप्पासुगट्ठाणेसु पइट्ठावंतेण पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१०।।

तिण्णि गुत्तीओ, मणगुत्तीओ वचिगुत्तीओ कायगुत्तीओ[२] चेदि, तत्थ मणगुत्ती अट्टे झाणे रुद्दे झाणे इहलोयसण्णाए परलोयसण्णाए आहारसण्णाए भयसण्णाए

आदान निक्षेपण समिती में चक्कल[३] पाटा या ग्रंथों को।
या कमंडलु विकृती या मणि इत्यादिक बहु उपकरणों को।।
पिच्छी से शोधन नहिं करके धरते या उठाकर लेने से।
जो प्राण भूत अरु जीव सत्त्व का घात किया हो प्रमाद से।।
पर से उपघात कराया हो या करने की अनुमति दी हो।
इस समिती में जो दोष हुआ, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।९।।

उत्सर्ग समिति मल मूत्र थूक कफ विकृति विसर्जन करने में।
रात्री में या संध्या[४] में नयन अगोचर अप्रासुक[५] थल में।।
स्थान खुला गीली भू हरितघासयुत बीज सहित थल में।
इत्यादि अप्रासुक थल में जो मल आदि त्याग के करने में ।।
जो प्राण भूत अरु जीव सत्त्व का घात किया या कराया हो।
करते को भी अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१०।।

मनगुप्ति वचनगुप्ती व कायगुप्ती त्रयगुप्ती हैं इनमें।
जो आर्तध्यान अरु रौद्र ध्यान इह भव अरु परभव संज्ञा में।।
आहार व भय मैथुन परिग्रह, इन चारों ही संज्ञाओं से।
इत्यादि अशुभ संकल्पों से मन को न नियंत्रित रखने से।।

---

१. 'अब्भावयासे' इति पाठ:। २. 'मणगुत्ति वचिगुत्ति कायगुत्ति' इति पाठ:। ३. इसका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है। ४. वियाले-विकाल, संध्या आदि। ५. अवथंडिल-अपस्थंडिल-अप्रासुक भूमि।

मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए एवमाइयासु जा मणगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।११।।

तत्थ वचिगुत्ती इत्थिकहाए अत्थकहाए भत्तकहाए रायकहाए चोरकहाए वेरकहाए परपासंडकहाए एवमाइयासु जा वचिगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१२।।

तत्थ कायगुत्ती चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा कट्ठकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा एवमाइयासु जा कायगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१३।।

णव बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, दोसु अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामेसु, मिच्छाणाण[१]-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु

नहिं रखी सुरक्षित मनगुप्ती नहिं अन्यों से रखवायी हो।
नहिं रखते को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।११।।
वचगुप्ती मे जो स्त्री कथा धन कथा व भोजन राजकथा।
अरु चोर वैर की कथा व परपाखंड कथा इत्यादि कथा।।
इनको कर मैं वचगुप्ती की रक्षा नहिं की न करायी हो।
नहिं करते को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१२।।
जो कायगुप्ति में चित्रकर्म[२] या पुस्तकर्म[३] या काठकर्म[४]।
या लेप्यकर्म इत्यादि विविध स्त्रीरूपादिक बिन चेतन।।
इनमें नहिं कायगुप्ति रक्खी पर से रक्षा न करायी हो।
नहिं रक्षण करते को अनुमति दी दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१३।।
नव[५] ब्रह्मचर्य गुप्ती चउ संज्ञा चार हि आस्रव[६] कारण हैं।
दो आर्तरौद्र संक्लेश भाव त्रय अप्रशस्तसंक्लेश[७] कहे।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्या चरित्र चउ उपसर्गा।
चारित्र पाँच छह जीवकाय छह आवश्यक अरु भय सप्ता।।

१. 'मिच्छणाण' इत्यादि पाठः। २. चित्र में स्त्री आदि के रूप हों। ३. घास फूस मिट्टी अदि से बनी हुई झांकियां। ४. लकड़ी के बने हुए स्त्री आदि रूप। ५. मनुष्यिनी देवी और सिंचनी को मन वचन काय से गुणा करने से नव भेद हुए या सामान्य स्त्री को मन वचन काय से व कृत कारित अनुमोदना से गुणा करने पर नव भेद हुए। ६. प्रत्यय-आस्रव के कारण मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार हैं। ७. अप्रशस्त संक्लेश परिणाम-मिथ्या, माया और निदान ये तीन हैं।

जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु, णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारस-सीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुण-सयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अट्ठमियम्मि[१] पक्खियम्मि[२] चउमासियम्मि[३] संवच्छरियम्मि[४] अइक्कमो वदिकम्मो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ती होउ मज्झं।

(केवलमाचार्या "णमो अरहंताणं" इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं कृत्वा "थोस्सामि" इत्यादि भणित्वा "तवसिद्धे" इत्यादि गाथां सांचलिकां पठित्वा, पुनः प्रागुक्तविधिं कृत्वा "प्रावृट्काले सविद्युत्" इत्यादिकां योगिभक्तिं सांचलिकां पठित्वा "इच्छामि भंते! चरित्ताचारो तेरसविहो" इत्यादि दण्डक पंचकमधीत्य तथा "वदसमिदिंदिय" इत्यादिकं "छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं" इत्यन्तं त्रिःपठित्वा स्वदोषान् देवस्याग्रे आलोचयेत्। दोषानुसारेण प्रायश्चितं च

अठशुद्धी नव ब्रह्मचर्यगुप्ति दश श्रमण धर्म दश धर्म ध्यान।
दश मुंडन बारह संयम बाइस परिषह भावना बीस पांच[५]।।
पच्चीस क्रिया अठरह हजार हैं शील व गुण चौरासि लाख।
अठबीस मूलगुण बहु उत्तरगुण इन सबमें कीना विघात।।
इन[६] पन्द्रह दिनों में पाक्षिक में अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अरू।
जो अनाचार आभोग अनाभोग उन सबका प्रतिक्रमण करूं।।
प्रतिक्रमण सुकरते हुए मेरा सम्यक्त्वमरण व समाधिमरण।
हो पंडितमरण व वीर्यमरण जिससे नहिं होवे पुनः मरण।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय होवे मम बोधिलाभ होवे।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण मम जिनगुणसंपति होवे।।

(केवल आचार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिक दण्डक पढ़कर कायोत्सर्ग करके 'थोस्सामिस्तवन' पढ़कर लघु सिद्ध भक्ति अंचलिका सहित पढ़ें। पुनः पूर्वोक्त विधि करके लघु योगिभक्ति अंचलिका सहित पढ़कर "हे भगवन् ! इच्छा करता हूँ" इत्यादि चारित्रालोचना पढ़कर 'व्रत समिति' इत्यादि 'छेदोपस्थापन मेरा हो' इसे तीन बार पढ़कर अपने दोषों की भगवान के सामने

१. अष्टमी की आलोचना में इसे बोलें। २. पाक्षिक प्रतिक्रमण में इसे बोलें। ३. चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में इसे बोलें। ४. वार्षिक प्रतिक्रमण में इसे बोलें। ५. पच्चीस। ६. चातुर्मासिकप्रतिक्रमण में ऐसा बोलें-"चउमहिने में चउमासिक में" एवं वार्षिक में ऐसा बोलें-"बारहमहिने में वार्षिक में" इत्यादि।

गृहीत्वा "पंचमहाव्रत" इत्यादि पाठं त्रिर्भणित्वा योग्यशिष्यादेः प्रायश्चित निवेद्य देवाय गुरूभक्तिं दयात्। सूरेः-स्वीकृतप्रायश्चित्तस्याचार्य अग्रे लघुसिद्धभक्तयादिकं तु साधूनामप्याचार्येण समानं बोध्यं।)

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

("णमो अरहंताणं" इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं कृत्वा थोस्सामीत्यादि भणित्वा-)

लघु सिद्धभक्ति

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१।।
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

इच्छामि भंते! सिद्धभक्तिकस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं अट्ठगुण-संपण्णाणं

आलोचना करें। दोषों के अनुसार प्रायश्चित लेकर "पंचमहाव्रत" आदि पाठ को तीन बार बोलें पुनः भगवान् के सामने गुरुभक्ति पढ़ें। अनन्तर आचार्य के समक्ष सभी शिष्यवर्ग पूर्वोक्त विधि से लघु सिद्ध-भक्ति, लघु योगिभक्ति व चारित्रालोचना पढ़कर गुरु के समक्ष ही अपने दोषों की आलोचना करें तब आचार्यदेव शिष्यों को योग्य प्रायश्चित प्रदान करें। इसके बाद सभी शिष्य वर्ग भी आचार्यभक्ति पढ़कर गुरु की वंदना करें। उसी का स्पष्टीकरण)।

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

("णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिक दण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके थोस्सामिस्तवन पढ़कर लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।)

लघु सिद्धभक्ति —

समकित दर्शनज्ञान वीर्य सूक्ष्मत्व तथा अवगाहन हैं।
अव्याबाध अगुरुलघु ये सिद्धों के आठ महागुण हैं।।१।।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध सुसंयमसिद्ध चरित सिद्धा।
ज्ञान सिद्ध दर्शन से सिद्ध नमूं सब सिद्धों को शिरसा।।२।।

अंचलिका —

हे भगवन् ! श्री सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।१।।
अठविधि कर्म रहित प्रभु ऊर्ध्वलोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध सुसंयमसिद्ध चरित सिद्ध जो।।२।।

उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजम-सिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थमालोचनायोगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

("णमो अरहंताणं" इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं कृत्वा थोस्सामीति पठित्वा-)

लघु योगिभक्ति

प्रावृट्काले सविद्युत्-प्रपतित-सलिले वृक्षमूलाधिवासाः
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता गिरिशिखर-गताः स्थानकूटान्तरस्थाः
ते मे धर्मं प्रदद्यु-र्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः।।१।।

गिम्हे गिरि-सिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूल-रयणीसु।
सिसिरे वाहिर-सयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।२।।

भूत भविष्यत वर्तमान कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूं, वंदूं नमूं भक्ति युक्ता।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं मम जिनगुण संपति होवे।।४।।

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं आलोचनायोगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं-

(णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके थोस्सामिस्तवन पढ़कर लघु योगिभक्ति पढ़कर चारित्रालोचना पढ़ें।)

लघु योगिभक्ति-

बिजली चमके अतिजल वर्षे, वर्षा में तरुतल बैठें।
शीतकाल रात्रि में निर्भय, काष्ठ सदृश निर्मम तिष्ठें।।
गर्मी में रविकिरण तप्त गिरि, शिखरों पर निज ध्यान धरें।
शिवपथ पथिक साधु पुंगव वे, मुझको धर्म प्रदान करें।।१।।

ग्रीष्मऋतु में पर्वत ऊपर, वर्षा में तरु के नीचे।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूं रुचि से।।२।।

गिरिकन्दर - दुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्र-पुटाहारास्ते यांति परमां गतिम्।।३।।

इच्छामि भंते! योगिभत्तिकाउसग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्ज-दीव-दोसमुद्देसु पण्णारस-कम्मभूमिसु आदावण-रुक्ख-मूलअब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्क-पास-कुक्कुडासण-चउ-छ-पक्ख-खवणादिजोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

आलोचना —**इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवीकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा**

पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर तनु रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।३।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! इस योगिभक्ति का, कायोत्सर्ग किया रूचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूं मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।

मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूं वंदूं नमस्कार भी, करूं सतत वन्दना करूं।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपति होवे।।३।।

चारित्रालोचना

शंभु छंद- हे भगवन् ! इच्छा करता हूँ, चारित्राचार त्रयोदशविध।
ये पाँच महाव्रत पांच समिति, अरु तीन गुप्तिमय जिनभाषित।।
इनमें हिंसा का त्याग महाव्रत प्रथम कहा है जिनवर ने।
भूकायिक जीव असंख्यातासंख्यात व जलकायिक इतने[1]।।

---

१. जलकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं।

असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणफ्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया वीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।१।।

वेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिम्मिसंख-खुल्लय वराडय-अक्ख-रिट्ठ-गंडवाल-संबुक्क-सिप्पिपुलविकाइया (पुलविआइया) एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।२।।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु-द्देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।३।।

अग्नीकायिक भि असंख्यातासंख्यात पवनकायिक इतने[1]।
जो वनस्पतिकायिक प्राणी, वे सभी अनन्तानन्त भणें।।
ये हरित बीज अंकुर स्वरूप, नानाविध छिन्न-भिन्न भी हो।
इन सबको प्राणों से मारा, संताप दिया पीड़ा दी हो।।
उपघात किया मनवचतन से, या अन्यों से करवाया हो।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।

दो इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुक्षि कृमि[2] शंख कहे।
क्षुद्रक कौड़ी व अक्ष अरिष्टय[3], गंडबाल लघु शंख कहे।।
जो सीप जोंक आदिक इनको, मारा या त्रास दिया भी हो।
पीड़ा दी या उपघात किया, या पर से भी करवाया हो।।
या करते को अनुमति दी हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।

त्रय इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुंथु[4] देहिक बिच्छू।
जूं गोजों[5] खटमल इन्द्रगोप, चिउंटी आदिक बहुविध जन्तु।।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।

---

१. वायुकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। २. लट, घाव आदि के जीव। ३. बच्चों के शरीर में पैदा हो जाते हैं ऐसे क्षुद्र जीव। ४. सूक्ष्म जीव। ५. गाय के स्तन में रहने वाले सूक्ष्म जीव।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंस-मसय-मक्खिय-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमक्खियाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।४।।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदि-जोणिपमुह-सदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।।५।।

वदसमिदिं-दियरोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदिसयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।।३।।

-आचार्य श्री से प्रायश्चित्त लेने की विधि-

(गवासन से बैठकर पिच्छिका सहित अंजलि जोड़कर-

हे स्वामिन् ! अस्मिन् पक्षे (चातुर्मासे या संवत्सरे) अष्टाविंशतिमूलगुणेषु (एकादशप्रतिमासु या सप्तमप्रतिमासु) दिवसे वा रात्रौ वा आहारे विहारे निहारे च, जागरणे स्वप्ने च, मनसा वचसा

चउ इंद्रिय जीव अंसख्यातासंख्यात उन्हों में डांस मशक।
बहु कीट पतंगे भ्रमर मधूमक्खी गोमक्खी आदि विविध।।
इनको मारा परिताप विराधन, या उपघात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।।
पंचेंन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात इन्हों में अण्डज हैं।
पोतज व जरायुज रसज पसीनज सम्मूर्छन उद्भेदिम हैं।।
उपपाद जन्मयुत भी चौरासी, लाख योनि वालों में जो।
इनको मारा संताप दिया पीड़ा दी घात किया हो जो।।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।५।।
व्रत समिति इंद्रियनिरोध छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ!।।१।।
(तीन बार पढ़ें)

कायेन कृतकारितानुमोदनैः, क्रोधेन मानेन मायया लोभेन रागेण द्वेषेण मोहेन भयेन लज्जया प्रमादेन ज्ञाताज्ञातभावेन च मया अतिक्रमव्यतिक्रम-अतिचार-अनाचारादयो ये केचित् दोषाः संजाताः तेषां शुद्ध्यर्थं भवद्भिः मे प्रायश्चित्तं प्रदीयताम् ।)

प्रायश्चित्तशोधनरसपरित्यागः क्रियते।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रियरोध लोच-षडावश्यक-क्रियादयोऽष्टा-विंशतिमूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपा-ध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

नमोऽस्तु निष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः, स्वपर-मतविभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।।
छत्तीस-गुणसमग्गे, पंचविहा-चारकरण-संदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्माइरिए सदा वंदे।।२।।
गुरुभत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति।।३।।

(आचार्यश्री से प्रायश्चित्त लेवें)

प्रायश्चित शुद्धि के लिए रस परित्याग आदि करें।

पंचमहाव्रत पंचसमिति पंचेन्द्रियरोध लोच षडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणाः उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिलक्षगुणाः त्रयोदशविधं चारित्रं द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।। (तीन बार बोलें)

नमोऽस्तु निष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(९ जाप्य)

श्रुतसमुद्र पारंगत स्वमत व परमतज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्रतप निधियुत गुणगुरु हे गुरु! तुमको करूं नती।।१।।
छत्तीस गुण से पूर्ण पांच आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रहनिपुण धर्मआचार्य सदा वंदूं तुमको।।२।।
गुरुभक्ति संयम से तिरते भव्य भयंकर भव वारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं पाते जन्ममरण व्याधी।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुलाः
षट्कर्माभि-रतास्तपोधनधनाः, साधुक्रियाः साधवः।
शील-प्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिका
मोक्षद्वार-कपाटपाटन-भटाः, प्रीणंतु मां साधवः।।४।।
गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञान - दर्शन - नायकाः।
चारित्रार्णव - गंभीरा, मोक्ष - मार्गोपदेशकाः।।५।।

इच्छामि भंते! पक्खियम्मि (चउमासियम्मि) (संवच्छरियम्मि) आलोचेउं पंचमहव्वयाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदिण्णदाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं

व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट् आवश्यकरत साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुण आयुधयुत सूर्य चन्द्र से तेज अधिक।
मोक्ष द्वार उद्घाटन योद्धा साधु हो प्रसन्न मुझ प्रति।।४।।
ज्ञान दर्श के नायक गुरुवर नित मेरी रक्षा करिये।
चरितजलधिगंभीर मोक्षपथ उपदेशक पथ में धरिये।।५।।

(पुनः सभी साधुवर्ग आचार्यश्री के सामने पूर्वोक्त सिद्धभक्ति, योगिभक्ति चारित्रालोचना पढ़कर गुरु के पास दोषों की आलोचना कर प्रायश्चित ग्रहण करें। अनन्तर आचार्य भक्ति द्वारा गुरु की वंदना करें। बाद में आचार्य के साथ-साथ आगे का पाठ पढ़ें।)

दोहा

भगवन् ! मैं पाक्षिक सभी दोष विशोधन हेत ।
(भगवन् ! चउमासिक[1] सभी दोष विशोधन हेत।।)
(भगवन् ! मैं वार्षिक[2] सभी दोष विशोधन हेत।)
(भगवन् ! मैं यौगिक[3] सभी दोष विशोधन हेत।।)
चाहूं आलोचन करन श्रद्धाभक्ति समेत।।१।।

शंभु छंद

हैं पांच महाव्रत उनमें प्रथम, महाव्रत प्राणी वध विरती।
दूजा महाव्रत असत्यविरती, तीजा अदत्त से है विरती।।
चौथा महाव्रत मैथुन विरती, पंचम परिग्रह से विरती है।
छट्ठा अणुव्रत रात्रिभोजन, से विरती पुनि त्रय गुप्ती हैं।।२।।

१. चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में ऊपर की पंक्ति की जगह यह पंक्ति पढ़ें। २. वार्षिक में यह पंक्ति पढ़ें। ३. युगप्रतिक्रमण में यह पंक्ति पढ़ें।

मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राईभोयणादो वेरमणं, तिसु गुत्तीसु णाणेसु दंसणेसु चरित्तेसु बावीसाए परीसहेसु पणवीसाए भावणासु पणवीसाए किरियासु अट्ठारस-सील-सहस्सेसु चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु बारसण्हं संजमाणं बारसण्हं तवाणं बारसण्हं अंगाणं तेरसण्हं चरित्ताणं चउदसण्हं पुव्वाणं एयारसण्हं पडिमाणं दसविह-मुंडाणं दसविह-समणधम्माणं दसविह-धम्मज्झाणाणं णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं णवण्हं णोकसायाणं सोलसण्हं कसायाणं अट्ठण्हं कम्माणं अट्ठण्हं पउयणमाउयाणं सत्तण्हं भयाणं सत्तविह-संसाराणं छण्हं जीवणिकायाणं छण्हं आवासयाणं पंचण्हं इंदियाणं पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं समिदीणं पंचण्हं चरित्ताणं चउण्हं सण्णाणं चउण्हं पच्चयाणं चउण्हं उवसग्गाणं मूलगुणाणं उत्तरगुणाणं अट्ठण्हं सुद्धीणं दिट्ठियाए पुट्ठियाए पदोसियाए परिदावणियाए से कोहेण वा माणेण

पणज्ञान व दर्शन चारित में, बाईस परीषह सहने में।
पच्चीस भावना क्रिया पचीस व अठरह हजार शीलों में।।
चौरासी लाख गुणों में बारह संयम बारह अंगों में।
तेरह चारित चौदह पूरब ग्यारह प्रतिमा दश मुंडों में।।३।।
दश श्रमण धर्म दश धर्म ध्यान नव ब्रह्मचर्य[1] गुप्ती उनमें।
नव नो कषाय सोलह कषाय अठ कर्म अठ प्रवचन माता में।।
भय सप्त सप्त संसार जीव षट्काय व छह आवश्यक में।
पंचेन्द्रिय पांच महाव्रत पांच समिति अरु पांच चरित्रों में।।४।।
चउ संज्ञा चउ प्रत्यय[2] व चार उपसर्ग मूलगुण अठबिस में।
उत्तर गुण में अठ शुद्धी में जो कुछ भी दोष हुए इनमें।।
जो अशुभराग से महिलादी (पुरुषादी[3]) को अवलोका स्पर्शा हो।
मन वचन काय की दुष्ट क्रिया से प्रादोषिक किरिया की हो।।५।।

१. नव ब्रह्मचर्यगुप्ती-(१) स्त्रियों में विषयों की अभिलाषा (२) अंग-विमोक्षलिंगविक्रोशन (३) गरिष्ठ आहार (४) स्त्री, पशु, नपुंसक से संसर्गित वसति आदि का सेवन (५) स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण (६) स्त्रियों की प्रशंसा आदि (७) अतीत भोगों का स्मरण (८) आगे भोगों की अभिलाषा, (९) इष्ट विलेपन, गीत नृत्यादि करना या देखना आदि। ये नव अब्रह्म हैं इनका त्याग करना नव ब्रह्मचर्यगुप्तियां हैं-ब्रह्मचर्य की रक्षक हैं। २. मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार प्रत्यय-आस्रव के कारण हैं। ये ही बंध के भी कारण हैं। प्रमाद को यहां अविरति में गर्भित समझना चाहिए। ३. आर्यिकायें ''पुरुषादी'' पाठ पढ़ें।

वा माणेण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा एदेसिं अच्चासणदाए तिण्हं दंडाणं तिण्हं लेस्साणं तिण्हं गारवाणं तिण्हं अप्पसत्त्थ-संकिलेस-परिणामाणं दोण्हं अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामाणं मिच्छणाण-मिच्छदंसण-मिच्छचरित्ताणं मिच्छत्तपाउग्गं असंजमपाउग्गं कसायपाउग्गं जोगपाउग्गं अपाउग्ग[१]-सेवणदाए पाउग्ग-गरहणदाए इत्थ मे जो कोई वि पक्खियम्मि (चउमासियम्मि) (संवच्छरि-यम्मि) अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भन्ते! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ

इनमें जो क्रोध मान माया से लोभ राग या द्वेष निमित।
या मोह हास्य या भय प्रदोष व प्रमाद प्रेम गृद्धी निमित्त।।
लज्जा से या गारव से जो व्रत आदि में आसादना किया।
उन दोषों की शुद्धी हेतू पाक्षिक में आलोचना किया।।६।।

त्रय दंड अशुभ त्रय लेश्यायें, त्रय गारव–ऋद्धि स्वाद रस के।
त्रय अप्रशस्त संक्लेशभाव, दो आर्त रौद्र संक्लेशों के।।
मिथ्या कुज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्या चारित मिथ्या भिप्राय।
असंयम कषाय[२] योग माने इन तीनों के प्रायोग्य भाव।।७।।

अप्रायोग्य सेवन–नहिं करने योग्य कार्य को किया यदी।
प्रायोग्य–योग्य सम्यक्त्व आदि भावों की गर्हा किया यदी।।
इनसे जो कुछ भी पाक्षिक[३] में अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार किया।
या अनाचार आभोग व अनाभोग करके बहु दोष किया।।८।।

हे भगवन् ! उसका प्रतिक्रमण करता हूँ ऐसे मेरा प्रभु।
सम्यक्त्वमरण रू समाधि व पंडितमरण वीर्ययुत मरण प्रभू।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे प्रभु बोधिलाभ होवे।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण जिनगुण की संप्राप्ती होवे।।९।।

१. ''अप्पपाउग्ग'' इति पाठान्तरं। २. बारह प्रकार के असंयम को किया हो, सोलह कषायें की हों और मन–वचन काय के तीन योग किये हों। ३. चातुर्मासिक में यहां ''चउमासिक'' बोलें और वार्षिक में यहाँ ''वार्षिक'' बोलें।

कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदिसयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।।३।।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोध-लोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टा-विंशति-मूलगुणा:, उत्तमक्षमामार्दवा-र्जव-सत्यशौच-संयम-तपस्त्यागा-किञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्म:, अष्टादश-शीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणा:, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-साक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

प्रतिक्रमणभक्ति:

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं [१]पाक्षिकप्रतिक्रमणायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं प्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्-

व्रत समिती इंद्रियनिरोध छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन स्थिति भुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा छेदोपस्थापन हो नाथ।।१।।

(तीन बार)

पंचमहाव्रत–पंचसमिति–पंचेन्द्रियरोध–लोच षडावश्यकक्रियादयोऽ–ष्टाविंशतिमूलगुणा: उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य–ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्म: अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिलक्षगुणा: त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु। (तीन बार बोलें)

प्रतिक्रमण भक्ति

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं [१]पाक्षिकप्रतिक्रमणायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं प्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं–

१. 'चातुर्मासिकप्रतिक्रमण' में 'चातुर्मासिक' बोलें और वार्षिक प्रतिक्रमण में 'वार्षिक' बोलें।

(इच्युच्चार्य ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं ससूरय: साधव: विदध्यु:)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु पण्णारस-कम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदि-यराणं तित्थ-यराणं जिणाणं जिणो-त्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं,

---

(ऐसा उच्चारण करके ''णमो अरिहंताणं'' इत्यादि सामायिक दंडक को पढ़कर कायोत्सर्ग करें। यहां तक यह क्रिया आचार्य और साधुओं की एक साथ होती है। पुन: सभी शिष्यवर्ग स्थिरचित्त से बैठे रहते हैं, केवल आचार्य ही थोस्सामि पढ़कर आगे के सारे दंडक सूत्रों को पढ़ते हैं। अन्य साधु-शिष्यगण सुनते रहते हैं।)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।१।।

चत्तारिमंगलं-अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारिलोगुत्तमा-अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमाकेवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि-अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत पन्द्रह कर्म भूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत, भवपारंगत धर्माचार्य धर्म देशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान्।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूं वंदना मैं कृतिकर्म विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर नमूं सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

धम्मदेसगाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवर-चाउरंग-चक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामायियं सव्व-सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि, तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(सप्तविंशत्युच्छ्वासेषु ९ जाप्यं)

(यथोक्तपरिकर्मानन्तरं आचार्य: ''थोस्सामि'' इत्यादि दण्डकं गणधरवलयं च पठित्वा प्रतिक्रमणदंडकान् पठेत्। शिष्यधर्माणस्तु तावत्कालं कायोत्सर्गेण तिष्ठन्त: प्रतिक्रमणदंडकान् शृणुयु:।)

(यहाँ से लेकर वीरभक्ति की प्रतिज्ञा के पहले तक का प्रकरण केवल आचार्य ही पढ़ें। तब तक सभी शिष्यवर्ग बैठे-बैठे सुनते रहें ऐसा विधान है।)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोय-महिए, विहुयरयमले महप्पण्णे।।१।।
लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

भगवन् ! सामायिक करता हूँ सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन काय मन त्रिकरण से न करूं दु:खकर।।५।।

नहीं कराऊं नहिं अनुमोदूं हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूं निंदूं गर्हूं अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की करूं उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुष्चारित का मैं त्याग करूं स्वयमेव।।७।।

(यहां से केवल आचार्य ही पढ़ें-)

थोस्सामि स्तवन

स्तवन करूं जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।

लोकोद्योतक धर्म तीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूं।
जिनचउवीस अर्हंत तथा, केवलि गण का गुण गान करूं।।२।।

उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल-सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।

एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहंदिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपहासंत्ता।
सायरमिव गम्भीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।

प्रतिक्रमणदण्डक:

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु चन्द्र प्रभु का करूं नमन।।३।।

सुविधि नामधर पुष्दंत शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूं।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्म प्रभु शांतिनाथ प्रणमूं।।४।।

जिनवर कुंथु अरह मल्लि प्रभु मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊं।
अरिष्ट नेमी प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊं।।५।।

इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।

चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

(गणधरवलयमंत्रा:)

णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहिजिणाणं, णमो कोट्ठ-बुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो चउदसपुव्वीणं, णमो अट्ठंग-महा-णिमित्त-कुसलाणं, णमो

गणधरवलय मंत्र

शंभु छंद-

मैं नमूं जिनों[१] को जो अर्हन् अवधीजिन[२] मुनि को नमूं नमूं।
परमावधिजिन को नमूँ तथा, सर्वावधि जिन को नमूं नमूं।।
मैं नमूं अनंतावधिजिन[३] को, अरु कोष्ठबुद्धियुत साधु नमूं।
मैं नमूं बीजबुद्धीयुतमुनि, पादानुसारियुत साधु नमूं।।१।।

संभिन्नश्रोतृयुत साधु नमूं, मैं स्वयंबुद्ध मुनिराज नमूं।
प्रत्येक बुद्ध ऋषिराज नमूं, पुनि बोधित बुद्ध मुनीश नमूं।।
ऋजुमतिमनपर्यय साधु नमूं, मैं विपुलमतीयुत साधु नमूं।
मैं नमूं अभिन्न[४] सुदशपूर्वी, चौदशपूर्वी मुनिराज नमूं।।२।।

जब पं. पन्नालाल सोनी को प्रतिक्रमण-ग्रंथत्रयीषु में "इति गणधरवलयाख्य: प्रक्रिमणामंगलदंडक:" दिखाया तब उन्होंने कहा कि मैंने इन "णमो जिणाणं" आदि सूत्रों को गणधरवल न समझकर ही यह स्तोत्र जोड़ा था अगले संस्करण में इसे निकाल देना है। अत: इसेमैंने छाया में दिया है।

गणधरवलय:-

जिनान् जितारातिगणान् गरिष्ठान्, देशावधीन् सर्वपरावधींश्च।
सत्कोष्ठ-बीजादि-पदानुसारीन्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।१।।

संभिन्नश्रोत्रान्वित-सन्मुनीन्द्रान्, प्रत्येकसम्बोधित-बुद्धधर्मान्।
स्वयंप्रबुद्धांश्च विमुक्तिमार्गान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।२।।

---

१. जिन-अर्हंत् भगवान् अथवा अरहंत, सिद्ध सकलजिन हैं और आचार्य, उपाध्याय, साधु देशजिन्हैं (धवला पुस्तक ९, पृ. १०)। २. रत्नत्रयसहित अवधिज्ञानी मुनि अवधिजिन हैं (धवला पु. ९, पृ. ४०)। ३. अंत और अवधि से रहित केवली भगवान अनंतावधि जिन हैं (धवला पु.९ पृ. ५२)। ४. टीका के आधार से अभिन्नपद है।

विउव्व[१]-इड्ढि-पत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो पण्णसमणाणं[२], णमो आगास-गामीणं, णमो आसीविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं, णमो उग्गतवाणं, णमो दित्ततवाणं, णमो तत्ततवाणं, णमो महातवाणं, णमो घोरतवाणं, णमो घोरगुणाणं, णमो घोर-परक्कमाणं, णमो घोरगुण-बंभयारीणं[३], णमो आमोसहि-पत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विप्पोसहिपत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं,

---

अष्टांगमहानिमित्तकुशली, नमूं नमूं विक्रियाऋद्धि प्राप्त।
विद्याधरऋषि को नमूं नमूं मैं, संयत चारणऋद्धि[४] प्राप्त।।
मैं प्रज्ञाश्रमणमुनीश नमूं, आकाशगामि मुनिराज नमूं।
आशीविषयुत ऋषिराज नमूं दृष्टीविषयुतमुनिराज नमूं।।३।।

मैं उग्रतपस्वी नमूं दीप्ततपि नमूं तप्ततपसाधु नमूं।
मैं नमूं महातपधारी को, अरु घोरतपोयुत साधु नमूं।।
मैं नमूं घोरगुणयुत साधु, मैं घोरपराक्रम साधु नमूं।
मैं नमूं घोरगुणब्रह्मचारि, आमौषधिप्राप्त मुनीश नमूं।।४।।

क्ष्वेलौषधिप्राप्त मुनीश नमूं, जल्लौषधि प्राप्त मुनीश नमूं।
विप्रुष औषधियुत साधु नमूं, सर्वौषधिप्राप्त मुनीश नमूं।
मैं नमूं मनोबलि मुनिवर को, मैं वचनबली ऋद्धीश नमूं।
मैं कायबली मुनिनाथ नमूं, मैं क्षीरस्रावी साधु नमूं।।५।।

द्विधा-मनःपर्ययचित्त-प्रयुक्तान्, द्विपंचसप्त-द्वयपूर्वसक्तान् ।
अष्टाङ्गनैमित्तिक-शास्त्रदक्षान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।३।।

विकुर्वणाख्यार्द्धि महाप्रभावान्, विद्याधरांश्चारणप्रर्द्धिप्राप्तान्।
प्रज्ञाश्रितान्नित्यखगामिनश्च, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।४।।

आशीर्विषान् दृष्टिविषान्मुनीन्द्रा-नुग्रातिदीप्तोत्तम-तप्ततप्तान्।
महातिघोर-प्रतपःप्रसक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।५।।

---

१. विउण्वणइड्ढिपत्ताणं इति पाठः। २. पण्णासमणाणं इति पाठः। ३. घोरगुणबंभचारीणं इति पाठः। ४. चारणऋद्धि के आठ भेद हैं-जलचारण, जंघाचारण, तंतुचारण, फलचारण, पुष्पचारण, बीजचारण, आकाशचारण और श्रेणीचारण (टीका से)।

णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं[१], णमो अक्खीण-महाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदि महावीर-वड्ढमाण-बुद्धरिसीणो[२] चेदि।

जस्संतियं धम्मपहं णियच्छे[३] तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
काएण वाचा मणसावि णिच्चं, सक्काराए तं सिर-पंचमेण।।१।।

मैं घृतस्रावी मुनिराज नमूं, मैं मधुरस्रावी साधु नमूं।
मैं अमृतस्रावी साधु नमूं, अक्षीणमहानस साधु नमूं।।
मैं वर्धमान ऋद्धीश नमूँ, मैं सिद्धायतन समस्त नमूं।
मैं भगवत् महति महावीर, श्री वर्धमान बुद्धर्षि नमूं।।६।।

शेर छंद

जिनके निकट मैं धर्म पथ को प्राप्त किया हूँ।
उनके निकट ही विनयवृत्ति धार रहा हूँ।।
नित काय से वचन से और मन से उन्हीं को।
पंचांग नमस्कार करूं भक्तिभाव सो।।७।।

वन्द्यान् सुरैर्घोरगुणांश्च लोके, पूज्यान् बुधैर्घोरपराक्रमांश्च।
घोरादिसंसद्-गुणब्रह्मयुक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।६।।

आमर्द्धिखेलर्द्धि-प्रजल्लविट्प्र-सर्वर्द्धिप्राप्तांश्च व्यथादिहंतृन्।
मनोवचःकाय-बलोपयुक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।७।।

सत्क्षीरसर्पि-र्मधुरा-मृतर्द्धीन्, यतीन् वराक्षीण-महानसांश्च।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत्-प्रपूज्यान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।८।।

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्, श्रीवर्द्धमानर्द्धि-विबुद्धिदक्षान्।
सर्वान् मुनीन् मुक्तीवरानृषीन्द्रान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।९।।

नृसुर-खचरसेव्या विश्वश्रेष्ठर्द्धिभूषा।
विविधगुणसमुद्रा मारमातङ्गसिंहाः।
भवजलनिधिपोता वन्दिता मे दिशन्तु
मुनिगण-सकलान् श्रीसिद्धिदाः सदृषीन्द्रान्[४]।।१०।।

---

१. अमयसवीणं इति पाठः। २. रिसिणो इति पाठः। ३. णिगच्छे इति पाठः, ग्रंथत्रयीषु। ४. संसूचितो गणधरवलयपाठः प्रतिक्रमणपुस्तके नोपलब्धोऽतः सकलकीर्तिकृत गणधरवलयपूजातो निष्काश्य योजितः।

सुदं[१] मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा[२] महदि-महावीरेण[३] महा-कस्सवेण सव्वण्हुणा सव्वलोगदरिसिणा सदेवासुर-माणुसस्स लोयस्स आगदि-गदि-चवणो-ववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणो-माणसियं भूतं[४] कयं पडिसेवियं आदिकम्मं अरुह-कम्मं[५] सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणंता पस्संता विहरमाणेण समणाणं पंचमहव्वदाणि राइभोयणवेरमण-छट्ठाणि सभावणाणि समाउग-पदाणि सउत्तर-पदाणि सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि। तं जहा-

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, तिदिए महव्वदे अदिण्णदाणादो वेरमणं, चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं चेदि।

हे आयुष्मन्तों! वीर प्रभु की ध्वनि से मैंने सुना यहीं।
वे महाश्रमण भगवान महति, महावीर महाकाश्यपगोत्री।।
सर्वज्ञ सर्वलोकदर्शी, युगपत् सबको जानते हुए।
सब देव असुर मानवयुत इस तिहुंजग को भी देखते हुए।।
सबकी आगति गति च्यवन[६] जन्म, अरु बंध मोक्ष ऋद्धी[७] स्थिति[८]।
द्युति[९] अनुभाग[१०] अरु तर्कशास्त्र, सब कला[११] मनो अरु मानसीक[१२]।।
अनुभूत भूत[१३] कृत[१४] प्रतिसेवित[१५], कृषि आदिकर्म[१६] अकृतिमकर्म[१७]।
सम्पूर्ण लोक सब जीव सर्व भावों को भी युगपत् जानन् ।।
वे श्री विहार करते भगवन् जब समवसरण में राजे हैं।
मुनियों के लिए धर्म सम्यक् उसको उनने उपदेशा है।।
वह पांच महाव्रत रात्री भोजन विरति अणुव्रत छट्ठा है।
पच्चीस भावना आठ मातृकापद उत्तरपद संयुत है।।
वह यही कि जिसमें प्रथम, महाव्रत में प्राणीवध से विरती।
दूजे में असत्य से विरती, तीजे से अदत्त ग्रहण विरती।।
चौथे में मैथुन से विरती, पंचम महाव्रत परिग्रहविरती।
ये पांच महाव्रत छट्ठे, अणुव्रत में रात्रि भोजन विरती।।

---

१. 'सुधम्मे' इति पाठः। २. भयवदो इति पाठः। ३. महइमहावीरेण इति पाठः। ४. भुत्तं इति पाठः। ५. अरहकम्मं इति पाठः। ६. च्युत होना। ७. चक्रवर्ती और सौधर्म आदि का वैभव। ८. आयु की स्थिति। ९. तेज। १०. कर्मों की फलदान सामर्थ्य। ११. बहत्तर कलायें या गणित विद्या। १२. मन की चेष्टा। १३. पूर्व के अनुभूत। १४. पूर्व में किये गये। १५. पुनः सेवित। १६. युग की आदि में कहे गये असि, मषि आदि छः कर्म । १७. अकृत्रिम-द्वीप समुद्र आदि। (टीका के आधार से)।

तत्थ पढमे महव्वदे सव्वं भंते! पाणादिवादं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया (वचसा) काएण, से एइंदिया[१] वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, पुढविकाइए वा, आउकाइए वा, तेउकाइए वा, वाउकाइए वा, वणप्फदिकाइए वा, तसकाइए वा, अंडाइए वा, पोदाइए वा, जराइए वा, रसाइए वा, संसेदिमे वा, सम्मुच्छिमे वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा, तसे वा, थावरे वा, वादरे वा, सुहुमे वा, पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा, पज्जत्ते वा, अपज्जत्ते वा, अवि चउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु, णेव सयं पाणादिवादिज्ज णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंतो[२] वि ण समणुमणेज्ज तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं पाणे अदिवादिदे अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते वि समणुमण्णिदे तं पि

अब प्रथम महाव्रत में भगवन्! सब जीव घात को तजता हूं।
जीवन भर मैं मन वचन काय, से पूर्ण अहिंसा धरता हूं।।
एकेन्द्री द्वीन्द्री त्रय इंद्रिय, चउइंद्रिय पंचेद्री जीवा।
पृथ्वी जल अग्नी वायु, वनस्पतिकायिक त्रसकायिक जीवा।।१।।

अंडज या पोत जरायुज और रसायिक[३] संस्वेदज प्राणी।
संमूर्च्छन उद्‌भेदिम उपपादिम त्रस या स्थावर प्राणी।।
बादर व सूक्ष्म अरु प्राणभूत या जीव सत्त्व पर्याप्त सभी।
या अपर्याप्त भी चौरासी लख, योनि जन्म वाले सब भी।।२।।

जीवों का स्वयं न घात करे, नहिं पर से घात करावे भी।
प्राणातिपात करते अन्यों, को नहिं अनुमति भी देय कभी।।
भगवन्! इसके अतिचारों का, प्रतिक्रमण व निंदा करता हूं।
मैं अपनी गर्हा करता हूँ, पूरब के दोष को तजता हूँ।।३।।

हे भगवन्! मैंने जो भी रागद्वेष या मोह वशंगत हो।
जीवों का घात स्वयं कीना या अन्यों से करवाया हो।।
या जीवघात करते अन्यों को मैंने अनुमति भी दी हो।
उन सबको भी मैं तजता हूँ जो दोष किसी विध हूवे हों।।४।।

---

१. एइंद्रिये वा इत्यादि पाठः। २. 'ज्यंते पि' इति पाठः। ३. रस में उत्पन्न होने वाले जीव।

इमस्स णिग्गंथस्स पावयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्स-विहूसियस्स णव-बंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचागफलस्स[1] उवसम-पहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धि-मग्ग-पज्जव साणस्स[2] से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा अदंसणेण वा अविरिएण वा असंयमेण वा असमणेण[3] वा अणहिगमणेण वा अमिमंसिदाएण[4] वा अबोहिदाएण[5] वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आलसदाए[6] (बालिसदाए)[7] कम्मभारिगदाए कम्मगुरुगदाए कम्मदुच्चरिदाए[8] कम्मपुरुक्कडदाए तिगारव-गुरुगदाए अबहुसुद-दाए[9] अविदिद-परमट्ठदाए तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरिहामि

निग्रंथरूप यह पावन[10] है प्रवचन में कहा अनुत्तर है।
केवलिप्रणीत व अहिंसालक्षणवाला सत्य अधिष्ठित है।।
है विनय मूल इसका व क्षमा बल अठरह हजार शील मंडित।
चौरासी लाख गुणों भूषित नव ब्रह्मचर्य से नित रक्षित।।५।।
नियति-विषयव्यावृतिलक्षण व परिग्रह त्याग फलों वाला।
उपशम प्रधान यह क्षमामार्गदेशक मुक्तीपथ उजियाला[11]।।
यह सिद्धिमार्ग का चरमसीम इसमें जो मैंने दोष किए।
वह क्रोध मान माया व लोभ अज्ञान अदर्शन से हि हुए।।६।।
शक्ती से हीन असंयम से श्रद्धानरहित अप्रतिग्रहणा।
या बिना विचारे अबोध राग द्वेष मोह या हास्य मना।।
भय प्रदोष से व प्रमाद प्रेम विषयों की गृद्धी लज्जा से ।
गारव व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से मुझसे।।७।।
आलस से कर्मभार से कर्मों की गुरुता से कर्मों के।
दुश्चरित्र से कर्मों के उत्कटपने त्रिगारव गुरुता से।।

१. परिच्चाय इति पाठः। २. इति पाठः ग्रंथत्रयीषु। ३. 'असम्मणेव वा' इति पाठः-धर्मविषयेऽ-सम्मनमश्रद्धानं। ४. अमीमंसगदाए वा' इति पाठः। ५. 'अबोहियाए वा' इति पाठः । ६. 'अलसदाए' इति पाठः। ७. इति अधिकः पाठ ग्रंथत्रयीषु। ८. 'दुच्चरिगदाए' इति पाठः । ९. 'अबहुस्सुददाए' इतिपाठः। १०. पावयण-पावन है, या प्रवचन-परमागम में कथित है। ११. मुक्तिपथ प्रकाशक।

आगमेसिं च, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि[1] आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राईभोयणं (राई भोजणं)[2], वोस्सरामि दिवाभोयणमेगभत्तं पच्चुप्पण्णं

श्रुतज्ञान अल्पता से परमार्थ ज्ञान मुझको नहिं होने से।
दुश्चरित पूर्व में हुए उन्हीं सबकी गर्हा करता हूँ मैं।।८।।
होने वाले अत्याज्य भाव का प्रत्याख्यान मैं करता हूँ।
जिनका आलोचन नहीं किया उनका आलोचन करता हूं।।
अनिंदित और अगर्हित की मैं निंदा गर्हा करता हूँ।
जिनका प्रतिक्रमण नहीं कीया प्रतिक्रमण उन्हीं का करता हूँ।।९।।
मैं विराधना को तजता हूं, आराधन स्थिर करता हूँ।
अज्ञानत्रयी को तजता हूँ, संज्ञान पांच स्थिर करता हूँ।।
मिथ्यादर्शन को तजता हूँ, समकित को स्थिर करता हूँ।
मिथ्याचारित को तजता हूँ, सम्यक्चारित स्थिर करता हूँ।।१०।।
कुतप-बालतप तजता हूं, बारह तप में स्थिर होता हूं।
अकरणीय को तजता हूं, करणीय में स्थिर होता हूँ।।
प्राणातिपात को तजता हूं, अभयदान में स्थिर होता हूँ।
मैं झूठ वचन को तजता हूँ, वच सत्य में स्थिर होता हूँ।।११।।
अदत्तग्रहण को तजता हूँ दी गई योग्य में थिर होता हूँ।
अब्रह्मचर्य को तजता हूँ ब्रह्मचर्य में स्थिर होता हूँ।।
मैं सर्व परिग्रह तजता हूँ अपरिग्रह में स्थिर होता हूँ।
मन वचन काय कृत कारितादि से रात्रि भोजन तजता हूँ।।१२।।

१. 'वोसिरामि' इति पाठः। २. इति पाठांतरं ग्रंथत्रयीषु।

फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्टरुद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि किण्हणीलकाउलेस्सं[१] वोस्सरामि तेउपम्मसुक्कलेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयणमेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि दुवादसविहतवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि सम्मत्तं

सुसमयप्राप्त प्रासुक इकबार दिन भुक्ति में थिर होता हूँ।
आर्तरौद्र ध्यान को तजता हूँ, धर्मशुक्ल ध्यान स्थिर करता हूँ।।
कृष्ण नील कापोत तजता हूँ, पीत पद्म शुक्ल स्थिर करता हूँ।
मैं सब आरंभ छोड़ता हूँ, अनारम्भ में स्थिर होता हूँ।।१३।।
मैं सर्व असंयम तजता हूँ, संयम में सुस्थिर होता हूँ।
सग्रंथ अवस्था तजता हूँ, निर्ग्रन्थ में स्थिर होता हूँ।।
सवस्त्र अवस्था तजता हूँ, निर्वस्त्र में स्थिर होता हूँ।
मैं अलोच को परिहरता हूँ, कचलोच में स्थिर होता हूँ।।१४।।
स्नान क्रिया को तजता हूँ, अस्नान में स्थिर होता हूँ।
अभूमि शयन को तजता हूँ, भूशयन में स्थिर होता हूँ।।
मैं दंतधावन को तजता हूँ, अदंतधावन स्वीकरता हूँ।
अस्थिति भोजन को तजता हूँ,
इक भक्त स्थिति भुक्ति स्वीकरता हूँ।।१५।।
अपाणिपात्र को तजता हूँ, पाणिपात्र में स्थिर होता हूँ।
मैं क्रोध कषाय को तजता हूँ, मैं क्षमा में स्थिर होता हूँ।।
मैं मान कषाय को तजता हूँ, मार्दव में स्थिर होता हूँ।
मैं माया को परिहरता हूँ, आर्जव में स्थिर होता हूँ।।१६।।
मैं लोभ भाव को तजता हूँ, संतोष में स्थिर होता हूँ।
मैं अतप-कुतप को तजता हूँ, द्वादशतप में स्थिर होता हूँ।।

---

१. 'लेस्सा (ओ)' इति पाठः।

उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि, णिसल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि, आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं, संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं

मिथ्यात्व सभी छोड़ता हूँ, समकित की प्राप्ती करता हूँ।
सम्पूर्ण अशील छोड़ता हूँ, सुशील की प्राप्ती करता हूँ।।१७।।
मैं तीनों शल्य छोड़ता हूँ, निःशल्य की प्राप्ति करता हूँ।
मैं अविनयवृत्ति छोड़ता हूँ, विनयगुण स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अनाचार को तजता हूँ, आचार को स्वीकृत करता हूँ।
मैं सब उन्मार्ग छोड़ता हूँ जिनमार्ग को स्वीकृत करता हूँ।।१८।।
अक्षमा भाव को तजता हूँ, मैं क्षमा को स्वीकृत करता हूँ।
मैं त्रय अगुप्ति को तजता हूँ, त्रयगुप्ती स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अमुक्ति को परिहरता हूँ, सुमुक्ति स्वीकृत करता हूँ।
मैं असमाधी को तजता हूँ, सुसमाधी स्वीकृत करता हूँ।।१९।।
मैं ममता को परिहरता हूँ, निर्ममता स्वीकृत करता हूँ।
जो नहिं[१] भाये सो भाता हूँ, जो भाये[२] उन्हें न भाता हूँ।।
निर्ग्रन्थ रूप यह प्रवचन कथित अनुत्तर केवलि संबंधी।
रत्नत्रयमय नैकायिक[३] सम-एकत्वरूप सामायिक[४] भी।।२०।।
संशुद्ध[५] शल्ययुत जन का शल्यविघातक और सिद्धिपथ है।
यह श्रेणिमार्ग अरु क्षमामार्ग मुक्तीपथ तथा प्रमुक्ति पथ है।।
यह मोक्षमार्ग व प्रमोक्षमार्ग निर्यानपथ[६] रु निर्वाण[७] मार्ग।
यह सर्वदुःखपरिच्युतीमार्ग सुचरित्रपरिनिर्वाण मार्ग।।२१।।

---

१. अभावित-नहिं भाये-रत्नत्रय आदि। २. भावित-जो भाये-मिथ्यादर्शन असंयम आदि। ३. पूर्णरत्नत्रय निकाय में हुआ नैकायिक है। (टीकायां) ४. परम उदासीनता या सर्वसावद्ययोग का अभाव। ५. आलोचना और प्रायश्चित्त से विशुद्ध। ६. संसार पर्यटन से निकल जाना निर्यान' है। ७. संसार से छूट जाना या परमसुख प्राप्त कर लेना निर्वाण है।

सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं (भव्वं)[१] ण भविस्सदि, कयाचि वा कुदोचि वा[२] णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मिच्छाणाण-मिच्छा-दंसणमिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय राइय-पक्खिय (चउमासिय)[३] (संवच्छरिय)[४] इरियावहिकेसलोचाइचारस्स संथारा-दिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि। पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे

इसमें स्थित जीव सिद्ध होते बुद्ध होते मुक्ती पाते।
परिनिर्वाण प्राप्त करते, सब दुःखों का भि अंत करते।।
मैं इसकी श्रद्धा करता हूँ, इसकी ही प्राप्ति करता हूँ।
इसमें ही मैं रुचि रखता हूँ, इसका ही स्पर्श करता हूँ।।२२।।
इससे बढ़कर नहिं अन्य कोई नहिं हुआ न है नहिं होगा ही।
सुज्ञान से दर्शन से चरित्र से सूत्र से शील व गुण से ही।।
तप से व नियम से व्रत से अरु, आचरण तथा आश्रय से भी।
आर्जव लाघव या अन्य किसी से वीर्य से भी उत्कृष्ट यही।।२३।।
मैं श्रमण-मुनी हूँ संयत हूँ, मैं उपरत हूँ उपशांत भि हूँ।
परिग्रह वंचन व मान माया अरु असत्य से अतिविरक्त हूँ।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचरित्र से विरक्त हूँ।
जिन प्रणीत सम्यग्ज्ञान सुदर्शन चारित में रुचि रखता हूँ।।२४।।
जो मेरे से दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक
(चउमासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमणविधि में।
ईर्यापथ केशलोच अतीचार संस्तरादि अतिचारों में।।
पंथादिक अतिचार सर्वअतिचार तथा उत्तमारथ में।
विशुद्धि हेतु प्रतिक्रमण करूं रुचि धारूँ सम्यक्चारित में।।२५।।

१. इति पाठांतरं। २. अयं अधिको पाठः टीकायां।३. इसे चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में बोलें। ४. इसे वार्षिक प्रतिक्रमण में बोलें।

महापुरिसाणु-चिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं[१] होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं[२] चावि ते मे भवतु।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।३ बार।।

अहावरे[३] विदिए[४] महव्वदे सव्वं भंते! मुसावादं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया (वयसा) काएण, से कोहेण वा माणेण वा माएण

प्रथम महाव्रत में प्राणों के घात से विरती होना है।
यह महाव्रत उपस्थापनामंडल[५]-प्रशस्त सुव्रतारोपण है।।
महाअर्थ है महान् गुणमय महानुभाव[६] - महात्म्य है।
महासुयश महापुरुष तीर्थंकर आदि जनों से अनुष्ठित है।।२६।।
अरिहंत साक्षि से सिद्धसाक्षि से, साधुसाक्षि से आत्मसाक्षि से।
परसाक्षी देवतासाक्षि से, विशुद्धिहेतु उत्तमार्थ में।।
यह महाव्रत मुझमें सुव्रत हो, दृढ़व्रत हो निस्तारक[७] होवे।
पारक[८] तारक[९] आराधक[१०] भी, मुझमें अरु तुममें भी होवे।।२७।।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं[११] सुव्रतं[१२] समारूढं[१३] ते मे भवतु।।३ बार।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।३ बार।।

हे भगवन् ! मैं अब अन्य द्वितीय महाव्रत में यावज्जीवन।
मन वचन काय से सर्व झूठ भाषण का मैं करता हूँ त्यजन।।
इसमें जो क्रोध मान माया या लोभ राग या द्वेषों से।
या मोह हास्य भय प्रदोष प्रमाद प्रेम पिपासा लज्जा से।।१।।

१. 'दढव्वदं' इति पाठः। २. 'आराहयं' इति पाठः। ३. टीका में 'अहावरे' पाठ है। ४. 'विदीये' इति पाठः। ५. उपस्थापना-व्रतों का आरोपण, मंडल-प्रशस्त (टीकायां)। ६. महानुभाव-माहात्म्यशाली यह महाव्रत है। ७. दुस्तर दुःखों से निकालने वाला। ८. संसार से पार करने वाला। ९. संसार समुद्र से पार करने वाला। १०. अनंतचतुष्टय प्राप्ति लक्षण मोक्ष का साधक है। ११. अखंडव्रत। १२. शोभनव्रत-निरतिचार व्रत। १३. समीचीन रीति से स्थित हों।

वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण[१] वा केणवि कारणेण जादेण वा णेव संय मोसं भासेज्ज ण अण्णेहिं मोसं भासाविज्ज अण्णेहि मोसं भासिज्जंतं पि ण समणुमणिज्ज तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं मोसं भासियं अण्णेहिं मोसं भासावियं अण्णेहिं मोसं भासिज्जंतं पि समणुमण्णिदं तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससील-सहस्सपरिमंडि-यस्स चउरासीदिगुणसयसहस्स-विहूसियस्स णव बंभचेरगुत्तस्स णियदि-लक्खणस्स परिचागफलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसगस्स मुत्तिमग्गपया-सयस्स सिद्धिमग्गपज्जव-साणस्स[२] से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा

गारव व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण होने से।
नहिं स्वयं झूठ बोलना था नहिं बुलवाना था अन्यों से।।
नहिं झूठ बोलते अन्यों को अनुमति भी देना था मुझको।
भगवन् ! इनके अतिचारों का प्रतिक्रमण करूँ निंदूं खुद को।।२।।

मैं अपनी गर्हा करूं तजूँ सब पूर्व उपार्जित दोषों को।
हे भगवन् ! मैंने जो भी राग द्वेष या मोह वशंगत हो।।
खुद झूठ वचन बोले अन्यों से झूठ वचन बुलवाये हों।
अरु झूठ बोलते अन्यों को जो मैंने अनुमति भी दी हो।।३।।

निर्ग्रंथरूप यह पावन है प्रवचन में कहा अनुत्तर है।
केवलिप्रणीत व अहिंसा लक्षणवाला सत्यअधिष्ठित है।।
है विनय मूल इसका व क्षमा बल अठरह हजार शील मंडित।
चौरासी लाख गुणों भूषित नव ब्रह्मचर्य से नित रक्षित।।४।।

नियति-विषयव्यावृत्तिलक्षण व परिग्रहत्यागफलों वाला।
उपशम प्रधान यह क्षमामार्गदेशक मुक्तीपथ उजियाला।

---

१. अण्णदरेण वा इति पाठः-अन्यतरेणोक्तकारणेभ्योऽन्येन। २. 'साहणस्स' इति वा पाठान्तरं।

अदंसणेण वा अविरिएण वा असंयमेण वा असमणेण वा अणहि-गमणेण वा अमिमंसिदाएण वा अबोहिदाएण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आलसदाए (बालिसदाए) कम्मभारिगदाए कम्मगुरुगदाए कम्मदुच्चरिदाए कम्म-पुरुक्कडदाए तिगारवगुरुग-दाए अबहुसुददाए अविदिदपरमट्ठदाए तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरिहामि आगमेसिं च, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि कुदंसणं वोस्सरामि सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि,

---

यह सिद्धिमार्ग का चरमसीम इसमें जो मैंने दोष किये।
वह क्रोध मान माया वा लोभ अज्ञान अदर्शन से हि हुए।।५।।

शक्ती से हीन असंयम से श्रद्धानरहित अप्रतिग्रहणा।
या बिना विचारे अबोध रागद्वेष मोह या हास्य मना।।
भय प्रदोष से व प्रमाद प्रेम विषयों की गृद्धी लज्जा से।
गारव व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से मुझसे।।६।।

आलस से कर्मभार से कर्मों की गुरुता से कर्मों के।
दुश्चरित्र से कर्मों के उत्कटपने त्रिगारवगुरुता से।।
श्रुतज्ञान अल्पता से परमार्थज्ञान मुझको नहिं होने से।
दुश्चरित पूर्व में हुए उन्हीं सबकी गर्हा करता हूँ मैं।।७।।

होने वाले अत्याज्य भाव का प्रत्याख्यान मैं करता हूँ।
जिनका आलोचन नहीं किया उनका आलोचन करता हूँ।।
अनिंदित की निन्दा करता अगर्हित की गर्हा करता हूँ।
जिनका प्रतिक्रमण नहीं कीया प्रतिक्रमण उन्हीं का करता हूँ।।८।।

मैं विराधना को तजता हूँ आराधन को स्थिर करता हूँ।
अज्ञानत्रयी को तजता हूँ संज्ञान पांच स्थिर करता हूँ।।
मिथ्यादर्शन को तजता हूँ सम्यग्दर्शन स्थिर करता हूँ।
मिथ्याचारित को तजता हूँ सम्यक्चारित स्थिर करता हूँ।।९।।

कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अभुट्ठेमि, राईभोयणं (राइभोजणं) वोस्सरामि दिवाभोयणमेगभत्तं पच्चुप्पण्णं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्टरुद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि किण्हणीलकाउलेस्सं वोस्सरामि तेउपम्मसुक्कलेसं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि,

---

कुतप बालतप तजता हूँ बारहों सुतप स्थिर करता हूँ।
अकरणीय को तजता हूँ करणीय को स्थिर करता हूँ।।
प्राणातिपात को तजता हूँ, अभयदान को स्थिर करता हूँ।
मैं झूठ वचन को तजता हूँ सत्यवचन को स्थिर करता हूँ।।१०।।
अदत्तग्रहण को तजता हूँ दी गई योग्य में स्थिर होता हूँ।
अब्रह्मचर्य को तजता हूँ ब्रह्मचर्य में स्थिर होता हूँ।।
मैं सर्व परिग्रह तजता हूँ अपरिग्रह में स्थिर होता हूँ।
मन वचन काय कृत कारितादि से रात्री भोजन तजता हूँ।।११।।
सुसमयप्राप्त प्रासुक इकबार दिन भुक्ति में स्थिर होता हूँ।
आर्तरौद्र ध्यान को तजता हूँ, धर्मशुक्ल ध्यान स्थिर करता हूँ।।
कृष्ण नील कापोत छोड़ता हूँ, पीत पद्म शुक्ल स्थिर करता हूँ।
मैं सब आरंभ छोड़ता हूँ, अनारंभ में स्थिर होता हूँ।।१२।।
मैं सर्व असंयम तजता हूँ, संयम में सुस्थिर होता हूँ।
सग्रंथ अवस्था तजता हूँ निर्ग्रन्थ में स्थिर होता हूँ।।
सवस्त्र अवस्था तजता हूँ निर्वस्त्र में स्थिर होता हूँ।
मैं अलोच को परिहरता हूँ लोच क्रिया में स्थिर होता हूँ।।१३।।
स्नान क्रिया को तजता हूँ अस्नान में स्थिर होता हूँ।
अभूमि शयन को तजता हूँ भूशयन में स्थिर होता हूँ।।
मैं दंतधावन को तजता हूं अदंतधावन स्थिर करता हूँ।
अस्थिति भोजन को तजता हूँ इक भक्त स्थिति भुक्ति स्वीकरता हूँ।।१४।।

अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयण-मेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्बुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि दुवादसविह-तवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि णिसल्लं उवसंपज्जामि अविणयं परिवज्जामि विणयं, उवसंपज्जामि अणाचारं परिवज्जामि आचारं उवसंपज्जामि, उमग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं

अपाणिपात्र को तजता हूँ पाणिपात्र में स्थिर होता हूँ।
मैं क्रोध कषाय को तजता हूँ मैं क्षमा में स्थिर होता हूँ।।
मैं मान कषाय को तजता हूँ मार्दव में स्थिर होता हूँ।
मैं माया को परिहरता हूँ आर्जव में स्थिर होता हूँ।।१५।।
मैं लोभ भाव को तजता हूँ सन्तोष में स्थिर होता हूँ।
मैं अतप-कुतप को तजता हूँ द्वादशतप में स्थिर होता हूँ।।
मिथ्यात्व सभी छोड़ता हूँ समकित की प्राप्ति करता हूँ।
सम्पूर्ण अशील छोड़ता हूँ सुशील की प्राप्ती करता हूँ।।१६।।
मैं तीनों शल्य छोड़ता हूँ निःशल्य की प्राप्ती करता हूँ।
मैं अविनयवृत्ति छोड़ता हूँ विनयगुण की प्राप्ती करता हूँ।।
मैं अनाचार को तजता हूँ आचार को स्वीकृत करता हूँ।
मैं सब उन्मार्ग छोड़ता हूँ जिनमार्ग को स्वीकृत करता हूँ।।१७।।
अक्षमा भाव को तजता हूँ, मैं क्षमा को स्वीकृत करता हूँ।
मैं अगुप्ति को तजता हूँ, त्रयगुप्ती स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अमुक्ति को छोड़ रहा, सुमुक्ति को स्वीकृत करता हूँ।
मैं असमाधी को तजता हूँ, सुसमाधी स्वीकृत करता हूँ।।१८।।
मैं ममता को परिहरता हूँ, निर्ममता स्वीकृत करता हूँ।
जो नहिं भाये सो भाता हूँ, जो भाये उन्हें नहिं भाता हूँ।।
निर्ग्रन्थरूप यह प्रवचन कथित अनुत्तर केवलि संबंधी।
रत्नत्रयमय नैकायिक सम-एकत्वरूप सामायिक भी।।१९।।

सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं (भव्वं) ण भविस्सदि, कयाचि वा कुदोचि वा णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (संवच्छरिय) इरियावहिकेसलोचाइचारस्स संथारादिचारस्स

संशुद्ध शल्ययुत का यह शल्यविघातक और सिद्धिपथ है।
यह श्रेणिमार्ग अरु क्षमामार्ग मुक्तीपथ तथा प्रमुक्ति पथ है।।
यह मोक्षमार्ग व प्रमोक्षमार्ग निर्यानपथ रु निर्वाण मार्ग।
यह सर्वदु:खपरिच्युतीमार्ग सुचरित्रपरिनिर्वाण मार्ग।।२०।।
इसमें स्थित जीव सिद्ध होते बुद्ध होते मुक्ती पाते।
परिनिर्वाण प्राप्त करते सब दु:खों का भि अंत करते।।
मैं इसकी श्रद्धा करता हूँ इसकी ही प्राप्ती करता हूँ।
इसमें ही मैं रुचि रखता हूँ इसका ही स्पर्श करता हूँ।।२१।।
इससे बढ़कर नहिं अन्य कोई, नहिं हुआ न है नहीं होगा ही।
सुज्ञान से दर्शन से चरित्र से सूत्र से शील व गुण से ही।।
तप से नियम से व्रत से अरु आचरण तथा आश्रय से भी।
आर्जव लाघव या अन्य किसी से वीर्य से भी उत्कृष्ट यही।।२२।।
मैं श्रमण-मुनी हूँ संयत हूँ मैं उपरत हूँ उपशांत भि हूँ।
परिग्रह वंचन व मान माया अरु असत्य से अतिविरक्त हूँ।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचरित्र से उपरत हूँ।
जिन प्रणीत सम्यग्ज्ञान सुदर्शन चारित में रुचि रखता हूँ।।२३।।
जो मेरे से दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक
(चउमासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमणविधि में।

पंथादिचारस्स सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं उवट्ठाणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्मि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु।

द्वितीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।३ बार।।

अहावरे तदिये महव्वदे सव्वं भंते! अदत्तादाणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया (वचसा) काएण से देसे वा गामे वा णगरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंबे वा मंडले वा पट्टणे वा दोणमुहे वा घोसे वा आसणे वा

ईर्यापथ केंशलोच अतीचार संस्तरादि अतिचारों में।।
पंथादिक अतिचार सर्वअतिचार तथा उत्तमारथ में।।
विशुद्धि हेतु प्रतिक्रमण करूं रुचि धारूं सम्यक्‌चारित में।।२४।।
इस द्वितीय महाव्रत में असत्य भाषण से विरती होना है।
यह महाव्रत उपस्थापनामंडल प्रशस्त सुव्रतारोपण है।।
महाअर्थ है महानगुणमय महानुभाव-महात्म्य है।
महासुयश महापुरुष तीर्थंकर आदि जनों से अनुष्ठित है।।२५।।
अरिहंतसाक्षि से सिद्धसाक्षि से, साधुसाक्षि से आत्मसाक्षि से।
परसाक्षी देवतासाक्षि से, विशुद्धिहेतू उत्तमार्थ में।।
यह महाव्रत मुझमें सुव्रत हो, दृढ़व्रत हो निस्तारक होवे।
पारक तारक आराधक भी, मुझमे अरु तुममें भी होवे।।२६।।
द्वितीय महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मेभवतु। (३ बार)
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।३ बार।।
हे भगवन्! अब मैं तृतिय महाव्रत, में त्रयविध मन वच तन से।
सर्व अदत्तग्रहण का जीवनभर मैं त्याग करूँ रूचि से।।
जो देश गाँव या नगर खेट या कर्वट मंडब मंडल में।
पत्तन व द्रोणमुख गोकुल आश्रम सभा तथा संवाहन में।।१।।

(आसमे वा)[1] सहाए वा संवाहे वा सण्णिवेसे वा तिणं वा कट्ठं वा वियडिं वा मणिं वा खेत्ते वा खले वा जले वा थले वा पहे[2] वा उप्पहे वा रण्णे वा अरण्णे वा णट्ठं वा पमुट्ठं[3] वा पडिदं वा अपडिदं वा सुणिहिदं वा दुण्णिहिदं वा अप्पं वा बहुं वा अणुयं वा थूलं वा सचित्तं वा अचित्तं वा मज्झत्थं वा बहित्थं वा अवि दंतंतरसोहण[4]मित्तं पि णेव सयं अदत्तं गेण्हिज्ज णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविज्ज अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं पि ण समणुमणिज्ज, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं अदत्तं गेण्हिदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविदं अण्णेहिं अदत्तं गेणिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तं, पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलि-पण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स सच्चाहि-ट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्स-परिमंडियस्स चउरासीदि-गुणसयसहस्स-विहूसियस्स

रजधानी खेत खलीहानों जल थल पथ उत्पथ रण्यों में।
या वन में तृण या काष्ठ विकृति मणि आदी वस्तू लेने में।।
जो खोई चोरी से लाई गिरी, नहिं गिरी रखी दुःख से रक्खी।
जो अल्प बहुत अणु थूल सचेतन अचित्त या घर में रक्खी।।२।।
या बाहर रखी तथा दांतों के शोभनमात्र तनिक भी हो।
ऐसी बिन दी वस्तू कुछ भी नहिं लेना चाहिए था मुझको।।
नहिं अदत्त वस्तू अन्यों से भी ग्रहण कराना चाहिए था।
नहिं अदत्त वस्तू लेने वालों को भी अनुमति देना था।।३।।
भगवन् ! इनके अतिचारों का प्रतिक्रमण करूँ निज को निंदूँ।
अपनी गर्हा करता भगवन्! पूरबकृत दोषों को त्यागूँ।।
हो राग द्वेष मोह वश में, जो भी मैंने बिन दिया लिया।
बिन दिया लिवाया पर से या लेते को भी अनुमती दिया।।४।।
निर्ग्रंथरूप यह पावन है प्रवचन में कहा अनुत्तर है।
केवलिप्रणीत व अहिंसालक्षणवाला सत्य अधिष्ठित है।।
है विनय मूल इसका व क्षमा बल अठरह हजार शील मंडित।
चौरासी लाख गुणों भूषित नव ब्रह्मचर्य से नित रक्षित।।५।।

१. आश्रमे तापसपल्यां। २. 'पथे वा उत्पथे वा' इति पाठः। ३. 'पमुद्धं' इति पाठः।
४. 'दंतांतरशोभनमात्रमपि' इति टीका।

णवबंभचेरगुत्तस्स णियदि-लक्खणस्स परिचागफलस्स उवसम-पहाणस्स खंतिमग्ग-देसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जव साणस्स से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा अदंसणेण वा अविरिएण वा असंयमेण वा असमणेण वा अणहिगमणेण वा अमिमंसिदाएण वा अबोहिदाएण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आलसदाए (बालिसदाए) कम्मभारिगदाए कम्मगुरुगदाए कम्मदुच्चरिदाए कम्मपुरुक्कडदाए तिगारव-गुरुगदाए अबहुसुददाए अविदिदपरमट्ठदाए तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरिहामि आगमेसिं च, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामिं, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि

नियति-विषयव्यावृत्तिलक्षण व परिग्रह त्याग फलों वाला।
उपशम प्रधान यह क्षमामार्गदेशक मुक्तीपथ उजियाला।।
यह सिद्धिमार्ग का चरमसीम इसमें जो मैंने दोष किये।
वह क्रोध मान माया व लोभ अज्ञान अदर्शन से हि हुए।।६।।

शक्ती से हीन असंयम से श्रद्धानरहित अप्रतिग्रहणा।
या बिना विचारे अबोध राग द्वेष मोह या हास्य मना।।
भय प्रदोष से व प्रमाद प्रेम विषयों की गृद्धी लज्जा से।
गारव व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से मुझसे।।७।।

आलस से कर्मभार से कर्मों की गुरुता से कर्मों के।
दुश्चरित्र से कर्मों के उत्कटपने त्रिगारव गुरुता से।।
श्रुतज्ञान अल्पता से परमार्थ ज्ञान मुझको नहिं होने से।
दुश्चरित पूर्व में हुए उन्हीं सबकी गर्हा करता हूँ मैं।।८।।

होने वाले अत्याज्य भाव का प्रत्याख्यान मैं करता हूँ।
जिनका आलोचन नहीं किया उनका आलोचन करता हूँ।।
अनिंदित की निंदा करता अगर्हित की गर्हा करता हूँ।
जिनका प्रतिक्रमण नहीं कीया प्रतिक्रमण उन्हीं का करता हूँ।।९।।

सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राईभोयणं (राइभोजणं) वोस्सरामि दिवाभोयण-मेगभत्तं पच्चुप्पण्णं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्टरूद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि, किण्हणील-काउलेस्सं वोस्सरामि तेउपम्म-सुक्कलेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं

मैं विराधना को तजता हूँ, आराधन स्थिर करता हूँ।
अज्ञानत्रयी को तजता हूँ, संज्ञान पांच स्थिर करता हूँ।।
मिथ्यादर्शन को तजता हूँ, सम्यग्दर्शन स्थिर करता हूँ।
मिथ्याचारित को तजता हूँ, सम्यक्चारित स्थिर करता हूँ।।१०।।
कुतप-बालतप तजता हूँ, बारह तप में स्थिर होता हूँ।
अकरणीय को तजता हूँ, करणीय में स्थिर होता हूँ।।
प्राणातिपात को तजता हूँ, अभयदान में स्थिर होता हूँ।
मैं झूठ वचन को तजता हूँ, वच सत्य में स्थिर होता हूँ।।११।।
अदत्तग्रहण को तजता हूँ, दी गई योग्य में थिर होता हूँ।
अब्रह्मचर्य को तजता हूँ, ब्रह्मचर्य में स्थिर होता हूँ।।
मैं सर्व परिग्रह तजता हूँ, अपरिग्रह में स्थिर होता हूँ।
मन वचन काय कृत कारितादि से रात्रि भोजन तजता हूँ।।१२।।
सुसमयप्राप्त प्रासुक इकबार दिन भुक्ति में थिर होता हूँ।
आर्तरौद्र ध्यान को तजता हूँ, धर्मशुक्ल ध्यान स्थिर करता हूँ।।
कृष्ण नील कापोत तजता हूँ, पीत पद्म शुक्ल स्थिर करता हूँ।
मैं सब आरंभ छोड़ता हूँ, अनारम्भ में स्थिर होता हूँ।।१३।।
मैं सर्व असंयम तजता हूँ, संयम में सुस्थिर होता हूँ।
सग्रंथ अवस्था तजता हूँ, निर्ग्रंथ में स्थिर होता हूँ।।
सवस्त्र अवस्था तजता हूँ, निर्वस्त्र में स्थिर होता हूँ।
मैं अलोच को परिहरता हूँ, कचलोच में स्थिर होता हूँ।।१४।।

वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयणमेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि दुवादसविहतवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि णिसल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं

स्नान क्रिया को तजता हूँ, अस्नान में स्थिर होता हूँ।
अभूमि शयन को तजता हूँ, भूशयन में स्थिर होता हूँ।।
मैं दंतधावन को तजता हूँ, अदंतधावन स्वीकरता हूँ।
अस्थिति भोजन को तजता हूँ, इक भक्त स्थिति भुक्ति स्वीकरता हूँ।।१५।।
अपाणिपात्र को तजता हूँ, पाणिपात्र में स्थिर होता हूँ।
मैं क्रोध कषाय को तजता हूँ, मैं क्षमा में स्थिर होता हूँ।।
मैं मान कषाय को तजता हूँ, मार्दव में स्थिर होता हूँ।
मैं माया को परिहरता हूँ, आर्जव में स्थिर होता हूँ।।१६।।
मैं लोभ भाव को तजता हूँ, संतोष में स्थिर होता हूँ।
मैं अतप-कुतप को तजता हूँ, द्वादशतप में स्थिर होता हूँ।।
मिथ्यात्व सभी छोड़ता हूँ, समकित की प्राप्ती करता हूँ।
सम्पूर्ण अशील छोड़ता हूँ, सुशील की प्राप्ती करता हूँ।।१७।।
मैं तीनों शल्य छोड़ता हूँ, नि:शल्य की प्राप्ती करता हूँ।
मैं अविनयवृत्ति छोड़ता हूँ, विनयगुण स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अनाचार को तजता हूँ, आचार को स्वीकृत करता हूँ।
मैं सब उन्मार्ग छोड़ता हूँ, जिनमार्ग को स्वीकृत करता हूँ।।१८।।
अक्षमा भाव को तजता हूँ, मैं क्षमा को स्वीकृत करता हूँ।
मैं त्रय अगुप्ति को तजता हूँ, त्रयगुप्ती स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अमुक्ति को परिहरता हूँ, सुमुक्ति स्वीकृत करता हूँ।
मैं असमाधी को तजता हूँ, सुसमाधी स्वीकृत करता हूँ।।१९।।

उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाण-मंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं (भव्वं) ण भविस्सदि, कयाचि वा कुदोचि वा णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं

मैं ममता को परिहरता हूँ, निर्ममता स्वीकृत करता हूँ।
जो नहिं भाये सो भाता हूँ, जो भाये उन्हें न भाता हूँ।।
निर्ग्रंथ रूप यह प्रवचन कथित अनुत्तर केवलि संबंधी।
रत्नत्रयमय नैकायिक सम-एकत्वरूप सामायिक भी।।२०।।
संशुद्ध शल्ययुत जन का शल्यविघातक और सिद्धिपथ है।
यह श्रेणिमार्ग अरु क्षमामार्ग मुक्तीपथ तथा प्रमुक्ति पथ है।।
यह मोक्षमार्ग व प्रमोक्षमार्ग निर्यानपथ रु निर्वाण मार्ग।
यह सर्वदुःखपरिच्युतीमार्ग सुचरित्रपरिनिर्वाण मार्ग।।२१।।
इसमें स्थित जीव सिद्ध होते बुद्ध होते मुक्ती पाते।
परिनिर्वाण प्राप्त करते, सब दुःखों का भि अंत करते।।
मैं इसकी श्रद्धा करता हूँ, इसकी ही प्राप्ति करता हूँ।
इसमें ही मैं रुचि रखता हूँ, इसका ही स्पर्श करता हूँ।।२२।।
इससे बढ़कर नहिं अन्य कोई नहिं हुआ न है नहिं होगा ही।
सुज्ञान से दर्शन से चरित्र से सूत्र से शील व गुण से ही।।
तप से व नियम से व्रत से अरु, आचरण तथा आश्रय से भी।
आर्जव लाघव या अन्य किसी से वीर्य से भी उत्कृष्ट यही।।२३।।
मैं श्रमण-मुनी हूं संयत हूँ, मैं उपरत हूँ उपशांत भि हूँ।
परिग्रह वंचन व मान माया अरु असत्य से अरिविरक्त हूँ।।

च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (संवच्छरिय) इरियावहि-केसलोचाइ-चारस्स संथारादिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वाइचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि। तदिए महव्वदे अदत्तादाणादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु।

तृतीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।३।।

मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचरित्र से विरक्त हूँ।
जिन प्रणीत सम्यग्ज्ञान सुदर्शन चारित में रुचि रखता हूँ।।२४।।
जो मेरे से दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक
(चउमासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण विधि में।
ईर्यापथ केंशलोच अतिचार संस्तरादि अतिचारों में।।
पंथादिक अतीचार सर्वअतिचार तथा उत्तमारथ में।
विशुद्धी हेतु प्रतिक्रमण करूं रुचि धारूं सम्यक् चारित में।।२५।।
इस तृतीय महाव्रत में अदत्त लेने से विरती होना है।
यह महाव्रत उपस्थापनामण्डल-प्रशस्त सुव्रतारोपण है।।
यह महाअर्थ है महानगुणमय महानुभाव-महात्म्य है।
महासुयश महापुरुष तीर्थंकर आदि जनों से अनुष्ठित है।।२६।।
अरिहंतसाक्षि से सिद्धसाक्षि से, साधुसाक्षि से आत्मसाक्षि से।
परसाक्षी देवतासाक्षि से, विशुद्धि हेतू उत्तमारथ में।।
यह महाव्रत मुझमें सुव्रत हो, दृढव्रत हो निस्तारक होवे।
पारक तारक आराधक भी, मुझमें अरु तुममें भी होवे।।२७।।

तृतीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढ़व्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।
(३ बार)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं।।३ बार।।

अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते! अबंभं[1] पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया (वचसा) काएण से देविएसु[2] वा माणुसिएसु वा तिरिच्छिएसु वा अचेयणिएसु वा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा (वत्थकम्मेसु वा)[3] लेप्पकम्मेसु वा लयकम्मेसु वा (लयणकम्मेसु वा)[4] सिल्लाकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा भेदकम्मेसु वा भंडकम्मेसु वा धादुकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा हत्थसंघट्टणदाए पादसंघट्टणदाए पुग्गल-संघट्टणदाए मणुणामणुणेसु सद्देसु मणुणामणुणेसु रूवेसु मणुणामणुणेसु गंधेसु मणुणामणुणेसु रसेसु मणुणामणुणेसु फासेसु सोदिंदियपरिणामे चक्खि-दियपरिणामे घाणिंदियपरिणामे जिब्भिदियपरिणामे फासिंदियपरिणामे णोइंदियपरिणामे अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण णेव सयं अबंभं सेविज्ज णो अण्णेहिं अबंभं सेवाविज्ज णो अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं पि समणुमणिज्ज, तस्स

हे भगवन् ! अब मैं चौथे महाव्रत में मन वच तन त्रयविध से।
संपूर्ण अब्रह्मचर्य को मैं जीवन भर छोड़ रहा रुचि से।।
इसमें देवियों मनुष्यिनियों तिर्यंचि अचेतन महिला में।
(आर्यिकाओं को यह पंक्ति ऐसी पढ़नी चाहिए)-
(इसमें देवों व मनुष्यों में तिर्यंच अचेतन पुरुषों में।)
काठ निर्मित या चित्र बने या वस्त्र लेप्य मिट्टी से बने।।१।।
जो लयनकर्म[5] या पत्थर में उत्कीर्ण भित्ति पर खुदे हुए।
जो भेदक्रिया से बने भंड से पीतल आदि से बने हुए।।
जो हस्तिदंत से बने सभी इन चउविध स्त्री रूपादी में।
कर से संघट्टन पाद संघट्टन पुद्गल के संमर्दन से।।२।।
जो मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में, सुन्दर व असुन्दर रूपों में।
अच्छी व बुरी गंध में अरु रुचिकर व अरुचिकर छह रस में।।
सुखकर दु:खकर स्पर्शों में इन पंचेन्द्रिय के विषयों में।
कर्णेंद्रिय चक्षू घ्राण रसन स्पर्शनेंद्रिय के विषयों में।।३।।
मन के विषयों में अनियंत्रित नहिं गुप्ती को मैंने पाला।
नहिं स्वयं अब्रह्म सेवना था पर से न अब्रह्म कराना था।।

१. 'अब्बंभं' इति पाठ:। २. 'देवियं वा माणुसियं वा तिरिच्छियं वा अचेदणीएसु वा' इति पाठ:। ३. पुस्तकर्म'-घास-फूस आदि से निर्मित झाँकी आदि के रूप। ४. इति अधिक: पाठ:। ५. लेनी में बनी पुतलियां आदि। इससे यह समझ में आता है कि पर्वत को छांटकर गुफाओं में उत्कीर्ण की गई स्त्रियों की पुतलियाँ।

भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं अबंभं सेवियं अण्णेहिं अबंभं सेवावियं अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं पि समणुमण्णिदं तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्स-विहूसियस्स णव-बंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचाग-फलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जव-साणस्स से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा अदंसणेण वा अविरिएण वा असंयमेण वा असमणेण वा अणहिगमणेण वा अमिमंसिदाएण वा अबोहिदाएण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आलसदाए (बालिसदाए) कम्मभारिगदाए

नहिं अब्रह्म सेवन करने वालों को भी अनुमति देना था।
भगवन् ! इनके अतिचारों का प्रतिक्रमण करूं अपनी निंदा।।४।।
गर्हा करता हूँ हे भगवन्! पूरबकृत दोष त्याग करता।
मैं रागद्वेष मोहवश हो जो भी अब्रह्म सेवित कीया।।
पर से अब्रह्म करवाया या करते को भी अनुमती दिया।
इन दोषों की शुद्धी हेतु करता हूँ मैं प्रतिक्रमण यहां।।५।।
निर्ग्रंथरूप यह पावन है प्रवचन में कहा अनुत्तर है।
केवलिप्रणीत व अहिंसालक्षणवाला सत्य अधिष्ठित है।।
है विनय मूल इसका व क्षमा बल अठरह हजार शीलमंडित।
चौरासी लाख गुणों भूषित नव ब्रह्मचर्य से नित रक्षित।।६।।
नियति-विषयव्यावृतिलक्षण व परिग्रह त्याग फलों वाला।
उपशम प्रधान यह क्षमामार्गदेशक मुक्तीपथ उजियाला।।
यह सिद्धिमार्ग का चरमसीम इसमें जो मैंने दोष किये।
वह क्रोध मान माया व लोभ अज्ञान अदर्शन से हि हुए।।७।।
शक्ती से हीन असंयम से श्रद्धानरहित अप्रतिग्रहणा।
या बिना विचारे अबोध राग द्वेष मोह या हास्य मना।।
भय प्रदोष से व प्रमाद प्रेम विषयों की गृद्धी लज्जा से।
गारव व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से मुझसे।।८।।

कम्मगुरुगदाए कम्मदुच्चरिदाए कम्मपुरुक्कडदाए तिगारवगुरुगदाए, अबहुसुददाए अविदिदपरमट्ठदाए तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरिहामि आगमेसिं च, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं

आलस से कर्मभार से कर्मों की गुरुता से कर्मों के।
दुश्चरित्र से कर्मों के उत्कटपने त्रिगारव गुरुता से।।
श्रुतज्ञान अल्पता से परमार्थ ज्ञान मुझको नहिं होने से।
दुश्चरित पूर्व में हुए उन्हीं सबकी गर्हा करता हूं मैं।।९।।

होने वाले अत्याज्य भाव का प्रत्याख्यान मैं करता हूँ।
जिनका आलोचन नहीं किया उनका आलोचन करता हूँ।।
अनिंदित और अगर्हित की मैं निंदा गर्हा करता हूँ।
जिनका प्रतिक्रमण नहीं कीया प्रतिक्रमण उन्हीं का करता हूँ।।१०।।

मैं विराधना को तजता हूँ आराधन स्थिर करता हूँ।
अज्ञानत्रयी को तजता हूँ संज्ञान पांच स्थिर करता हूँ।।
मिथ्यादर्शन को तजता हूँ समकित को स्थिर करता हूँ।
मिथ्याचारित को तजता हूँ सम्यक्चारित स्थिर करता हूँ।।११।।

कुतप–बालतप तजता हूँ बारह तप में स्थिर होता हूँ।
अकरणीय को तजता हूँ करणीय में स्थिर होता हूँ।।
प्राणातिपात को तजता हूँ, अभयदान में स्थिर होता हूँ।
मैं झूठ वचन को तजता हूँ वच सत्य में स्थिर होता हूँ।।१२।।

अदत्तग्रहण को तजता हूँ दी गई योग्य में स्थिर होता हूँ।
अब्रह्मचर्य को तजता हूँ ब्रह्मचर्य में स्थिर होता हूँ।।

अब्भुट्ठेमि राईभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयणमेगभत्तं पच्चुप्पण्णं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्टरुद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि, किण्हणील-काउलेस्सं वोस्सरामि तेउपम्मसुक्कलेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयणमेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं

मैं सर्व परिग्रह तजता हूँ अपरिग्रह में स्थिर होता हूँ।
मन वचन काय कृत कारितादि से रात्री भोजन तजता हूँ।।१३।।

सुसमयप्राप्त प्रासुक इक बार दिन भुक्ति में स्थिर होता हूँ।
आर्तरौद्र ध्यान को तजता हूँ, धर्मशुक्ल ध्यान स्थिर करता हूँ।।
कृष्ण नील कापोत छोड़ता हूँ पीत पद्म शुक्ल स्थिर करता हूँ।
मैं सब आरंभ छोड़ता हूँ, अनारंभ में स्थिर होता हूँ।।१४।।

मैं सर्व असंयम तजता हूँ, संयम में सुस्थिर होता हूँ।
सग्रंथ अवस्था तजता हूँ, निर्ग्रन्थ में स्थिर होता हूँ।।
सवस्त्र अवस्था तजता हूँ, निर्वस्त्र में स्थिर होता हूँ।
मैं अलोच को परिहरता हूँ लोच क्रिया में स्थिर होता हूँ।।१५।।

स्नान क्रिया को तजता हूँ अस्नान में स्थिर होता हूँ।
अभूमि शयन को तजता हूँ भूशयन में स्थिर होता हूँ।।
मैं दंतधावन को तजता हूँ अदंतधावन स्थिर करता हूँ।
अस्थिति भोजन को तजता हूँ इक भक्त स्थिति भुक्ति स्वीकरता हूँ।।१६।।

अपाणिपात्र को तजता हूँ पाणिपात्र में स्थिर होता हूँ।
मैं क्रोध कषाय को तजता हूँ मैं क्षमा में स्थिर होता हूँ।।
मैं मान कषाय को तजता हूँ मार्दव में स्थिर होता हूँ।
मैं माया को परिहरता हूँ आर्जव में स्थिर होता हूँ।।१७।।

वोस्सरामि दुवादसविहतवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि णिसल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्ख-परिहाणिमग्गं सुचरिय-परिणिव्वाण-मग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति

मैं लोभ भाव को तजता हूँ सन्तोष में स्थिर होता हूँ।
मैं अतप-कुतप को तजता हूँ द्वादशतप में स्थिर होता हूँ।।
मिथ्यात्व सभी छोड़ता हूँ समकित की प्राप्ती करता हूँ।
सम्पूर्ण अशील छोड़ता हूँ सुशील की प्राप्ती करता हूँ।।१८।।
मैं तीनों शल्य छोड़ता हूँ नि:शल्य की प्राप्ती करता हूँ।
मैं अविनयवृत्ति छोड़ता हूँ विनयगुण की प्राप्ती करता हूँ।।
मैं अनाचार को तजता हूँ आचार को स्वीकृत करता हूँ।
मैं सब उन्मार्ग छोड़ता हूँ जिनमार्ग को स्वीकृत करता हूँ।।१९।।
अक्षमा भाव को तजता हूँ, मैं क्षमा को स्वीकृत करता हूँ।
मैं त्रय अगुप्ति को तजता हूँ, त्रयगुप्ती स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अमुक्ति को छोड़ रहा, सुमुक्ति को स्वीकृत करता हूँ।
मैं असमाधी को तजता हूँ, सुसमाधी स्वीकृत करता हूँ।।२०।।
मैं ममता को परिहरता हूँ, निर्ममता स्वीकृत करता हूँ।
जो नहिं भाये सो भाता हूँ, जो भाये उन्हें नहिं भाता हूँ।।
निर्ग्रन्थरूप यह प्रवचन कथित अनुत्तर केवलि संबंधी।
रत्नत्रयमय नैकायिक सम-एकत्वरूप सामायिक भी।।२१।।
संशुद्ध शल्ययुत का यह शल्यविघातक और सिद्धिपथ है।
यह श्रेणिमार्ग अरु क्षमामार्ग मुक्तीपथ तथा प्रमुक्ति पथ है।।

बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाण-मंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं (भव्वं) ण भविस्सदि, कयाचि वा कुदोचि वा णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (संवच्छरिय) इरियावहि-केसलोचाइचारस्स संथारादिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि। चउत्थे महव्वदे

यह मोक्षमार्ग व प्रमोक्षमार्ग निर्यानपथ रु निर्वाण मार्ग।
यह सर्वदु:खपरिच्युतीमार्ग सुचरित्रपरिनिर्वाण मार्ग।।२२।।
इसमें स्थित जीव सिद्ध होते बुद्ध होते मुक्ती पाते।
परिनिर्वाण प्राप्त करते सब दु:खों का भि अंत करते।।
मैं इसकी श्रद्धा करता हूँ इसकी ही प्राप्ती करता हूँ।
इसमें ही मैं रुचि रखता हूँ इसका ही स्पर्श करता हूँ।।२३।।
इससे बढ़कर नहिं अन्य कोई नहिं हुआ न है नहिं होगा ही।
सुज्ञान से दर्शन से चरित्र से सूत्र से शील व गुण से ही।
तप से व नियम से व्रत से अरु आचरण तथा आश्रय से भी।
आर्जव लाघव या अन्य किसी से वीर्य से भी उत्कृष्ट यही।।२४।।
मैं श्रमण-मुनी हूँ संयत हूँ मैं उपरत हूँ उपशांत भि हूँ।
परिग्रह वंचन व मान माया अरु असत्य से अतिविरक्त हूँ।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचरित्र से उपरत हूँ।
जिन प्रणीत सम्यग्ज्ञान सुदर्शन चारित में रुचि रखता हूँ।।२५।।
जो मेरे से दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक
(चउमासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमणविधि में।
ईर्यापथ केशलोच अतीचार संस्तरादि अतिचारों में।
पंथादिक अतिचार सर्वअतिचार तथा उत्तमारथ में।
विशुद्धि हेतु प्रतिक्रमण करूं रुचि धारूं सम्यक्चारित में।।२६।।

अबंभादो वेरमणं उवट्ठावण-मंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणु-चिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु।।

चतुर्थं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।३।।

अहावरे पंचमे महव्वदे सव्वं भंते! दुविहं परिग्गहं पच्चक्खामि तिविहेण मणसा वचिया (वचसा) काएण। सो परिग्गहो दुविहो अब्भिंतरो बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भिंतरं परिग्गहं-

"मिच्छत्तवेयराया तहेव हस्सादिया य छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरं गंथा।।१।।

चौथे महाव्रत में अब्रह्म सेवन से विरती होना है।
यह महाव्रत उपस्थापनामंडल प्रशस्त सुव्रतारोपण है।।
यह महाअर्थ है महानगुणमय महानुभाव-महात्म्य है।
महासुयश महापुरुष तीर्थंकर आदि जनों से अनुष्ठित है।।२७।।
अरिहंतसाक्षि से सिद्धसाक्षि से, साधुसाक्षि से आत्मसाक्षि से।
परसाक्षी देवतासाक्षि से, विशुद्धिहेतू उत्तमार्थ में।।
यह महाव्रत मुझमें सुव्रत हो, दृढ़व्रत हो निस्तारक होवे।
पारक तारक आराधक भी, मुझमें अरु तुममें भी होवे।।२८।।

चतुर्थं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु। (३ बार)

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।३ बार।।

हे भगवन्! अब मैं पंचम महाव्रत में त्रयविध मन वच तन से।
सम्पूर्ण द्विविध परिग्रह जीवन भर त्याग रहा हूँ मैं रुचि से।।
वह परिग्रह अन्तर बाहिर से द्वयविध उसमें अभ्यंतर जो।
मिथ्यात्व त्रिवेद हास्य आदिक छह चउ कषाय मिल चौदह वो।।१।।

तत्थ बाहिरं परिग्गहं, से हिरण्णं वा सुवण्णं वा धणं वा खेत्तं वा खलं वा वत्थुं वा पवत्थुं वा कोसं वा कुठारं वा पुरं वा अंतउरं वा बलं वा वाहणं वा सयडं वा जाणं वा जपाणं वा जुगं वा गद्दियं वा रहं वा सदणं[१] वा सिवियं वा दासी-दास-गो-महिसि-गवेडयं मणिमोत्तिय -संख-सिप्पि-पवालयं मणि-भाजणं वा सुवण्णभाजणं वा रजत-भाजणं वा कंस-भाजणं वा लोह-भाजणं वा तंव-भाजणं वा अंडजं वा वोंडजं वा रोमजं वा वक्कजं[२] वा वम्मजं[३] वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा सचित्तं वा अचित्तं वा अमुत्थं वा वहित्थं वा अविबालग्ग-कोडि-मित्तंपि णेव सयं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्ज णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गेण्हाविज्ज णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्जंतं पि समणुमणिज्ज तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्जं, अण्णेहिं

बाहिर परिग्रह में चाँदी सोना धन व धान्य खेत खल[४] में।
घर वास्तु प्रवास्तु कोश कुठार तथा पुर अन्तःपुर सब में।।
बल वाहन बैलगाड़ी यानं, जंपान व डोली गद्दिय[५] हैं।
रथ स्यंदन पालकि दासि दास गौ महिष गवेलक बहुविध हैं।।२।।
मणि मोती शंख सीप मूंगा, मणिभाजन कंचनभाजन भी।
चाँदी के बर्तन कांस्य पात्र, लोहे तांबे के बर्तन भी।।
अण्डज[६] कार्पास ऊन बल्कल चर्मज जो वस्त्र अल्प बहु हों।
अणु या बड़े सचित्त अचित्त यहां के[७] हों या बाहर के हों।।३।।
मेढ़े के बाल के अग्रभाग भी, परिग्रह मुनि अयोग्य होता।
वह स्वयं न लेना चाहिए था नहिं पर से ग्रहण कराना था।।
नहिं मुनि अयोग्य परिग्रह लेते, को अनुमति देनी थी मुझको।
भगवन्! उसके अतिचारों का प्रतिक्रमण करूँ निंदूं खुद को।।४।।
अपनी गर्हा करता भगवन्! तजता हूँ पूरब दोषों को।
मैं रागद्वेष मोह वश हो परिग्रह अयोग्य लिया भी जो।।

---

१. संदणं वा इति पाठः-स्यंदनं। २. वक्कलजं इति पाठांतरं उपलभ्यते। ३. चम्मजं इति पाठांतरं। ४. खलिहान। ५. ऊपर में ढकी हुई गाड़ी विशेष। ६. रेशमीवस्त्र। ७. अमुत्थं-अमुत्रस्थं-'यहां के' ऐसा अर्थ संगत है।

असमणपाउग्गं परिग्गहं गेण्हावियं अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गेण्हिज्जंतं पि समणुमण्णिदं, तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारस-सीलसहस्स-परिमंडियस्स चउरासीदि-गुण-सयसहस्स-विहूसियस्स, णवबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचाग-फलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसगस्स मुत्ति-मग्ग-पयासयस्स सिद्धि-मग्ग-पज्जव-साणस्स से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा अदंसणेण वा अविरिएण वा असंजमेण वा असमणेण वा अणहि-गमणेण वा अभिमंसिदाएण वा अबोहिदाएण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आलसदाए (बालिसदाए) कम्मभारिग-दाए कम्मगुरुग-दाए कम्मदुच्चरिदाए कम्मपुरुक्कड-दाए तिगारवगुरुग-दाए अबहुसुद-दाए अविदिद-परमट्ठदाए तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं

पर से मुनिपद अयोग्य परिग्रह जो भी मैं ग्रहण कराया हूँ।
परिग्रह लेते को अनुमति दी प्रतिक्रमण इसी का करता हूँ।।५।।
निर्ग्रंथरूप यह पावन है प्रवचन में कहा अनुत्तर है।
केवलिप्रणीत व अहिंसा लक्षणवाला सत्यअधिष्ठित है।।
है विनय मूल इसका व क्षमा बल अठरह हजार शील मंडित।
चौरासी लाख गुणों भूषित नव ब्रह्मचर्य से नित रक्षित।।६।।
नियति-विषयव्यावृतिलक्षण व परिग्रहत्यागफलों वाला।
उपशम प्रधान यह क्षमामार्गदेशक मुक्तीपथ उजियाला।
यह सिद्धिमार्ग का चरमसीम इसमें जो मैंने दोष किये।
वह क्रोध मान माया व लोभ अज्ञान अदर्शन से हि हुए।।७।।
शक्ती से हीन असंयम से श्रद्धानरहित अप्रतिग्रहणा।
या बिना विचारे अबोध राग द्वेष मोह या हास्य मना।।
भय प्रदोष से व प्रमाद प्रेम विषयों की गृद्धी लज्जा से।
गारव व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से मुझसे।।८।।
आलस से कर्मभार से कर्मों की गुरुता से कर्मों के।
दुश्चरित्र से कर्मों के उत्कटपने त्रिगारवगुरुता से।।

गरहामि आगमेसिं च, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राईभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयण-मेगभत्तं पच्चुप्पण्णं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्टरुद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि,

---

श्रुतज्ञान अल्पता से परमार्थज्ञान मुझको नहिं होने से।
दुश्चरित पूर्व में हुए उन्हीं सबकी गर्हा करता हूँ मैं।।९।।
होने वाले अत्याज्य भाव का प्रत्याख्यान मैं करता हूँ।
जिनका आलोचन नहीं किया उनका आलोचन करता हूँ।।
अनिंदित की निन्दा करता अगर्हित की गर्हा करता हूँ।
जिनका प्रतिक्रमण नहीं कीया प्रतिक्रमण उन्हीं का करता हूँ।।१०।।
मैं विराधना को तजता हूँ आराधन स्थिर करता हूँ।
अज्ञानत्रयी को तजता हूँ संज्ञानपांच स्थिर करता हूँ।।
मिथ्यादर्शन को तजता हूँ सम्यग्दर्शन थिर करता हूँ।
मिथ्याचारित को तजता हूँ सम्यक्चारित स्थिर करता हूँ।।११।।
कुतप-बालतप तजता हूँ बारह तप को स्थिर करता हूँ।
अकरणीय को तजता हूँ करणीय को स्थिर करता हूँ।।
प्राणातिपात को तजता हूँ, अभयदान को स्थिर करता हूँ।
मैं झूठ वचन को तजता हूँ, सत्यवचन को स्थिर करता हूँ।।१२।।
अदत्तग्रहण को तजता हूँ दी गई योग्य में स्थिर होता हूँ।
अब्रह्मचर्य को तजता हूँ ब्रह्मचर्य में स्थिर होता हूँ।।
मैं सर्व परिग्रह तजता अपरिग्रह में स्थिर होता हूँ।
मन वचन काय कृत कारितादि से रात्रि भोजन तजता हूँ।।१३।।
सुसमयप्राप्त प्रासुक इकबार दिन भुक्ति में स्थिर होता हूँ।
मैं आर्तरौद्र ध्यान तजता हूँ धर्मशुक्ल ध्यान थिर करता हूँ।।

किण्हणील-काउलेस्सं वोस्सरामि तेउ-पम्म-सुक्कलेसं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि,असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयण-मेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि दुवादसविह-तवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि णिसल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं

कृष्ण नील कापोत छोड़ता हूँ, पीत पद्म शुक्ल स्थिर करता हूँ।
मैं सब आरंभ छोड़ता हूँ, अनारंभ में स्थिर होता हूँ।।१४।।
मैं सर्व असंयम तजता हूँ, संयम में सुस्थिर होता हूँ।
सग्रन्थ अवस्था तजता हूँ, निर्ग्रन्थ में स्थिर होता हूँ।।
सवस्त्र अवस्था तजता हूँ निर्वस्त्र में स्थिर होता हूँ।
मैं अलोच को परिहरता हूँ लोच क्रिया में स्थिर होता हूँ।।१५।।
स्नान क्रिया को तजता हूँ अस्नान में स्थिर होता हूँ।
अभूमि शयन को तजता हूँ भूशयन में स्थिर होता हूँ।।
मैं दंतधावन को तजता हूँ अदंतधावन स्थिर करता हूँ।
अस्थिति भोजन को तजता हूँ, इक भक्त स्थिति भुक्ति स्वीकरता हूँ।।१६।।
अपाणिपात्र को तजता हूँ पाणिपात्र में स्थिर होता हूँ।
मैं क्रोध कषाय को तजता हूँ मैं क्षमा में स्थिर होता हूँ।।
मैं मान कषाय को तजता हूँ मार्दव में स्थिर होता हूँ।
मैं माया को परिहरता हूँ आर्जव में स्थिर होता हूँ।।१७।।
मैं लोभ भाव को तजता हूँ संतोष में स्थिर होता हूँ।
मैं अतप-कुतप को तजता हूँ द्वादशतप में स्थिर होता हूँ।।
मिथ्यात्व सभी छोड़ता हूँ समकित की प्राप्ती करता हूँ।
सम्पूर्ण अशील छोड़ता हूँ सुशील की प्राप्ती करता हूँ।।१८।।

परिवज्जामि आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं, संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्ख-परिहाणिमग्गं सुचरिय-परिणिव्वाण-मग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाण-मंतं करेंति त सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं (भव्वं) ण भविस्सदि, कयाचि वा कुदोचि वा णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा

मैं तीनों शल्य छोड़ता हूं निःशल्य की प्राप्ती करता हूँ।
मैं अविनयवृत्ति छोड़ता हूँ विनयगुण की प्राप्ती करता हूँ।।
मैं अनाचार को तजता हूँ आचार को स्वीकृत करता हूँ।
मैं सब उन्मार्ग छोड़ता हूँ जिनमार्ग को स्वीकृत करता हूँ।।१९।।
अक्षमा भाव को तजता हूँ, मैं क्षमा को स्वीकृत करता हूँ।
मैं त्रय अगुप्ति को तजता हूँ, त्रयगुप्ती स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अमुक्ति को छोड़ रहा सुमुक्ति को स्वीकृत करता हूँ।
मैं असमाधी को तजता हूँ, सुसमाधी स्वीकृत करता हूँ।।२०।।
मैं ममता को परिहरता हूँ, निर्ममता स्वीकृत करता हूँ।
जो नहिं भाये सो भाता हूँ जो भाये उन्हें न भाता हूँ।।
निर्ग्रन्थरूप यह प्रवचन कथित अनुत्तर केवलि संबंधी।
रत्नत्रयमय नैकायिक सम-एकत्वरूप सामायिक भी।।२१।।
संशुद्ध शल्ययुत जन का शल्यविघातक और सिद्धिपथ है।
यह श्रेणिमार्ग अरु क्षमामार्ग मुक्तीपथ तथा प्रमुक्ति पथ है।।
यह मोक्षमार्ग व प्रमोक्षमार्ग निर्यानपथ रु निर्वाण मार्ग।
यह सर्वदुःखपरिच्युतीमार्ग सुचरित्रपरिनिर्वाण मार्ग।।२२।।
इसमें स्थित जीव सिद्ध होते बुद्ध होते मुक्ती पाते।
परिनिर्वाण प्राप्त करते सब दुःखों का भि अंत करते।।
मैं इसकी श्रद्धा करता हूँ इसकी ही प्राप्ती करता हूँ।
इसमें ही मैं रुचि रखता हूँ इसका ही स्पर्श करता हूँ।।२३।।

सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (संवच्छरिय) इरियावहि-केसलोचाइ-चारस्स संथाराइ-चारस्स पंथाइ-चारस्स सव्वाइचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि। पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु।

इससे बढ़कर नहिं अन्य कोई नहिं हुआ न है नहिं होगा ही।
सुज्ञान से दर्शन से चरित्र से सूत्र से शील व गुण से ही।
तप से व नियम से व्रत से अरु आचरण तथा आश्रय से भी।
आर्जव लाघव या अन्य किसी से वीर्य से भी उत्कृष्ट यही।।२४।।
मैं श्रमण-मुनी हूँ संयत हूँ मैं उपरत हूँ उपशांत भि हूँ।
परिग्रह वंचन व मान माया अरु असत्य से अतिविरक्त हूँ।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचरित्र से विरक्त हूँ।
जिन प्रणीत सम्यग्ज्ञान सुदर्शन चारित में रुचि रखता हूँ।।२५।।
जो मेरे से दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक
(चउमासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमणविधि में।
ईर्यापथ केशलोच अतीचार संस्तरादि अतिचारों में।।
पंथादिक अतिचार सर्वअतिचार तथा उत्तमारथ में।
विशुद्धि हेतु प्रतिक्रमण करूं रुचि धारूँ सम्यक्चारित में।।२६।।
पंचम महाव्रत में परिग्रह लेने से विरती होना है।
यह महाव्रत उपस्थापनामंडल-प्रशस्त सुव्रतारोपण है।।
यह महाअर्थ है महान्गुणमय महानुभाव-महात्म्य है।
महासुयश महापुरुष तीर्थंकर आदि जनों से अनुष्ठित है।।२७।।
अरिहंत साक्षि से सिद्धसाक्षि से, साधुसाक्षि से आत्मसाक्षि से।
परसाक्षी देवतासाक्षि से, विशुद्धिहेतु उत्तमारथ में।।

पंचमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।।३।।

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण, से असणं वा पाणं वा खादियं वा सादियं वा कडुयं वा कसायं वा आमिलं वा महुरं वा लवणं वा अलवणं वा सचित्तं वा अचित्तं वा तं सव्वं चउव्विहं आहारं णेव सयं रत्तिं भुंजिज्ज णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविज्ज णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतं पि समणुमणिज्ज, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोसिरामि पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण चउव्विहो आहारो सयं रत्तिं भुत्तो अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविदो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतो वि समणुमण्णिदो, तं पि

यह महाव्रत मुझमें सुव्रत हो, दृढ़व्रत हो निस्तारक होवे।
पारक तारक आराधक भी, मुझमें अरु तुममें भी होवे।।२७।।
पंचमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३बार।।
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।३ बार।।
हे भगवन्! अब मैं छठे अणुव्रत में त्रयविध मन वच तन से।
रात्रीभोजन को जीवनभर मैं स्वयं त्यागता हूँ रुचि से।।
इसमें जो भोजन पान खाद्य अरु स्वाद्य कटुक या कषायले।
खट्टे मीठे नमकीन बिना नमकीन सचित्त अचित्त भले।।१।।
ये चउविध के आहार मुझे नहिं स्वयं रात्रि में खाना था।
नहिं पर से भोजन करवाना नहिं मुझको अनुमति देना था।।
हे भगवन् ! इनके अतिचारों का प्रतिक्रमण मैं करता हूँ।
अपनी निंदा गर्हा करता पूर्वकृत दोष छोड़ता हूँ।।२।।
हे भगवन् ! मुझसे जो भी राग द्वेष या मोह वशंगत हो।
चउविध आहार निशा में स्वयं किया पर से करवाया हो।।
या रात्री भोजन करते को मैंने अनुमति भी दीया हो।
मैं प्रतिक्रमण करता हूँ अरु तजता हूँ इन सब दोषों को।।३।।

इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससील-सहस्स-परिमंडियस्स चउरासीदि-गुणसय-सहस्स-विहूसियस्स णवबंभचेर-गुत्तस्स णियदि-लक्खणस्स परिचागफलस्स उवसम-पहाणस्स खंतिमग्ग-देसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्ग-पज्जव-साणस्स से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा अदंसणेण वा अविरिएण वा असंयमेण वा असमणेण वा अणहि-गमणेण वा अमिमंसिदाएण[१] वा अबोहिदाएण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आलसदाए (बालिसदाए) कम्मभारिग-दाए कम्मगुरुग-दाए कम्मदुच्चरिदाए कम्मपुरुक्कड-दाए तिगारवगुरुगदाए अबहुसुददाए अविदिदपरमट्ठदाए तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि आगमेसिं च, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि,

निर्ग्रंथरूप यह पावन है प्रवचन में कहा अनुत्तर है।
केवलिप्रणीत व अहिंसालक्षणवाला सत्य अधिष्ठित है।।
है विनय मूल इसका व क्षमा बल अठरह हजार शील मंडित।
चौरासी लाख गुणों भूषित नव ब्रह्मचर्य से नित रक्षित।।४।।
नियति-विषयव्यावृत्तिलक्षण व परिग्रह त्याग फलों वाला।
उपशम प्रधान यह क्षमामार्गदेशक मुक्तीपथ उजियाला।।
यह सिद्धिमार्ग का चरमसीम इसमें जो मैंने दोष किये।
वह क्रोध मान माया व लोभ अज्ञान अदर्शन से हि हुए।।५।।
शक्ती से हीन असंयम से श्रद्धानरहित अप्रतिग्रहणा।
या बिना विचारे अबोध राग द्वेष मोह या हास्य मना।।
भय प्रदोष से व प्रमाद प्रेम विषयों की गृद्धी लज्जा से।
गारव व अनादर से या अन्य किन्हीं भी कारण से मुझसे।।६।।
आलस से कर्मभार से कर्मों की गुरुता से कर्मों के।
दुश्चरित्र से कर्मों के उत्कटपने त्रिगारव गुरुता से।।
श्रुतज्ञान अल्पता से परमार्थ ज्ञान मुझको नहिं होने से।
दुश्चरित पूर्व में हुए उन्हीं सबकी गर्हा करता हूँ मैं।।७।।

१. 'अमीमंसगदाए' इति पाठः टीकायां।

अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राईभोयणं (राइभोजणं) वोस्सरामि दिवाभोयण-मेगभत्तं पच्चुप्पण्णं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्ट-रुद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि किण्हणील-काउलेस्सं वोस्सरामि तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं

होने वाले अत्याज्य भाव का प्रत्याख्यान मैं करता हूँ।
जिनका आलोचन नहीं किया उनका आलोचन करता हूँ।।
अनिंदित की निंदा करता अगर्हित की गर्हा करता हूँ।
जिनका प्रतिक्रमण नहीं कीया प्रतिक्रमण उन्हीं का करता हूँ।।८।।
मैं विराधना को तजता हूँ, आराधन स्थिर करता हूँ।
अज्ञानत्रयी को तजता हूँ, संज्ञान पाँच स्थिर करता हूँ।।
मिथ्यादर्शन को तजता हूँ, सम्यग्दर्शन स्थिर करता हूँ।
मिथ्याचारित को तजता हूँ, सम्यक्चारित स्थिर करता हूँ।।९।।
मैं कुतप-बालतप तजता हूँ, बारह तप में स्थिर होता हूँ।
मैं अकरणीय को तजता हूँ, करणीय में स्थिर होता हूँ।।
प्राणातिपात को तजता हूँ, अभयदान में स्थिर होता हूँ।
मैं झूठ वचन को तजता हूँ, वच सत्य में स्थिर होता हूँ।।१०।।
अदत्तग्रहण को तजता हूँ दी गई योग्य में थिर होता हूँ।
अब्रह्मचर्य को तजता हूँ ब्रह्मचर्य में स्थिर होता हूँ।।
मैं सर्व परिग्रह तजता हूँ अपरिग्रह में स्थिर होता हूँ।
मन वचन काय कृत कारितादि से रात्री भोजन तजता हूँ।।११।।
सुसमयप्राप्त प्रासुक इकबार दिन भुक्ति में थिर होता हूँ।
आर्तरौद्र ध्यान को तजता हूँ, धर्मशुक्ल ध्यान स्थिर करता हूँ।।
कृष्ण नील कापोत तजता हूँ, पीत पद्म शुक्ल स्थिर करता हूँ।
मैं सब आरंभ छोड़ता हूँ, अनारंभ में स्थिर होता हूँ।।१२।।

वोस्सरामि णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयण-मेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि दुवादसविह-तवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि णिसल्लं उवसंपज्जामि अविणयं परिवज्जामि विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसंपज्जामि,

---

मैं सर्व असंयम तजता हूँ, संयम में सुस्थिर होता हूँ।
सग्रंथ अवस्था तजता हूँ, निर्ग्रन्थ में स्थिर होता हूँ।।
सवस्त्र अवस्था तजता हूँ, निर्वस्त्र में स्थिर होता हूँ।
मैं अलोच को परिहरता हूँ, कचलोच में स्थिर होता हूँ।।१३।।
स्नान क्रिया को तजता हूँ, अस्नान में स्थिर होता हूँ।
अभूमि शयन को तजता हूँ, भूशयन में स्थिर होता हूँ।।
मैं दंतधावन को तजता हूँ, अदंतधावन स्वीकरता हूँ।
अस्थिति भोजन को तजता हूँ,
इक भक्त स्थिति भुक्ति स्वीकरता हूँ।।१४।।
अपाणिपात्र को तजता हूँ, पाणिपात्र में स्थिर होता हूँ।
मैं क्रोध कषाय को तजता हूँ, मैं क्षमा में स्थिर होता हूँ।।
मैं मान कषाय को तजता हूँ, मार्दव में स्थिर होता हूँ।
मैं माया को परिहरता हूँ, आर्जव में स्थिर होता हूँ।।१५।।
मैं लोभ भाव को तजता हूँ, संतोष में स्थिर होता हूँ।
मैं अतप-कुतप को तजता हूँ, द्वादशतप में स्थिर होता हूँ।।
मिथ्यात्व सभी छोड़ता हूँ, समकित की प्राप्ती करता हूँ।
सम्पूर्ण अशील छोड़ता हूँ, सुशील की प्राप्ती करता हूँ।।१६।।
मैं तीनों शल्य छोड़ता हूँ, निःशल्य की प्राप्ती करता हूँ।
मैं अविनयवृत्ति छोड़ता हूँ, विनयगुण स्वीकृत करता हूँ।।

अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्ख-परिहाणिमग्गं सुचरिय-परिणिव्वाण-मग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाण-मंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं (भव्वं) ण भविस्सदि, कयाचि वा कुदोचि वा णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा

मैं अनाचार को तजता हूँ, आचार को स्वीकृत करता हूँ।
मैं सब उन्मार्ग छोड़ता हूँ, जिनमार्ग को स्वीकृत करता हूँ।।१७।।
अक्षमा भाव को तजता हूँ, मैं क्षमा को स्वीकृत करता हूँ।
मैं त्रय अगुप्ति को तजता हूँ, त्रयगुप्ती स्वीकृत करता हूँ।।
मैं अमुक्ति को परिहरता हूँ, सुमुक्ति स्वीकृत करता हूँ।
मैं असमाधी को तजता हूँ, सुसमाधी स्वीकृत करता हूँ।।१८।।
मैं ममता को परिहरता हूँ, निर्ममता स्वीकृत करता हूँ।
जो नहिं भाये सो भाता हूँ, जो भाये उन्हें न भाता हूँ।
निर्ग्रंन्थ रूप यह प्रवचन कथित अनुत्तर केवलि संबंधी।
रत्नत्रयमय नैकायिक सम-एकत्वरूप सामायिक भी।।१९।।
संशुद्ध शल्ययुत जन का शल्यविघातक और सिद्धिपथ है।
यह श्रेणिमार्ग अरु क्षमामार्ग मुक्तीपथ तथा प्रमुक्ति पथ है।।
यह मोक्षमार्ग व प्रमोक्षमार्ग निर्यानपथ रु निर्वाण मार्ग।
यह सर्वदुःखपरिच्युतीमार्ग सुचरित्रपरिनिर्वाण मार्ग।।२०।।
इसमें स्थित जीव सिद्ध होते बुद्ध होते मुक्ती पाते।
परिनिर्वाण प्राप्त करते, सब दुःखों का भि अंत करते।।
मैं इसकी श्रद्धा करता हूँ, इसकी ही प्राप्ती करता हूँ।
इसमें ही मैं रुचि रखता हूँ, इसका ही स्पर्श करता हूँ।।२१।।

सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिए-राइय-पक्खिय (चउमासिय) (संवच्छरिय) इरियावहि-केसलोचाइचारस्स संथारादिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि। छट्ठे अणुव्वदे राईभोयणादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं

इससे बढ़कर नहिं अन्य कोई नहिं हुआ न है नहिं होगा ही।
सुज्ञान से दर्शन से चरित्र से सूत्र से शील व गुण से ही।।
तप से व नियम से व्रत से अरु, आचरण तथा आश्रय से भी।
आर्जव लाघव या अन्य किसी से वीर्य से भी उत्कृष्ट यही।।२२।।

मैं श्रमण-मुनी हूँ संयत हूँ, मैं उपरत हूँ उपशांत भि हूँ।
परिग्रह वंचन व मान माया अरु असत्य से अतिविरक्त हूँ।।
मिथ्या अज्ञान मिथ्यादर्शन मिथ्याचरित्र से विरक्त हूँ।
जिन प्रणीत सम्यग्ज्ञान सुदर्शन चारित में रुचि रखता हूँ।।२३।।

जो मेरे से दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक
(चउमासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण विधि में।
ईर्यापथ केशलोंच अतीचार संस्तरादि अतिचारों में।।
पंथादिक अतीचार सर्वअतिचार तथा उत्तमारथ में।
विशुद्धी हेतु प्रतिक्रमण करूं रुचि धारूं सम्यक् चारित में।।२४।।

इस छट्ठे अणुव्रत में रात्री भोजन से विरती होना है।
यह अणुव्रत उपस्थापनामण्डल-प्रशस्त सुव्रतारोपण है।।
यह महाअर्थ है महानगुणमय महानुभाव-महात्म्य है।
महासुयश महापुरुष तीर्थंकर आदि जनों से अनुष्ठित है।।२५।।

अरिहंतसाक्षि से सिद्धसाक्षि से, साधुसाक्षि से आत्मसाक्षि से।
परसाक्षी देवतासाक्षि से, विशुद्धि हेतु उत्तमारथ में।।

परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे अणुव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु।

षष्ठं अणुव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।।३।।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।३ बार।।

चूलियं तु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे।।१।।
मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया - कायसंयदो।
एसणा - समिदि - संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो।।२।।
अकोहणो अलोहो य, भय - हस्स - विवज्जिदो।
अणुवीचि-भास-कुसलो, विदियं वदमस्सिदो।।३।।
अदेहणं भावणं चावि, उग्गहं[१] य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु, तिदियं वदमस्सिदो।।४।।

यह अणुव्रत मुझमें सुव्रत हो, दृढ़व्रत हो निस्तारक होवे।
पारक तारक आराधक भी, मुझमें अरु तुममें भी होवे।।२६।।
षष्ठं अणुव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु। (३ बार)
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।३ बार।।

(पच्चीस भावना)

पच्चीस भावना है जिसमें ऐसी चूलिका कहूँगा मैं।
मानी हैं पाँच पाँच ये भी जो हैं एक एक महाव्रत में।।१।।
मनगुप्ति वचनगुप्ति ईर्यासमिती व कायसंयत रखना।
एषणसमिती ये पाँच भावना प्रथम महाव्रत की धरना।।२।।
क्रुध लोभ और भय हास्य त्याग अनुवीचीभाषा कुशल कही।
आगम अनुकूलवचन दूजे व्रत की ये पाँच भावना ही।।३।।
अदेहनं-यह तन ही धन है यह देह अशुचि आदी भावन।
अवग्रह-गतपरिग्रह अशन पान में संतुष्टी व्रत की तृतियन।।४।।

---

१. 'ओग्गहं' इति पाठः।

इत्थिकहा इत्थिसंसग्ग - हास - खेड - पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य, चउत्थं वदमस्सिदो।।५।।
सचित्ताचित्त - दव्वेसु, बज्झंब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो, पंचमं वदमस्सिदो।।६।।
धिदिमंतो खमाजुत्तो, झाणजोग-परिट्ठिदो।
परीसहाणउरं[1] देंत्तो, उत्तमं वदमस्सिदो।।७।।
जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोयम[2]।।
सारं झाणंति णामेण, सव्वं[3] बुद्धेहिं देसिदं।।८।।

इच्चेदाणि पंचमहव्वयाणि राईभोयणादो वेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउग्ग-पदाणि सउत्तर-पदाणि सम्मं धम्मं अणुपालइत्ता समणा भयवंता णिग्गंथादोओण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणियंति[4] सव्व-दुक्खाण-मंतं करेंति परिविज्जाणंति। तं जहा-

पाणादिवादं चहि मोसगं च, अदत्त-मेहुण्ण-परिग्गहं च।
वदाणि सम्मं अणुपाल-इत्ता, णिव्वाणमग्गं विरदा उवेंति।।१।।

स्त्री की कथा व संसर्ग अरु हास्य व क्रीडा अवलोकन।
इन सबको राग से नहिं करना चौथे व्रत में स्थिरीकरण।।५।।
सचित्त अचित्त द्रव्य अरु बाह्य अभ्यंतर द्रव्य व परिग्रह से।
विरती ये पांच भावनाएं, पाँचवें महाव्रत की ही हैं।।६।।
उत्तमव्रत है वो ही जो धैर्य सहित अरु क्षमायुक्त होता।
जो ध्यान योग में स्थित परिषह सहने में अभिमुख रहता।।७।।
सब सारों में जो सार अहो गौतम! वह सार सर्व उत्तम।
जो "ध्यान" नाम से कहा वही है सार सर्वकेवलि भणितं।।८।।
ये पांच महाव्रत रात्रीभोजनविरति छठे अणुव्रतयुत हैं।
भावनासहित मातृकापदों युत उत्तरपदयुत-गुणयुत हैं।।
इस सम्यक् धर्म का अनुपालन करके भगवान श्रमण मुनिवर।
निर्ग्रंथलिंग से सिद्ध बुद्ध होते व मुक्त होते सुखकर।।
परिनिर्वृत होते सर्वदुखों का अंत करें त्रिभुवन जानें।
यह श्रमणधर्म ही शिवप्रद है इसको आगे इस विध मानें।।
प्राणीवध झूठ चौर्य मैथुन परिग्रह पापों को तज करके।
इन व्रत का सम्यक् पालन कर संयत निर्वाणमार्ग लभते।।

---

१. 'परिसहाणुरदंतो' इति पाठः-परीषहाणामुरो ददानोऽभिमुखी भवन् । २. 'गोदम' इति पाठः। ३. 'सव्वबुद्धेहिं' इति पाठः। ४. परिणिव्वायंति इति पाठांतरं।

जाणि काणि वि सल्लाणि, गरहिदाणि जिणसासणे।
ताणि सव्वाणि वोसरित्ता, णिसल्लो विहरदे सया मुणी।।२।।
उप्पण्णा-णुप्पण्णा, माया अणुपुव्वं[1] सो णिहंतव्वा।
आलोयण पडिकमणं, णिंदण - गरहणदाए।।३।।
अब्भुट्ठिद-करणदाए, अब्भुट्ठिद-दुक्कड-णिराकरणदाए।
भवं भावपडिक्कमणं, सेसा पुण दव्वदो भणिदा।।४।।
एसो पडिकमणविही[2], पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं।
संजम - तवट्ठि - दाणं[3], णिग्गंथाणं महरिसीणं।।५।।
अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ताहीणं च जं भवे एत्थ।
तं खमउ णाणदेवय! देउ समाहिं च बोहिं[4] च।।६।।
काऊण णमोक्कारं, अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं, लोयम्मि य सव्वसाहूणं।।७।।

इच्छामि भंते! पडिक्कमणमिदं, सुत्तस्स मूलपदाणं उत्तरपदाणमच्चासणदाए। तं जहा-

---

जिनशासन में जो कोई भी हैं शल्य निंद्य माने जाते।
उन सबको तज निःशल्य हुए मुनिराज सदा विहरण करते।।
उत्पन्न हुई या अनुत्पन्न माया को तत्क्षण नष्ट करो।
आलोचन प्रतिक्रमण निंदन गर्हण से व्रत की शुद्धि करो।।
जिस क्षण मायादिक पैदा हों उस क्षण ही उन्हें दूर करना।
ये भावप्रतिक्रमणं अरू शेष द्रव्यप्रतिक्रमण पाठ पढ़ना।।
सम्पूर्ण जिनेन्द्रों ने ये ही प्रतिक्रमणविधी है बतलाई।
संयम तप में सुस्थित निर्ग्रंथ महर्षी मुनि के लिए कही।।
अक्षर पद अर्थ हीन मात्रा से हीन पढ़ा इसमें जो भी।
हे ज्ञानदेवते! क्षमा करो मुझको देवो समाधि बोधी।।
अरिहंतों को कर नमस्कार सिद्धों को नमस्कार करके।
आचार्य उपाध्याय को व लोक में सर्वसाधु को भी नमते।।
हे भगवन्! सूत्र के मूलपदों उत्तरपद के आसादन से।
जो दोष हुए उनका प्रतिक्रमण करूं मैं सो वह इस विध से।।

---

१. 'अणपुव्वसो' इति पाठः। २. 'पडिक्कमणविहि' इति पाठः। ३. 'तवट्ठियाणं' इति पाठः। ४. 'मे बोहि' इति पाठः।

णमोक्कारपदे अरहंतपदे सिद्धपदे आइरियपदे उवज्झायपदे साहुपदे मंगलपदे लोगोत्तमपदे[1] सरणपदे सामाइयपदे चउवीसतित्थयरपदे[2] वंदणपदे पडिक्कमणपदे पच्चक्खाणपदे काउसग्गपदे असीहियपदे णिसीहियपदे अंगंगेसु पुव्वंगेसु पइण्णएसु पाहुडेसु पाहुडपाहुडेसु कदकम्मेसु वा भूदकम्मेसु वा णाणस्स अइक्कमणदाए दंसणस्स अइक्कमणदाए चरित्तस्स अइक्कमणदाए तवस्स अइक्कमणदाए वीरियस्स अइक्कमणदाए, से अक्खरहीणं वा पदहीणं वा सरहीणं वा वंजणहीणं वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा थुईसु[3] वा अट्ठक्खाणेसु वा अणियोगेसु[4] वा अणियोगद्दारेसु[5] वा जे भावा पण्णत्ता अरहंतेहिं भयवंतेहिं तित्थयरेहिं आदि-यरेहिं तिलोगणाहेहिं तिलोग-बुद्धेहिं तिलोग-दरसीहिं

जो नमस्कारपद अर्हत् पद अरु सिद्धपदाचार्यपद में।
उपाध्यायपद साधूपद मंगलपद लोकोत्तम पद में।।
शरणंपद सामायिकपद चौबिस तीर्थंकर पद वंदनपद में।
प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान रु कायोत्सर्ग असहि निसहि पद में।।
अंगों में पूर्वों में व प्रकीर्णक प्राभृत प्राभृतप्राभृत में।
कृतकर्मों[6] भूतकर्म[7] में आसादन से दोष विशोधूं मैं।।
ज्ञान में जो आसादन की दर्शन चरित्र तप वीरज में।
आसादन कर जो दोष किये उन सबका शोधन करता मैं।।
इनमें अक्षर से हीन व पद से हीन व स्वर से हीन पढ़ा।
व्यंजन से हीन व अर्थहीन या ग्रंथहीन जु अशुद्ध पढ़ा।।
स्तव स्तुति अर्थाख्यानों के अनुयोगों के पढ़ने में।
अनुयोगद्वार में हीन आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता मैं।।
अर्हंतदेव भगवंत तीर्थंकर आदीकर त्रैलोक्यनाथ।
त्रिभुवनज्ञानी त्रिभुवनदर्शी ने प्रतिपादे हैं जो पदार्थ।।
उनकी मैं श्रद्धा करता हूँ उनकी ही प्राप्ती करता हूँ।
उनमें ही मैं रुचि रखता हूँ उनका ही स्पर्श करता हूँ।।

१. 'लोगुत्तमपदे' इति पाठः। २. चउवीसं तित्थ.....इति पाठ। ३. 'थुइसु' इति पाठ। ४. 'अणिओगेसु' इति पाठः। ५. 'अणि ओगदारेसु' इति पाठः।६. पूर्व में की गई छह आवश्यक आदि क्रियाएं, अथवा शुभ-अशुभ मन वचन काय की क्रियाएं और उनके निमित्त से हुए पुण्य-पाप कर्म, इनमें जो आसादना हुई हो। ७. भूत-अविद्यमान में।

ते सद्दहामि ते पत्तियामि ते रोचेमि ते फासेमि, ते सद्दहंतस्स ते पत्तयंतस्स ते रोचयंतस्स ते फासयंतस्स जो मए देवसिओ राईओ पक्खिओ (चउमासिओ) (संवच्छरिओ) अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो अकाले सज्झाओ कओ काले वा परिहाविदो अत्थाकारिदं[1] मिच्छामेलिदं (आमेलिदं) वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं आवसएसु पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अह पडिवदाए विदिए तदिए चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए सत्तमीए अट्ठमीए णवमीए दसमीए एयारसीए वारसीए तेरसीए चउद्दसीए पुण्णमासीए पण्णरस दिवसाणं पण्णरस-राईणं, (चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तर-सयदिवसाणं वीसुत्तर-सयराईणं) (बारसण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्हं छावट्ठिसय-दिवसाणं तिण्हं छावट्ठि-सय-राईणं), (पंच-वरिसादो)[2]

इनकी श्रद्धा करते हुए अरु इनकी प्राप्ती करते हुए जो।
इनमें रुचि रखते हुए तथा इनका स्पर्श करते हुए जो।।
मैंने दैवसिक व रात्रिक पाक्षिक आदिक में जो दोष किये।
अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग किये।।
जो अकाल में स्वाध्याय किया अरु काल में स्वाध्याय नहीं किया।
सहसा किया बिना विवेक किया मिथ्या के साथ मिलाय दिया।।
अन्यथा पढ़ा अन्यथा कहा अन्यथा ग्रहण कीया भी जो।
आवश्यक में परिहानी की सब दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।
अब एकम दूज तीज चौथी पंचमि छठ सप्तमि अष्टमि में।
नवमी दशमी ग्यारस बारस तेरस चौदश पूनम तिथि में।।
पन्द्रह दिन में पन्द्रह रात्री में दोष किये जो पाक्षिक में।
(चउमास[3] के आठ पक्ष में एक सौ बीस दिवस अरु रात्री में)।।
(इक[4] वर्ष में चौबिस पक्ष में त्रयशत छ्याछठ दिन अरु रात्री में)।
(या[5] पांच वर्ष के परे व अन्दर ''युगप्रतिक्रमण'' के करने में)।
हे भगवन् ! प्रतिक्रमण करके सब दोष विशोधन करता मैं।।

१. 'अच्छाकारिदं' इति पाठः-सहसा कृतं।२. युगान्तरीयप्रतिक्रमणायां हि पंचवर्षेभ्यो......षष्ठादिवर्षे सर्वसंघेन मिलित्वा बृद्धाचार्यस्य पार्श्वे प्रतिक्रमणा श्रोतव्या। ३. चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में यह पंक्ति पढ़नी चाहिए। ४. वार्षिक प्रतिक्रमण में यह पंक्ति पढ़नी चाहिए। ५. पंचवार्षिक युगप्रतिक्रमण में यह पंक्ति पढ़नी चाहिए।

परदो अब्भिंतरदो वा दोण्हं अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामाणं तिण्हं अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामाणं तिण्हं दण्डाणं तिण्हं लेस्साणं तिण्हं गुत्तीणं तिण्हं गारवाणं तिण्हं सल्लाणं चउण्हं सण्णाणं चउण्हं कसायाणं चउण्हं उवसग्गाणं पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं इंदियाणं पंचण्हं समिदीणं पंचण्हं चरित्ताणं छण्हं आवासयाणं छण्हं जीवणिकायाणं सत्तण्हं भयाणं सत्तविहसंसाराणं अट्ठण्हं मयाणं अट्ठण्हं सुद्धीणं अट्ठण्हं कम्माणं अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं णवण्हं बंभचेर-गुत्तीणं णवण्हं णो-कसायाणं दसविह-मुण्हाणं दसविह-समणधम्माणं दसविह-धम्मज्झाणाणं बारसण्हं संजमाणं बारसण्हं तवाणं बारसण्हं अंगाणं तेरसण्हं किरियाणं चउदसण्हं पुव्वाणं पण्णरसण्हं पमायाणं सोलसण्हं कसायाणं पणवीसाए किरियासु पणवीसाए भावणासु बावीसाए परीसहेसु अट्ठारस-सील-सहस्सेसु चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु मूलगुणेसु उत्तरगुणेसु अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि पडिक्कंतं कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदं तस्स भंते!

दो आर्त रौद्र संक्लेश भाव, त्रय अप्रशस्त[1] संक्लेशभाव।
त्रय दण्ड तीन लेश्या त्रयगुप्ती त्रय गारव त्रयशल्य भाव।।
चउ संज्ञा चार कषाय चार उपसर्ग व पांच महाव्रत हैं।।
पंचेंद्रिय पांच समितियां पांच सुचारित छह आवश्यक हैं।।
भय सात सप्तविध संसारा[2] मद आठ आठ शुद्धी मानी।
अठ कर्म आठ प्रवचन माता नव ब्रह्मचर्य गुप्ती मानी।।
नव नोकषाय दशविध मुंडन दश श्रमण धर्म दश धर्मध्यान।
बारह संयम बारह तप बारह अंग व तेरह क्रिया जान।।
चौदह पूरब पन्द्रह प्रमाद सोलह कषाय पच्चीस क्रिया।
पच्चीस भावना बाइस परिषह अठरह हजार शीलचर्या।।
चौरासी लाख सु उत्तरगुण सब मूलगुणों उत्तरगुण में।
अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अनाचार आभोग अनाभोग कीने।।
हे भगवन्! इनके अतिचारों का प्रतिक्रमण करता हूँ मैं।
प्रतिक्रमण करते हुए मुझसे जो कृत कारित अरु अनुमोदन से।।

१. माया, मिथ्या और निदान ये तीन अप्रशस्त संक्लेश परिणाम है। २. एकेंद्रिय के बादर, सूक्ष्म, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के सैनी, असैनी ये सात समास हैसात प्रकार के संसार हैं।

अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं करेमि पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्ह-णाणेण सव्व-लोय-दरसिणा सावयाणं सावियाणं खुड्डयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खा-वदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादि-वादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्ता-दाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोस-परदारा-गमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

अतिचार हुए भगवन्! उनका प्रतिक्रमण अभी मैं करता हूँ।
आत्मा की निंदा गर्हा करता, सब दोषों को तजता हूँ।।
जब तक अर्हंत् भगवंत नमन कर पर्युपासना करता हूँ।
तब तक मैं पाप कर्म अरु, दुश्चारित को भी परिहरता हूँ।।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।
हे आयुष्मन्तों! पहले ही यहां मैंने सुना वीर प्रभु से।
उन महाश्रमण भगवान् महतिमहावीर महाकाश्यप जिनसे।।
सर्वज्ञज्ञानयुत सर्वलोकदर्शी उनने उपदेश दिया।
श्रावक व श्राविका क्षुल्लक अरु क्षुल्लिका इन्हों के लिए कहा।।
ये पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चउ शिक्षाव्रत बारह विध।
हैं सम्यक् श्रावक धर्म इन्हीं, में जो ये अणुव्रत पांच कथित।।
पहला अणुव्रत स्थूलतया, प्राणीवध से विरती होना।
दूजा अणुव्रत स्थूलतया, असत्यवच से विरती होना।।
तीजा अणुव्रत स्थूलतया, बिन दी वस्तू को नहिं लेना।
चौथा अणुव्रत स्थूलतया परदारा से विरती होना।।
निजपत्नी में संतुष्टी या सब स्त्रीमात्र से रति तजना।
पंचम अणुव्रत स्थूलतया इच्छाकृत परीमाण धरना।।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविध-अणत्थ-दण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहो-वासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं[1] चेदि।

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले धम्माणु-रायरत्तो पि माणु-रागरत्तो[2] (पेम्माणुरागरत्तो)

त्रय गुणव्रत में पहला गुणव्रत, दिश विदिशा का प्रमाण करना।
दूजा गुणव्रत नाना अनर्थ दण्डों से नित विरती धरना।।
तीजा गुणव्रत भोगोपभोग, वस्तू की संख्या कर लेना।
ये तीन गुणव्रत कहे, पुनः चारों शिक्षाव्रत को सुनना।।
पहला शिक्षाव्रत सामायिक दूजा प्रोषध उपवास कहा।
तीजा है अतिथि संविभाग चौथा सल्लेखनमरण कहा।।
शिक्षाव्रत चार कहे पुनरपि, अभ्रावकाश तृतीयव्रत है।
जघन्य श्रावक से उत्तम तक, ये बारह व्रत तरतममय हैं।।
इसमें अभिमत जीव रु अजीव उपलब्ध पुण्य अरु पाप कहे।
आस्रव संवर निर्जर व बंध अरु मोक्ष कुशल नव तत्त्व रहें।।
इनमें धर्मानुराग से रत प्रेमानुराग में रागी हो।
अस्थीमज्जा के सदृश धर्म के, अनुराग में रागी हो[3]।।

---

१. 'तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि' इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है। २. पेम्माणुरागरत्तो सहित पाठ संभावित है। भगवती आराधना में ''भावाणुरागरत्तो ऐसे चार पद हैं। प्रेमानुरागरक्तो। ३. उपर्युक्त बारह व्रतों का धारक-जिसने जीव-अजीव तत्त्व को समझ लिया है तथा जिसने पुण्य-पाप, आस्रव-बंध, संवर-निर्जरा और मोक्ष इन तत्त्वों को उपलब्ध कर लिया है ऐसे नव पदार्थों के विषय में अभिकुशल-निपुण व्यक्ति में धर्मानुराग से अनुरक्त होकर भी माँ-लक्ष्मी के अनुराग में रक्त है। (गृहस्थ होने से परिग्रह का त्यागी नहीं है) एवं अस्थिमज्जा के समान अनुराग से रक्त है। (जिस प्रकार सात धातुओं में अस्थि-हड्डी मज्जा नामक धातु से निरन्तर संलग्न रहती है उसी तरह सह-धर्मियों के साथ प्रीति का होना ऐसी सघन प्रीति को अस्थिमज्जा प्रीति कहते हैं।) ऐसा गृहस्थ मूर्च्छितार्थ-ममतापूर्वक ग्रहण किये गये पदार्थ में, गृहीतार्थ-सामान्य रूप से ग्रहण किये गये पदार्थ में, विहितार्थ-अपने द्वारा किये गये पदार्थ में, पालितार्थ-अपने द्वारा पालन किये गये पदार्थ में, सेवितार्थ-अपने द्वारा सेवित-उपयोग में आने वाले पदार्थ में, निर्ग्रंथ प्रवचन-मुनियों के प्रवचन में, अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ, श्रेयो-कल्याणकारी पदार्थ में, सेवितार्थ-सेवन प्रवृत्ति रूप क्रिया में (प्रमाद से जो हुआ हो वह मिथ्या होवे) ऐसा अभिप्राय है।

अट्ठि-मज्जाणुरायरत्तो मुच्छिदट्ठे गिहिदट्ठे विहिदट्ठे पालिदट्ठे सेविदट्ठे इणमेव णिग्गंथपावयणे अणुत्तरे सेअट्ठे सेवणुट्ठे-

णिस्संकिय-णिक्कंखिय, णिव्विदिगिंछी य अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ट्ठिदिकरणं, वच्छल्ल-पहावणा य ते अट्ठ।।१।।

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि वारसविहं गिहत्थधम्म-मणुपाल-इत्ता-

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमण-मुद्दिट्ठ देसविरदो य।।१।।
महु-मंस-मज्ज-जूआ, वेसादि-विवज्जणासीलो।
पंचाणुव्वय-जुत्तो, सत्तेहिं सिक्खावएहिं संपुण्णो।।२।।

जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया सावियाओ वा खुड्डय खुड्डियाओ वा *अट्ठदह-भवण-वासिय-वाणविंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-देवीओ वदिक्क-मित्तउवरिम-

---

ममतापूर्वक गृहीत वस्तु में, गृहीत वस्तु अरु कृतवस्तू में।
अपने पालन किये पदार्थ में, अपने सेवित सुपदारथ में।।
निर्ग्रंथों के भी प्रवचन में, उत्तम अरु हितकर पदार्थ में।
सेवन की प्रवृत्ती रूप क्रिया में दोष हुए सो मिथ्या हों।।
निःशंकित निःकांक्षित अरु निर्विचिकित्सा अमूढ़दृष्टी हैं।
उपगूहन स्थितीकरण वात्सल प्रभावना अठ अंग कहे।।
ये सभी पांच अणुव्रत त्रयगुणव्रत चउ शिक्षाव्रत माने हैं।
बारहविध गृहस्थधर्मों का अनुपालन श्रावक करते हैं।।
दर्शनव्रत सामायिक प्रोषध सचित्तत्याग निशिभुक्ति त्यजी।
ब्रह्मचर्य व आरंभ परिग्रह अनुमति उद्दिष्ट त्याग ये देशव्रती।।
मधु मांस मद्य जुआ वेश्यादिक व्यसनविवर्जनशील गृही।
पंचाणुव्रतयुत शिक्षाव्रत आदिक सातों से जो पूर्ण वही।।
जो श्रावक और श्राविका या क्षुल्लक व क्षुल्लिका इन व्रत को।
धारण कर अठरहस्थान व भावन व्यंतर में नहिं जाते वो।

---

* १. पृथ्वी २. जल ३. अग्नि ४. वायु ५. वनस्पति ६. दोइंद्रिय ७. तीनइंद्रिय ८. चारइंद्रिय ९. निगोद १०. असंज्ञीपंचेन्द्रिय ११. कुभोगभूमि १२. म्लेक्षज १३. पंचेंद्रियतिर्यंच १४. नारकी १५. नपुंसक १६. स्त्री १७. सुभोग भूमि १८. और मनुष्य, इन अठारह स्थानों में अणुव्रती नहीं जाते हैं एवं भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में और सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियों में भी अणुव्रती नहीं जन्मते हैं। (देखो-प्रस्तावना में)

अण्णदर-महड्ढियासु देवेसु उव्वज्जंति।

तं जहा—सोहम्मी-साण-सणक्कुमार-माहिंद-बंभबंभुत्तर-लांतवकापिट्ठ-सुक्क-महासुक्क-सतार-सहस्सार-आणत-पाणत-आरण-अच्चुत-कप्पेसु उववज्जंति।

अडयंबर-सत्थधरा, कडयंगद-बद्धनउड-कयसोहा।
भासुर - वर - बोहिधरा, देवा य महड्ढिया होंति।।१।।

उक्कस्सेण दोतिण्णि-भव-गहणाणि जहण्णेण सत्तट्ठभव-गहणाणि तदो सुमणु-सुत्तादो सुदेवत्तं सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं तदो साइहत्था[१] पच्छा णिग्गंथा होऊण सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वाणयंति सव्व-दुक्खाणमंतं करेंति। जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं करेमि पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(अनन्तरं साधवः ''थोस्सामि'' इत्यादि दण्डकं पठित्वा सूरिणा सहिताः ''वदसमिदिंदियरोधो'' इत्यादिकं चाधीत्य वीरस्तुतिं कुर्युः)

(अब सभी साधुवर्ग 'थोस्सामिस्तव' बोलें। पुनः आचार्य और सभी साधुवर्ग मिलकर वीरभक्ति आदि पाठ करें।)

ज्योतिषियों में सौधर्म ईशान देवियों में नहिं जाते हैं।
उपरिम वैमानिक देवों में वे महाऋद्धिधर होते हैं।।
वह यह सौधर्मैशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म दिव में।
ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ रु शुक्र अरु महाशुक्र दिव में।।
पुनि शतार सहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत दिव में।
इन सोलह स्वर्गों मे ही ये सदृष्टि सचेलक उपजत हैं।।
वे कटक व बाजूबन्द मुकुट से युत आडंबर शस्त्र धरें।
भासुरवर बोधि धरें बहु ऋद्धी सहित महर्द्धिक देव बनें।।
उत्कृष्टपने से दो त्रय भव व जघन्य से सात आठ भव लें।
फिर मानव से देवपद ले सुदेवपद से सुमनुष्य भव लें।।
फिर सद्गृहस्थ[२] निर्ग्रंथ मुनी हो सिद्ध-बुद्ध हो जाते हैं।
मुक्ती पाते कृतकृत्य बने सब दुःखों का क्षय करते हैं।।
जब तक अर्हत भगवंत नमन कर पर्युपासना करता हूँ।
तब तक सब पापकर्म अरु दुश्चारित को मैं परिहरता हूँ।।

(यहां तक आचार्यश्री ने पाठ पढ़ा है। अनन्तर सभी साधु 'थोस्सामिस्तवन' पढ़ें। पुनः आचार्य सहित सभी साधुवर्ग 'व्रत समिति' इत्यादि पढ़कर वीरभक्ति पढ़ें।)

---

१. 'साधितार्थाः' छाया संभव है। २. यहां 'साइहत्था' का अर्थ 'सद्गृहस्थ' किया है किन्तु 'साधितार्थ' भी संभव है।

वीरभक्तिः

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं [१]पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं निष्ठितकरणवीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(इत्युच्चार्य, ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं यथोक्तानुच्छ्वासान् ३०० [२]कृत्वा ''थोस्सामि'' इत्यादि दण्डकं पठित्वा ''चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं'' इत्यादि स्वयंभुवं ''या सर्वाणि चराचराणि'' इत्यादि वीरभक्ति सांचलिकां पठित्वा ''वदसमिदिंदियरोधो'' इत्यादिकं पठेयुः। तद्यथा-

चन्द्रप्रभ स्तुतिः

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जित-स्वान्त-कषाय-बन्धम् ।।१।।
यस्याङ्ग-लक्ष्मी-परिवेष-भिन्नं, तमस्तमोरेरिव रश्मि-भिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम् ।।२।।
स्वपक्ष-सौस्थित्य-मदावलिप्ता, वाक्सिंहनादै-र्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्र-गण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः।।३।।

व्रत समिति इंद्रियनिरोध छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ!।।१।।

सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं निष्ठितकरण-वीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दण्डक पढ़कर पाक्षिक प्रतिक्रमण में तीन सौ(३००) श्वासोच्छ्वास में जाप्य करके[२] थोस्सामिस्तवन पढ़कर चन्द्रप्रभ स्तुति पढ़कर अंचलिका सहित वीरभक्ति पढ़ें।)

चन्द्रप्रभ स्तुति

शेरछन्द-

हे चन्द्रप्रभो! चन्द्रकिरण सम सफेद हो। मानो द्वितीय चन्द्र ही भूपर उदित अहो।।
इन्द्रादि वंद्य ऋषिपती जिनराज आप हो। अन्तःकषायबंधविजित मैं तुम्हें वंदों।।१।।
जैसे रवी किरण अंधेर नष्ट करे हैं। तब देह कांति वैसे सुप्रकाश धरे हैं।।
यह कांति बाह्य के समस्त तिमिर को नाशे। अरु ध्यानदीप अतिशय मन ध्वांत विनाशे।।२।।
निजपक्ष के श्रेष्ठत्व मद से चूर प्रवादी। तुम वचन सिंहनाद से निर्मद हुए सभी।।
जैसे कि मद से आर्द्रगंडस्थल हुए जिनके! गजराज वे भी सिंहगर्जना से भागते।।३।।

---

१. चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चातुर्मासिक' पद बोलें। वार्षिक प्रतिक्रमण में 'वार्षिक' पद का प्रयोग करें। २. चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में ४०० श्वासोच्छ्वास एवं वार्षिक प्रतिक्रमण में ५०० श्वासोच्छ्वास करें।

यः सर्व-लोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुत-कर्म-तेजाः।
अनन्त-धामाक्षर-विश्व-चक्षुः, [1]समस्त-दुःख-क्षय-शासनश्च।।४।।
स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाभ्र-कलङ्कलेपः।
व्याकोश-वाङ्न्याय-मयूख-मालः, पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे।।५।।

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत्प्रतिक्षण-मतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।१।।

वीरः सर्व-सुरासुरेन्द्र-महितो, वीरं बुधाः संश्रिता
वीरेणाभिहतः स्वकर्म-निचयो, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य वीरं[2] तपो
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि।।२।।

जो कर्मजीत अद्भुत कर्म तेज धारते। आनन्त्यज्ञान शाश्वत विश्वनेत्र धारते।।
सम्पूर्णदुःख नाशन शासन को धरे हैं। त्रिभुवन में परमपद में वो स्थिति करे हैं।।४।।
सब दोषरूप मेघ के कलंक से रहित। अविरोध दिव्यध्वनि किरण से सदा प्रगट।।
सब भव्य कुमुद को प्रफुल्ल करे चन्द्रमा। भगवान वे पावन पवित्र करें मुझ मना।।५।।

वीरभक्ति

(चौबोल छंद)

जो विधिवत् सब लोक चराचर, द्रव्यों को उनके गुण को।
भूत भविष्यत् वर्तमान, पर्यायों को भी नित सबको।।
युगपत् समय-समय प्रति जानें, अतः हुए सर्वज्ञ प्रथित।
उन सर्वज्ञ जिनेश्वर महति, वीर प्रभू को नमूँ सतत।।१।।

वीर सभी सुर असुर इन्द्र से, पूज्य वीर को बुध सेवें।
निज कर्मों को हता वीर ने, नमः वीर प्रभु को मुद से।।
अतुल प्रवर्ता तीर्थ वीर से, घोर वीर प्रभु का तप है।
वीर में श्री द्युति कांति कीर्ति, धृति हैं हे वीर! भद्र तुममें।।२।।

---

१. समन्त इति पाठान्तरं। २. घोरं इति पाठः ग्रंथत्रयीषु।

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयम-योगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसार-दुर्गं विषमं तरन्ति।।३।।

व्रतसमुदय-मूलः, संयम-स्कन्ध-बन्धो
यम-नियम-पयोभि-र्वर्धितः शीलशाखः।
समिति-कलिक-भारो, गुप्ति-गुप्त-प्रवालो
गुण-कुसुम-सुगन्धिः, सत्पश्चित्रपत्रः।।४।।
शिवसुख-फलदायी, यो दया-छाय-यौघः[1]
शुभजन-पथिकानां, खेदनोदे समर्थः।
दुरित - रविज - तापं, प्रापयन्नन्तभावं
स भव-विभव-हान्यै, नोऽस्तु चारित्रवृक्षः।।५।।
चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचम-चारित्र-लाभाय।।६।।

जो नित वीर प्रभू के चरणों, में प्रणमन करते रुचि से।
संयम योग समाधीयुत हो, ध्यान लीन होते मुद से।।
इस जग में वे शोक रहित, हो जाते हैं निश्चित भगवन्।
यह संसार दुर्ग विषमाटवि, इसको पार करें तत्क्षण।।३।।
व्रत समुदाय मूल है जिसका, संयममय स्कन्ध महान् ।
यम अरु नियम नीर से सिंचित बढ़ी सुशाखाशील प्रधान।।
समिति कली से भरित गुप्तिमय, कोपल से सुन्दर तरु है।
गुण कुसुमों से सुरभित सत्तप, चित्रमयी पत्तों युत है।।४।।
शिवसुख फलदायी यह तरुवर, दयामयी छाया से युत।
शुभजन पथिक जनों के खेद, दूर करने में समरथ नित।।
दुरित सूर्य के हुए ताप का, अन्त करे यह श्रेष्ठ महान् ।
वर चारित्र वृक्ष कल्पद्रुम, करे हमारे भव ही हान।।५।।
सभी जिनेश्वर ने भवदुःखहर, चारित को पाला रुचि से।
सब शिष्यों को भी उपदेशा, विधिवत् सम्यक् चारित ये।।
पाँच भेद युत सम्यक् चारित, को प्रणमूँ मैं भक्ती से।
पंचम यथाख्यात चारित की, प्राप्ति हेतु वंदूँ मुद से।।६।।

---

१. 'योद्यः इति पाठः क्रियाकलापे, 'योद्धः' इति टीकायां।

धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्-नास्त्यपरः सुहृद्-भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।७।।
धम्मो मंगल-मुद्दिट्ठं[1], अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।८।।

अंचलिका —इच्छामि भंते। पडिक्कमणादिचार-मालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु जमणियम-संजम-सील-मूलुत्तरगुणेसु सव्व-मईचारं सावज्जजोगं पडिविरदोमि असंखेज्ज-लोग-अज्झवसाण-ठाणाणि अप्पसत्थ-जोग-सण्णाणिंदिय-कसाय-गारवकिरियासु मणवयण-काय-करण-दुप्पणिहाणाणि परिचिंतियाणि किण्हणीलकाउलेस्साओ विकहा-पलिकुंचिएण उम्मग-हस्स-रदि-अरदि-सोय-भय-दुगंछ-वेयण-विज्जंभ-जंभाई-आणि अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणि परिणामिदाणि

धर्म सर्वसुख खानि हितंकर, बुधजन करें धर्म संचय।
शिवसुखप्राप्त धर्म से होता, उसी धर्म के लिए नमन।।
धर्म से अन्य मित्र नहिं जग में, दयाधर्म का मूल कहा।
मन को धरूँ धर्म में नित, हे धर्म! करो मेरी रक्षा।।७।।
धर्म महा मंगलमय है यह, कहा वीर प्रभु ने जग में।
प्रमुख अहिंसा संयम तपमय, धर्म सदा उत्तम सब में।
जिसके मन में सदा धर्म है, सुरगण भी उसको प्रणमें।
मैं भी नमूँ धर्म को संतत, धर्म बसो मेरे मन में।।८।।

अंचलिका- हे भगवन! श्री वीर भक्ति का, कायोत्सर्ग किया जो मैं।
प्रतिक्रमण के अतिचारों की, आलोचन करता हूँ मैं।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित तप, वीर्य पाँच आचारों में।
संयम नियम शील यम में औ, मूलगुणों उत्तर गुण में।।
जितने भी अतिचार हुए औ, पापयोग भी जो मुझसे।
उन सबसे मैं विरक्त होकर, आलोचन करता रुचि से।।
असंख्य लोकसम अध्यवसाय, स्थान योग अप्रशस्त कहे।
संज्ञा इन्द्रिय कषाय गारव, किरियाओं में जो कि हुए।।

१. 'मुक्किट्ठं' इति पाठः टीकायां।

अणिहुदकर चरण-मण-वयण-काय-करणेण अक्खित्त-बहुल-परायणेण अपडि-पुण्णेण वा सरक्खरावय-संघा[1]यपडिवत्तिएण अच्छाकारिदं मिच्छामेलिदं आमेलिदं वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहा-पडिच्छदं आवसएसु परिहीणदाए कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदिसयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

शान्तिचतुर्विंशति स्तुतिः

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकर-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

मन वच तन के अशुभयोग से, चिते कृष्ण नील कापोत।
लेश्या विकथा उत्पथ ग्लानी, हास्य रती अरती भय शोक।।
वेद विजृंभित आर्तरौद्र, संक्लेश भाव से किये गये।
अनिभृत कर पग मन वच तन से, इन्द्रिय विषयों में अति से।।
स्वर व्यंजन पद परिसंघात के, उच्चारण में हानी से।
अन्य रूप प्रवृती से मिथ्या, मेलित आमेलित विधि से।।
किया अन्यथा दिया अन्यथा, लिया तथा आवश्यक में।
हानी कृत कारित अनुमति से, सब दुष्कृत मिथ्या होवें।
व्रत समिती इंद्रियनिरोध छह, आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंत-धावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ।।१।।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

१. ''पडिसंघाय'' इत्यपि पाठः।

(इत्युच्चार्य ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दंडकं पठित्वा कायमुत्सृज्य ''थोस्सामि'' इत्यादि दंडकमधीत्य शान्तिकीर्तनां ''विधाय रक्षां'' इत्यादिकां चतुर्विंशतिकीर्तनां च ''चउवीसं तित्थयरे'' इत्यादिकां सांचलिकां ''वदसमिदिंदियरोधो'' इत्यादिकं च ससूरयः संयताः पठेयुः। तद्यथा-)

विधाय रक्षां परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात्-पुरस्तात्-स्वत एव शान्ति- र्मुनिर्दयामूर्ति-रिवाघ-शान्तिम्।।१।।
चक्रेण यः शत्रु-भयंकरेण, जित्वा नृपः सर्व-नरेन्द्र-चक्रम्।
समाधि-चक्रेण पुनर्जिगाय, महोदयो दुर्जय-मोहचक्रम्।।२।।
राजश्रिया राजसु राजसिंहो, रराज यो राजसुभोगतंत्रः।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुनरात्म-तन्त्रो, देवासुरो-दार-सभे रराज।।३।।
यस्मिन्-नभूद्राजनि राजचक्रं, मुनौ दया-दीधिति-धर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि-देवचक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वंसि-कृतान्त-चक्रम्।।४।।
स्वदोष-शान्त्या-वहितात्म-शान्तिः, शान्ते-र्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्-भवक्लेश-भयोपशान्त्यै, शान्तिर्जिनो मे भगवान्शरण्यः।।५।।

(णमो अरिहंताणं इत्यादि दण्डक पढ़कर २७ उच्छ्वास में कायोत्सर्ग करके थोस्सामि स्तवन पढ़कर शांतिनाथ स्तुति पढ़ें। पुनःचौबीस तीर्थंकर भक्ति पढ़ें।)

श्रीशांतिनाथ स्तुति

शेरछंद

जो चक्रवर्ती राजा चिरकाल तक रहे। अरि से प्रजा की रक्षा करके सुखी किये।।
पश्चात् स्वयं ही वे दयामूर्ति मुनि हुए। वे शांतिनाथ स्वपर पाप शांत कर दिये।।१।।
जो शत्रु को भयंकर निज चक्ररत्न से। सम्राट बने सर्वनृपतिचक्र जीत के।।
जीता पुनः दुर्जेयमोहचक्र हो मुनी। ध्यानी समाधिचक्र से महोदयो तुम्हीं।।२।।
जो राजसिंहचक्रवर्ति भोग प्राप्तकर। राजागणों में राजश्री से शोभते सुखकर।
पुनि आत्म के आधीन समवसर्ण सभा में। आर्हन्त्यलक्ष्मी सहित राज रहें सभी में।।३।।
राजा बने जब आप राजवृंद नत हुए। मुनिपद में दयाकिरण धर्मचक्रधर हुए।।
अर्हंतपद में देववृंद हाथ जोड़ते। यमचक्र को नाशा पुनः ध्यानैक चक्र से।।४।।
निजदोष शांत करके पूर्ण शांति प्राप्ति की। शरणागतों के शांति विधाता हो आप ही।।
भगवान शरण में कुशल हे शांतिजिनेश्वर। भवक्लेश भय की शांतिहेतु हो मुझे जिनवर।।५।।

चउवीसे[१] तित्थयरे, उसहाइ-वीरपच्छिमे वंदे।
[२]सव्वेसिं गुण-गणहर-सिद्धे सिरसा णमंसामि।।१।।
ये लोकेऽष्ट-सहस्त्र-लक्षणधरा, ज्ञेयार्ण-वान्तर्गता
ये सम्यग्-भवजाल-हेतुमथना-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः।
ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गणशतै-र्गीत-प्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादि-वीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ।।२।।
नाभेयं देवपूज्यं, जिनवर-मजितं सर्व-लोकप्रदीपं
सर्वज्ञं संभवाख्यं, मुनिगण-वृषभं नन्दनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वरकमल-निभं पद्मपुष्पा-भिगन्धं
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं, सकल-शशिनिभं चन्द्रनामानमीडे।।३।।
विख्यातं पुष्पदन्तं, भवभय-मथनं शीतलं लोकनाथं।
श्रेयांसं शीलकोशं, प्रवर-नर-गुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम्।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं, विमल-मृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रं
धर्मं सद्धर्मकेतुं, शम-दम-निलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ।।४।।

चौबीस तीर्थंकर भक्ति

चौबोलछन्द-

वृषभदेव से वीर प्रभू तक, चौबिस तीर्थंकर वंदूँ।
गणयुत सब गणधर देवों को, सिद्धों को शिर से प्रणमूँ।।१।।
जो इस जग में सहस आठ, लक्षण धर ज्ञेयसिंधु के पार।
जो सम्यक् भवजाल हेतु, नाशक रवि शशि प्रभ अधिक अपार।।
जो मुनि इन्द्र देवियों शत से, गीत नमित अर्चित कीर्तित।
उन वृषभादि वीर तक प्रभु को, भक्ती से मैं नमूँ सतत।।२।।
देव पूज्य वृषभेश अजित, जिनवर त्रैलोक्य प्रदीप महान्।
संभव जिन सर्वज्ञ मुनीगण, पुंगव अभिनन्दन भगवान।।
कर्म शत्रुहन सुमति नाथवर, कमल सदृश सुरभित पद्मेश।
श्री सुपार्श्व क्षमदमयुत शशिवत्, पूर्णचन्द्र जिन नमूँ हमेश।।३।।
भव भय नाशक पुष्पदंतजिन, प्रथित सु शीतल त्रिभुवन ईश।
शील कोश श्रेयांस सुपूजित, वासुपूज्य गणधर के ईश।।
इन्द्रिय अश्व दमनकृत ऋषिपति, विमल अनंत मुनीश नमूँ।
सद्धर्मध्वज धर्म शरणपटु, शमदमगृह शांतीश नमूँ।।४।।

---

१. ''चउवीसं........'' इति पाठः। २. 'सव्वे सगणगणहरे' इति पाठः।

कुन्थुं सिद्धालयस्थं, श्रमण-पति-मरं त्यक्त-भोगेषु चक्रं
मल्लिं विख्यात-गोत्रं, खचर-गणनुतं सुव्रतं सौख्य-राशिम्।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरिकुल-तिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्र-वन्द्यं, शरण-महमितो वर्धमानं च भक्त्या।।५।।

अंचलिका —इच्छामि भंते! चउवीस-तित्थयरभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, पंचमहा-कल्लाण-संप्पण्णाणं अट्ठमहापाडिहेर-सहिदाणं चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं वत्तीसदेविंद-मणि-मउड-मत्थय-महिदाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारो-वगूढाणं थुइसयसहस्स-णिलयाणं उसहाइ- वीरपच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

वद-समिदिंदियरोधो, लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण मेयभत्तं च।।१।।

सिद्धगृहस्थित कुंथु अरहप्रभु, श्रमणपती साम्राज्य त्यजित।
प्रथितगोत्र मल्लिप्रभ खेचर-नुत सुखराशि सु मुनिसुव्रत।।
सुरपति अर्चित नमिजिन हरिकुल, तिलक नेमि भव अंत किया।
फणिपति वंद्य पार्श्व भक्तीवश, वर्द्धमान तव शरण लिया।।५।।

अंचलिका

हे भगवन्! चौबिस तीर्थंकर, भक्ती का कायोत्सर्ग कर।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रुचिधर।।
अष्टमहा प्रातिहार्य सहित जो, पंचमहाकल्याणक युत।
चौंतिस अतिशय विशेष युत, बत्तिस देवेन्द्र मुकुट चर्चित।।
हलधर वासुदेव प्रतिचक्री, ऋषि मुनि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुति के निलय वृषभ से, वीर प्रभू तक महापुरुष।।
मंगल महापुरुष तीर्थंकर, उन सबको शुभ भक्ती से।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूँ नमूँ महामुद से।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।१।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

चारित्रालोचनासहिता बृहदाचार्यभक्तिः

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं चारित्रालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(अत्रापि ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं विधाय ''थोस्सामि'' इत्यादि दण्डकं पठेत्।)

सिद्धगुण-स्तुति-निरता-नुद्धूत-रुषाग्नि-जाल-बहुलविशेषान्।
गुप्तिभि-रभि-संपूर्णान् मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षित-भावान्।।१।।
मुनिमाहात्म्य-विशेषा-ज्जिनशासन-सत्प्रदीपभासुर-मूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्-सुमनसो, बद्धरजो-विपुलमूलघातन-कुशलान् ।।२।।
गुणमणि-विरचित-वपुषः, षड्द्रव्य-विनिश्चितस्य धातृन्-सततम्।
रहितप्रमाद-चर्यान्-दर्शन-शुद्धान् गणस्य संतुष्टि-करान् ।।३।।

व्रत समिती इन्द्रियनिरोध, छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंत-धावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ।।

चारित्रालोचना सहित वृहद् आचार्य भक्ति

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं चारित्रालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(यहाँ भी ''णमो अरिहंताणं'' इत्यादि दण्डक पढ़कर कायोत्सर्ग करके थोस्सामिस्तवन करके आचार्यभक्ति पढ़कर चारित्र आलोचना पढ़ें।)

आचार्य भक्ति

सिद्ध गुणों की स्तुति में तत्पर, क्रोध अग्नि का नाश किया।
गुप्ती से परिपूर्ण मुक्तियुत, सत्य वचन से भरित हिया।।१।।
मुनि महिमा से जिन शासन के, दीपक भासुरमूर्ति स्वभाव।
सिद्धि चाहते कर्मरजों के, कारण घातन में पटुभाव।।२।।
गुणमणि विरचित तनु षट् द्रव्यों, की श्रद्धा के नित आधार।
दर्शनशुद्ध प्रमादीचर्या, रहित संघ सन्तुष्टीकार।।३।।

मोहच्छि-दुग्रतपसः, प्रशस्त-परिशुद्ध-हृदय-शोभन-व्यवहारान्।
प्रासुकनिलया-ननघा-नाशा-विध्वंसि-चेतसो हतकुपथान्।।४।।

धारित-विलसन्-मुंडान्, वर्जित-बहुदंडपिंड-मंडलनिकरान्।
सकलपरीषह-जयिनः, क्रियाभि-रनिशं प्रमादतः परिरहितान्।।५।।

अचलान् व्यपेत-निद्रान्, स्थानयुतान् कष्ट-दुष्ट-लेश्या-हीनान्।
विधिनाना-श्रित-वासा-नलिप्तदेहान् विनिर्जितेंद्रियकरिणः।।६।।

अतुला-नुत्कुटिकासान्विविक्त-चित्ता-नखंडित-स्वाध्यायान्।
दक्षिण-भावसमग्रान् व्यपगत-मद-रागलोभ-शठ-मात्सर्यान्।।७।।

भिन्नार्तरौद्र-पक्षान्, संभावित-धर्मशुक्ल-निर्मलहृदयान्।
नित्यं पिनद्ध-कुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान् विलीन-गारवचर्यान्।।८।।

तरुमूलयोग-युक्ता-नवकाशा-तापयोग-राग-सनाथान्।
बहुजन-हितकर-चर्या-नभया-ननघान् महानुभाव-विधानान्।।९।।

ईदृश-गुणसंपन्नान् युष्मान् भक्त्या विशालया स्थिरयोगान् ।
विधि-नानारत-मग्रयान् मुकुलीकृत-हस्त-कमल-शोभितशिरसा।।१०।।

उग्र तपस्वी मोहरहित शुभ, शुद्ध हृदय शोभन व्यवहार।
प्रासुक जगह निवास पापहत, आश कुपथ विध्वंसि विचार।।४।।
दशमुंडनयुत दोषसहित, आहारी मुनिगण से अति दूर।
सकल परीषहजयी क्रिया में, तत्पर नित प्रमाद से दूर।।५।।
व्रत में अचलित कायोत्सर्गयुत, कष्ट दुष्ट लेश्या से हीन।
विधिवत् गृहत्यागी निर्मल तनु, इन्द्रियविजयी निद्राहीन।।६।।
उत्कुटिकासन धरें विवेकी, अतुल अखण्डित स्वाध्यायी।
राग लोभ शठ मद मात्सर्यों, रहित पूर्ण शुभ परिणामी।।७।।
धर्मशुक्ल से भावित शुचिमन, आर्तरौद्र द्वय पक्ष रहित।
कुगतिविनाशी पुण्यऋद्धि के, उदय सहित गारवविरहित।।८।।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश में राग सहित।
बहुजन हितकर चरित अभय, निष्पाप महान् प्रभाव सहित।।९।।
इन सब गुण से युक्त तुम्हें, स्थिर योगी आचार्य प्रधान।
बहुत भक्तियुत विधिवत् मुकुलित, करपुटकमल धरूँ शिरधाम।।१०।।

अभिनौमि सकल-कलुष-प्रभवोदय-जन्म-जरा-मरणबंधनमुक्तान्।
शिव-मचल-मनघ-मक्षय-मव्याहत-मुक्तिसौख्य-मस्त्विति सततम् ।।११।।

लघुचारित्रालोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वणफ्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया वीया अंकुरा छिण्णा, भिण्णा, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि-किम्मि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठ (गंड) बाल-संबुक्क-सिप्पिपुल-विकाइया, (पुलवि-

---

नमूँ तुम्हें कर्मोदय संभव, जन्म जरा मृतिबन्ध रहित।
होवे इति शिव अचल अनघ, अक्षय निर्बाध मुक्तिसुख नित।।११।।

चारित्रालोचना

शंभु छंद-

हे भगवन् ! इच्छा करता हूँ, चारित्राचार त्रयोदशविध।
वह पाँच महाव्रत पाँच समिति, अरु तीन गुप्तिमय जिनभाषित।।
इनमें हिंसा का त्याग महाव्रत, प्रथम कहा है जिनवर ने।
भूकायिक जीव असंख्यातासंख्यात व जलकायिक इतने[1]।।
अग्नीकायिक भि असंख्यातासंख्यात पवनकायिक इतने[2]।
जो वनस्पतिकायिक प्राणी, वे सभी अनन्तानन्त भणें।।
ये हरित बीज अंकुर स्वरूप, नानाविध छिन्न-भिन्न भी हों।
इन सबको प्राणों से मारा, संताप दिया पीड़ा दी हो।।
उपघात किया मन वच तन से, या अन्यों से करवाया हो।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।
दो इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुक्षि कृमि[3] शंख कहे।
क्षुल्लक[4] कौड़ी व अक्ष अरिष्टय[5], गंडबाल लघु शंख कहे।

---

१. जलकायिक जीव भी असंख्यातसंख्यात हैं। २. वायुकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। ३. लट, घाव आदि के जीव। ४. कोई छुद्र जन्तु। ५. बच्चों के शरीर में पैदा हो जाते हैं ऐसे क्षुद्र जीव।

आइया) तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथु-द्देहियविंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुणपिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसयमक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छि-आइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया-पोदाइया-जराइया-रसाइया-संसेदिमा-सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा-उववादिमा अवि चउरासीदि-जोणि-पमुह-सदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

जो सीप जोंक आदिक इनको, मारा या त्रास दिया भी हो।
पीड़ा दी या उपघात किया, या पर से भी करवाया हो।।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२।।
त्रय इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुंथु[१] देहिक बिच्छू।
जूं गोजों खटमल इन्द्रगोप, चिउंटी आदिक बहुविध जन्तू।।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३।।
चउ इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात उन्हों में डांस मशक।
बहु कीट पतंगे भ्रमर मधूमक्खी गोमक्खी आदि विविध।।
इनको मारा परिताप विराधन, या उपघात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।४।।
पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात इन्हों में अण्डज हैं।
पोतज व जरायुज रसज पसीनज, सम्मूर्छन उद्भेदिम हैं।।
उपपाद जन्मयुत भी चौरासी, लाख योनि वालों में जो।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया हो जो।।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।५।।
वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।

१. सूक्ष्म जीव।

(आचार्यभक्ति की अंचलिका)

इच्छामि भंते! आइरियभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंच-विहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

बृहदालोचनासहिता मध्याचार्य (मध्यमाचार्य) भक्तिः[१]

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं बृहदालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

अंचलिका **(चौबोल छंद)**

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारितयुत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशकवर्य।।२।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्व साधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।३।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।४।।
व्रत समिती इन्द्रियनिरोध छह, आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंतधावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुणमुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ।।१।।

बृहदालोचनासहित मध्यमाचार्य भक्ति

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं बृहदालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

१. गुर्वालोचनया सार्धं मध्याचार्यनुतिस्तथा।

(इत्युच्चार्य ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कृत्वा ''थोस्सामि'' इत्यादि दंडकमधीत्य ''देसकुलजाइसुद्धा'' इत्यादिकां मध्याचार्यनुतिं ''इच्छामि भंते! पक्खियम्मि'' आलोचेउं पण्णरसण्हं दिवसाणं'' इत्यादि बृहदालोचनां च ससूरय: साधव: पठेयु:)

आचार्यभक्ति

देस-कुल-जाइ-सुद्धा, विशुद्ध-मण-वयण-कायसंजुत्ता।
तुम्हं पाय-पयोरुह-मिह मंगल-मत्थु मे णिच्चं।।१।।
सग-परसमय-विदण्हू, आगम-हेदूहिं चावि जाणित्ता।
सुसमत्था जिण-वयणे, विणये सत्ता-णुरूवेण।।२।।
बाल-गुरु-बुड्ढ-सेहे, गिलाण-थेरे य खमण-संजुत्ता।
वट्टावयगा अण्णे, दुस्सीले चावि जाणित्ता।।३।।
वय-समिदि-गुत्तिजुत्ता, मुत्तिपहे ठाविया पुणो अण्णे।
अज्झावय-गुणणिलये, साहुगुणे-णावि संजुत्ता।।४।।
उत्तमखमाए पुढवी, पसण्णभावेण अच्छजल-सरिसा।
कम्मिंधण-दहणादो, अगणी वाऊ असंगादो।।५।।

(णमो अरिहंताणं इत्यादि दण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके थोस्सामिस्तवन पढ़कर 'जो देश जाति' इत्यादि भक्ति पढ़कर ''हे भगवन्! पाक्षिकप्रतिक्रमण'' इत्यादि बृहदालोचना को आचार्य और साधुवर्ग मिलकर पढ़ें।)

आचार्यभक्ति

जो देश जाति कुल शुद्ध मनो-वच काय शुद्धि से संयुत हों।
उन पादसरोरुह सदा हमें, इस जग में सब मंगलप्रद हों।।१।।

जो स्वपर समय ज्ञाता आगम, हेतू से सब कुछ भी जानें।
जिनवचन कथन में पूर्ण कुशल, जन के अनुसार विनय ठानें।।२।।

बालक गुरु वृद्ध शैक्ष रोगी, स्थविर तथा उपवास सहित।
उनके पालक दु:शील अन्य मुनि, के भी सत्पथ दर्शक यति।।३।।

व्रत समिति गुप्तियुत स्वयं पुन:, पर को शिवपथ में प्रवृत्त करें।
अध्यापक गुण के निलय साधुगुण, से भी युत आचार्य खरे।।४।।

पृथ्वीसम उत्तम क्षमा स्वच्छ, जल सम प्रसन्न भावों युत हैं।
कर्मेंधन दहने में अग्नी, नि:संग वायु सम सूरी हैं।।५।।

गयणमिव णिरुवलेवा, अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा।
एरिसगुण-णिलयाणं, पायं पणमामि सुद्धमणो।।६।।
संसार-काणणे पुण, बंभम-माणेहिं भव्वजीवेहिं।
णिव्वाणस्स हु मग्गो, लद्धो तुम्हं पसाएण।।७।।
अविसुद्ध-लेस्स-रहिया, विसुद्ध-लेस्साहि परिणदा सुद्धा।
रुद्दट्टे पुण चत्ता, धम्मे सुक्के य संजुत्ता।।८।।
उग्गह-ईहा-वाया-धारण-गुण-संपदेहिं संजुत्ता।
सुत्तत्थ - भावणाए, भाविय - माणेहिं वंदामि।।९।।
तुम्हं गुणगण-संथुदि, अजाण-माणेण जो मया वुत्तो।
देउ मम बोहिलाहं, गुरुभत्ति-जुदत्थओ णिच्चं।।१०।।

बृहदालोचना

[१]इच्छामि भंते! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्ण-रसण्हं दिवसाणं पण्ण-रसण्हं राईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

आकाश सदृश मुनि लेपरहित, सागर सम क्षोभरहित मुनिवर।
इन गुण के आलय के पदयुग, मैं शुद्धमना प्रणमूँ रुचिधर।।६।।
भव वन में जो भी भव्यजीव, भ्रमते हैं वे निर्वाण मार्ग।
तुम पद प्रसाद से प्राप्त किया, हे गुरुवर मैं तुम नमूँ पाद।।७।।
जो कृष्ण नील कापोत रहित, शुभ लेश्या से परिणत विशुद्ध।
पुन आर्तरौद्र दुर्ध्यान मुक्त, औ धर्म शुक्ल दो ध्यान युक्त।।८।।
जो अवग्रह ईहा अवाय औ, धारण गुण संपति से संयुत।
सूत्रार्थ भावना भाते नित, ऐसे सूरी को वंदूँ नित।।९।।
हे गुरुवर! तुम गुणगण संस्तुति में, किया न गण का ज्ञान मुझे।
केवल मुझ भक्तीवश की नित, तुम देवो बोधी लाभ मुझे।।१०।।

बृहदालोचना

शंभु छंद- हे भगवन्! मैं पाक्षिक दोषों का, चाहूँ आलोचन करना।
पन्द्रह दिन पन्द्रह रात्री के, भीतर हुए दोषों को हरना।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व तप-आचार तथा वीर्याचारा।
चारित्राचार पाँच ये हैं, आचार मोक्ष के आधारा।।

१. इस दंडक को पाक्षिक-प्रतिक्रमण के समय पढ़ें।

[1]इच्छामि भंते! चाउम्मासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तर-सय-दिवसाणं वीसुत्तरसय-राईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

[2]इच्छामि भंते! संवच्छरियम्मि आलोचेउं, वारसण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्णिछावट्ठि-सय-दिवसाणं तिण्णिछावट्ठि-सय-राईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि।

तत्थ णाणायारो काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव अणिण्हवणे, वंजण अत्थ तदुभये चेदि, तत्थ णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो से अक्खरहीणं वा सरहीणं वा वंजणहीणं वा पदहीणं वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा थुईसु वा अट्ठक्खाणेसु वा अणिओगेसु वा अणियोगद्दारेसु वा अकाले सज्झाओ कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो काले वा परिहाविदो अच्छाकारिदं वा मिच्छामेलिदं वा आमेलिदं वा वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं

हे भगवन्! चातुर्मासिक का, आलोचन करूँ चउ महिने में।
इन आठ पक्ष में इक सौ बीस, दिवस इक सौ बीस निश में।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व तप आचार तथा वीर्याचारा।
चारित्राचार पाँच हैं ये, आचार मोक्ष के आधारा।।
हे भगवन्! वार्षिक का आलोचन करूँ सुबारह महिने में।
चउबीस पक्ष में त्रय सौ छ्यासठ, दिवस व इतनी रात्री में।।
ज्ञानाचार दर्शनाचार व तप-आचार तथा वीर्याचारा।
चारित्राचार पाँच ये हैं, आचार मोक्ष के आधारा।।
इनमें है ज्ञानाचार प्रथम, जो आठ भेद शुद्धीयुत है।
वह काल विनय उपधान तथा, बहुमान अनिह्नव व्यंजन है।।
पुनि अर्थ उभय इन शुद्धी से, स्तव स्तुति अर्थाख्याना।
अनुयोग और अनुयोगद्वार में, किया यदी अक्षर हीना।।
या पद से कम या व्यंजन कम, या अर्थहीन या ग्रन्थ कमी।
यदि अकाल में स्वाध्याय किया, या करवाया या अनुमति दी।।
या काल में नहिं स्वाध्याय किया, या झटिति पढ़ा मिथ्या मिश्रण।
विपरीत अर्थकर पढ़ा अन्यथा, कहा अन्यथा किया ग्रहण।।

१. इसको चातुर्मासिक प्रतिक्रमण के समय पढ़ें। २. इसे सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण के समय पढ़ें।

आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

दंसणायारो अट्ठविहो-णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य। उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल पहावणा चेदि। अट्ठविहो परिहाविदो संकाए कंखाए विदिगिंछाए अण्णदिट्ठि-पसंसणदाए परपाखंड-पसंसणदाए अणायदण-सेवणदाए अवच्छल्लदाए अप्पहावणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तवायारो बारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि, तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्त-सयणासणं चेदि, तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण जहुत्तमाणेण बलेण

छह आवश्यक में हानी की, इस ज्ञानाचार में दोष किये।
पणविध स्वाध्याय की सिद्धि हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१।।

दर्शनाचार आठविध है, निःशंकित निःकांक्षित गुण से।
अरु निर्विचिकित्सा अमूढ़दृक्, उपगूहन स्थितिकरण गुण से।।
वात्सल्य प्रभावन इन अठ में, जो शंका कांक्ष जुगुप्सा की।
मिथ्यादृष्टी की प्रशंसा की, अरु परपाखंड प्रशंसा की।।
अनायतन की सेवा की, वात्सल प्रभावना नहीं किया।
इन दोषों में जो हानी की, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।२।।

छह अभ्यंतर छह बाहिर से, बारहविध तप आचार कहा।
उनमें से अनशन अमोदर्य, वृतपरिसंख्या रसत्याग कहा।।
तनुपरित्याग-तनुक्लेश[1] विविक्त, शयनासन तप बाह्य कहे।
प्रायश्चित विनय सुवैयावृत, स्वाध्याय ध्यान[2] व्युत्सर्ग कहे।।
इन बारह तप को नहीं किया, परिषह से पीड़ित छोड़ दिया।
तप किरिया में जो हानी की, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।३।।

है वीर्याचार पांचविध में, वर वीर्य पराक्रम से जानो।
आगमवर्णित[3] तप परीमाण, बल[4] वीर्य[5]-सहज शक्ती मानो।।

१. कायक्लेश को पाँचवां माना है। २. यहाँ ध्यान को पाँचवां माना है। ३. यथोक्तमान-आगम में कही गई विधि से कवलचांद्रायण आदि तप करना। ४. काल, क्षेत्र और आहार का बल। ५. वीर्य-सहज अपनी सामर्थ्य।

वीरिएण परिक्कमेण णिगूहियं तवोकम्मं ण कयं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो पंच महव्वदाणि पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादि-वादादो वेरमणं। से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि-किम्मि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठ-गंडवाल-संबुक्क-सिप्पि-पुल विकाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं

परक्रम[1]-परिपाटी से मैंने, पण वीर्याचार में हानी की।
निज शक्ति छिपायी तपश्चरण, करने में तप में हानी की।।
तप क्रिया न की परिषह आदिक से, पीड़ित हो यदि छोड़ दिया।
इस वीर्याचार में दोष किया, वह दुष्कृत मेरा हो मिथ्या।।४।।
हे भगवन्! इच्छा करता हूँ, चारित्राचार त्रयोदशविध।
वह पाँच महाव्रत पाँच समिति, अरु तीन गुप्तिमय जिनभाषित।।
इनमें हिंसा का त्याग महाव्रत, प्रथम कहा है जिनवर ने।।
भूकायिक जीव असंख्यातासंख्यात व जलकायिक इतने[2]।
अग्नीकायिक भि असंख्यातासंख्यात पवनकायिक इतने[3]।
जो वनस्पतिकायिक प्राणी, वे सभी अनंतानंत भणें।।
ये हरित बीज अंकुर स्वरूप, नानाविध छिन्न-भिन्न भी हों।
इन सबको प्राणों से मारा, संताप दिया पीड़ा दी हो।।
उपघात किया मन वच तन से, या अन्यों से करवाया हो।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।
दो इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुक्षिकृमि[4] शंख कहे।
क्षुद्रक कौड़ी व अक्ष अरिष्टय[5], गंडबाल लघु शंख कहे।।

१. परक्रम-आगम में प्रतिपादित क्रम से तप करना, जैसे पहले मूलगुणों का पालन कर उत्तर गुणों का पालना। २. जलकायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। ३. वायु कायिक जीव भी असंख्यातासंख्यात हैं। ४. लट, घाव आदि के जीव। ५. बच्चों के शरीर में पैदा हो जाते हैं ऐसे क्षुद्र जंतु।

विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु-देहिय-विंछियगोभिंद-गोजूव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया-जराइया-रसाइया-संसेदिमा-सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा-उववादिमा अवि चउरासीदि-जोणी-पमुह-सद-सहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

जो सीप जोंक आदिक इनको, मारा या त्रास दिया भी हो।
पीड़ा दी या उपघात किया, या पर से भी करवाया हो।।
या करते को अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।
त्रय इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात कुंथु[1] देहिक बिच्छू।
जूं गोजों खटमल इन्द्रगोप, चिउंटी आदिक बहुविध जंतू।।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।
चउ इन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात उन्हों में डांस मशक।
बहु कीट पतंगे भ्रमर मधू-मक्खी गोमक्खी आदि विविध।।
इनको मारा परिताप विराधन, या उपघात किया भी हो।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।
पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात इन्हों में अण्डज हैं।
पोतज व जरायुज रसज पसीनज, सम्मूर्छन उद्भेदिम हैं।।
उपपाद जन्मयुत भी चौरासी, लाख योनि वालों में जो।
इनको मारा संताप दिया, पीड़ा दी घात किया हो जो।।
करवाया या अनुमति दी हो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।५।।

१. सूक्ष्म जीव।

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च।।१।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

क्षुल्लकालोचनासहिता क्षुल्लकाचार्यभक्तिः[१]

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(इत्युच्चार्य पूर्ववद्दंडकादिकं विधाय 'प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः'' इत्यादिकं ''श्रुतजलधीत्यादि मोक्षमार्गोपदेशका'' इत्येवमन्तकां ससूरयः संयताः पठेयुः)

प्राज्ञः प्राप्त-समस्त-शास्त्र हृदयः, प्रव्यक्त-लोक-स्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान्, प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनो-हारी परा-निन्दया
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः, प्रस्पष्ट-मिष्टाक्षरः।।१।।

व्रत समिति इन्द्रियनिरोध, छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंत-धावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
उनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोस्थापन हो नाथ!।।१।।

लघु आलोचनासहित लघु आचार्य भक्ति

सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं [२]क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(णमो अरिहंताणं इत्यादि दंडक पढ़कर ९ जाप्य करके थोस्सामि स्तवन करके ''प्राज्ञः'' इत्यादि लघु आचार्य भक्ति पढ़ें।)

लघु आचार्य भक्ति

प्राज्ञ सकलशास्त्रवित् सब जग, स्थिति को स्फुट देखें।
आश रहित प्रतिभायुत प्रशमवान उत्तर तत्क्षण देते।।
प्रश्नसहिष्णु समरथ पर के, मनहर परनिंदा से दूर।
मित स्पष्ट वचन से धर्म-कथा कहते सूरी गुणपूर।।१।।

---

१. लघ्वी सूरिनुतिश्चेति पाक्षिकादौ प्रतिक्रमे। २. क्षुल्लकालोचनाचार्य भक्ति का अर्थ है लघु आलोचना सहित लघु आचार्य भक्ति।

श्रुतम - विकलं शुद्धा, वृत्तिः पर - प्रतिबोधने,
परिणति - रुरूद्योगो, मार्गप्रवर्तन - सद्विधौ।
बुधनुति - रनुत्सेको, लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा,
यति-पतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम् ।।२।।
श्रुतजलधि-पारगेभ्यः, स्वपर-मतविभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।३।।
छत्तीस-गुण-समग्गे, पंचविहा-चार-करण-संदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्माइरिए सदा वंदे।।४।।
गुरुभत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति।।५।।
ये नित्यं व्रत-मंत्र-होमनिरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः,
षट्कर्माभि-रतास्तपोधन-धनाः, साधुक्रिया-साधवः।
शील प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोधिका,
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु मां साधवः।।६।।

अविकल श्रुतधर चरितशुद्धधर, परप्रतिबोधन में तत्पर।
मोक्षमार्ग के वर्तन में नित, अतिशय यत्न करें मुनिवर।।
ज्ञानी में नुति गतउत्सुकता, लोकसमयवित् निःस्पृह मृदु।
जिनमें ये गुण सत्पुरुषों के, वे ही गुरु मानें शिवप्रद।।२।।

श्रुतसमुद्र पारंगत स्वमत व परमत ज्ञाता कुशलमती।
सच्चरित्र तपनिधियुत गुणगुरु, हे गुरु! तुमको करूँ नती।।३।।

छत्तिस गुण से पूर्ण पाँच, आचार क्रिया के धारी हो।
शिष्य अनुग्रह निपुण धर्म-आचार्य सदा वंदूँ तुमको।।४।।

गुरुभक्ती संयम से तिरते, भव्य भयंकर भववारिधि।
अष्टकर्म छेदें वे फिर नहिं, पाते जन्म मरण व्याधी।।५।।

व्रत अरु मंत्र होम में तत्पर, ध्यान अग्नि में हवन करें।
तपोधनी षट्आवश्यकरत, साधू उत्तम क्रिया धरें।।
शीलवस्त्रधर गुणआयुधयुत, सूर्य-चंद्र से तेज अधिक।
मोक्षद्वार उद्घाटन योद्धा, साधू हों प्रसन्न मुझ प्रति।।६।।

गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गंभीरा, मोक्षमार्गो-पदेशकाः।।७।।

आलोचना —**इच्छामि भंते! आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं, आयारादि-सुदणाणो- वदेसियाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुणपालण-रयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

वद-समिदिंदियरोधो लोचो आवासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदिसयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थपमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं।।२।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्ध-चारित्र-प्रतिक्रमण-निष्ठितकरण-वीर-

---

ज्ञानदर्श के नायक गुरुवर, नित मेरी रक्षा करिये।
चरित्रजलधि गम्भीर मोक्षपथ, उपदेशक पथ में धरिये।।७।।

अंचलिका-

हे भगवन्! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारित युत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुत ज्ञानी, उपाध्याय उपदेशक वर्य।।२।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्वसाधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपत् होवे।।४।।
व्रत समिति इंद्रियनिरोध, छह आवश्यक आचेलक लोच।
भूमिशयन अस्नान अदंत-धावन स्थितिभुक्ती भक्तैक।।
जिनवर कथित मूलगुण मुनि के, प्रमाद से इनमें अतिचार।
इनसे दूर हुआ हूँ मेरा, छेदोपस्थापन हो नाथ!।।१।।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्ध-चारित्र-प्रतिक्रमणनिष्ठितकरणवीर-शांतिचतुर्विंशति-तीर्थंकर-

शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकर-चारित्रालोचनाचार्य-वृहदालोचनाचार्यक्षुल्लकालोचनाचार्यभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं-

(इत्युच्चार्य पूर्ववद्दंडकादिकं कृत्वा "शास्त्राभ्यासो जिनपति" इत्यादीष्टप्रार्थनां सूरयः साधवः पठेयुः)।

समाधिभक्तिः

अथेष्ट-प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।
शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भवभवे, याव-देतेऽपवर्गः।।१।।
तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण-सम्प्राप्तिः।।२।।
अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता-हीणं च जं मए भणियं।
तं खमहु णाणदेव! य, मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ (दिंतु)।।३।।

चारित्रालोचनाचार्य-बृहदालोचनाचार्य-क्षुल्लकालोचनाचार्य भक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष-विशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(ऐसा उच्चारण करके "णमो अरिहंताणं" इत्यादि सामायिक दण्डक पढ़कर ९ जाप्य करके थोस्सामिस्तवन करके "शास्त्रों का" इत्यादि लघु समाधिभक्ति इत्यादि इष्टप्रार्थना को आचार्य और साधु मिलकर करें।)

समाधिभक्ति

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।
शास्त्रों का अभ्यास जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्र के गुण गाऊँ, अरु दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रियहित वचन कहूँ, निज आत्मतत्त्व को नित भाऊँ।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव-भव में इन सबको पाऊँ।।१।।
तव चरणांबुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरण युग में।
तावत् रहे जिनेश्वर यावत्, मोक्ष प्राप्ति नहिं हो जग में।।२।।
अक्षर पद से हीन अर्थ, मात्रा से हीन कहा जो मैं।
हे श्रुत मातः! क्षमा करो सब, मम दुःखों का क्षय होवे।।३।।

(बैठकर अंचलिका पढ़ें)

आलोचना —इच्छामि भंते! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्प-ज्झाण-लक्खण-समाहिभत्तीए णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

ततः(समाधिभक्तेरनन्तरं) सिद्धश्रुताचार्यभक्तिभिः (पूर्वोक्ताभिः) आचार्यं साधवो वन्देरन्।

श्रुतपंचमी क्रिया कब और कैसे करें?

ज्येष्ठ शुक्ला ५ को श्रुतपंचमी कहते हैं। इस दिन सभी साधु वृहत् सिद्धभक्ति औ वृहत् श्रुतभक्ति पढ़कर श्रुतस्कंध (श्रुतस्कंधयंत्र) की स्थापना करें। पुनः श्रीइंद्रनंदि आचार्य विरचित श्रुतावतार का उपदेश देवें। अनंतर वृहत् श्रुतभक्ति व वृहत् आचार्यभक्ति पढ़कर स्वाध्याय प्रारंभ करें। स्वाध्याय करके पुनः वृहत् श्रुतभक्ति पढ़कर स्वाध्याय समापन करके शांतिभक्ति पढ़ें। इसकी विधि निम्न प्रकार है-

श्रुतपंचमी क्रिया विधि

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वणि श्रुतस्कंधप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(कृतिकर्म विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करके पृ. ११३ से 'सिद्धानुद्धूत' इत्यादि सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वणि श्रुतस्कंधप्रतिष्ठापनक्रियायां......श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से 'स्तोष्ये संज्ञानानि' इत्यादि श्रुतभक्ति पढ़ें।)

पुनः श्रुतस्कंध (यंत्र) की स्थापना करके श्रीइंद्रनंदि आचार्य विरचित श्रुतावतार पढ़कर षट्खंडागम सूत्रों की रचना का और श्रुतपंचमी पर्व का इतिहास सुनाकर स्वाध्याय करें-

---

अंचलिका (दोहा)

भगवन्! समाधिभक्ति अरु, कर के कायोत्सर्ग।
चाहूँ आलोचन करन, दोष विशोधन हेत।।१।।
रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधी है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ उसे।।२।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपत होवे।।३।।

(अनंतर सभी साधुवर्ग लघु सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।)

(पाक्षिक प्रतिक्रमण पूर्ण हुआ)

---

१. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ५७-५८।

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वणि स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां...... श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक, ९ जाप्य व थोस्सामि पढ़कर स्तोष्ये इत्यादि अथवा 'सिद्धवरसासणाणं' इत्यादि प्राकृत श्रुतभक्ति पढ़ें।

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वणि स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां.....आचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(सामायिक दंडक, ९ जाप्य व थोस्सामि पढ़कर 'सिद्धगुणस्तुतिनिरतान्' इत्यादि आचार्यभक्ति अथवा 'देसकुलजाइसुद्धा' इत्यादि प्राकृत आचार्यभक्ति पढ़ें।)

आचार्य भक्ति

सिद्धगुण-स्तुति-निरता-नुद्धूतरुषाग्निजाल-बहुल-विशेषान्।
गुप्तिभि-रभिसंपूर्णान्, मुक्तियुतःसत्यवचन-लक्षितभावान् ।।१।।
मुनिमाहात्म्य-विशेषान् जिनशासन-सत्प्रदीप-भासुर-मूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो, बद्धरजो-विपुल-मूल-घातन-कुशलान् ।।२।।
गुणमणि-विरचित-वपुषः, षड्द्रव्य-विनिश्चितस्य धातृन्सततम्।
रहित-प्रमाद-चर्यान्-दर्शनशुद्धान् गणस्य संतुष्टि-करान् ।।३।।
मोहच्छि-दुग्रतपसः, प्रशस्त-परिशुद्ध-हृदयशोभन-व्यवहारान् ।
प्रासुकनिलया-ननघा-नाशाविध्वंसि-चेतसो हतकुपथान् ।।४।।
धारितविलसन्-मुंडान् वर्जित-बहुदंड-पिंड-मंडल-निकरान् ।
सकल-परीषह-जयिनः क्रियाभि-रनिशं प्रमादतः परि-रहितान् ।।५।।

आचार्य भक्ति

सिद्ध गुणों की स्तुति में तत्पर, क्रोध अग्नि का नाश किया।
गुप्ती से परिपूर्ण मुक्तियुत, सत्य वचन से भरित हिया।।१।।
मुनि महिमा से जिनशासन के, दीपक भासुरमूर्ति स्वभाव।
सिद्धि चाहते कर्मरजों के, कारण घातन में पटुभाव।।२।।
गुणमणि विरचित तनु षट् द्रव्यों, की श्रद्धा के नित आधार।
दर्शनशुद्ध प्रमादीचर्या, रहित संघ सन्तुष्टीकार।।३।।
उग्र तपस्वी मोहरहित शुभ, शुद्ध हृदय शोभन व्यवहार।
प्रासुक जगह निवास पापहत, आश कुपथ विध्वंसि विचार।।४।।
दशमुंडनयुत दोषरहित, आहारी मुनिगण से अति दूर।
सकल परीषहजयी क्रिया में, तत्पर नित प्रमाद से दूर।।५।।

अचलान्-व्यपेतनिद्रान् स्थान-युतान्-कष्टदुष्ट-लेश्याहीनान् ।
विधिनानाश्रित-वासा-नलिप्तदेहान्विनिर्जितेंद्रियकरिणः।।६।।
अतुला-नुत्कुटिकासान् विविक्तचित्ता-नखंडित-स्वाध्यायान् ।
दक्षिणभावसमग्रान् व्यपगतमद-रागलोभ-शठ-मात्सर्यान् ।।७।।
भिन्नार्तरौद्रपक्षान् - संभावित - धर्मशुक्ल - निर्मलहृदयान्।
नित्यं पिनद्धकुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान्विलीनगारव-चर्यान् ।।८।।
तरुमूलयोगयुक्ता - नवकाशा - तापयोग - राग - सनाथान्।
बहुजनहितकरचर्या-नभया-ननघान्महानुभाव विधानान् ।।९।।
ईदृशगुणसंपन्नान् युष्मान्भक्त्या विशालया स्थिरयोगान्।
विधिनानारत-मग्र्यान् मुकुलीकृत-हस्तकमल-शोभितशिरसा।।१०।।
अभिनौमि सकलकलुष-प्रभवोदय-जन्मजरा-मरणबंधन-मुक्तान्।
शिव-मचल-मनघ-मक्षय-मव्याहत-मुक्तिसौख्य-मस्त्विति सततम्।।११।।*

व्रत में अचलित कायोत्सर्गयुत, कष्ट दुष्ट लेश्या से हीन।
विधिवत् गृहत्यागी निर्मलतनु, इन्द्रियविजयी निद्राहीन।।६।।
उत्कुटिकासन धरें विवेकी, अतुल अखण्डित स्वाध्यायी।
राग लोभ शठ मद मात्सर्यों, रहित पूर्ण शुभ परिणामी।।७।।
धर्मशुक्ल से भावित शुचिमन, आर्तरौद्र द्वय पक्ष रहित।
कुगतिविनाशी पुण्यऋद्धि के, उदय सहित गारवविरहित।।८।।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश में राग सहित।
बहुजन हितकर चरित अभय, निष्पाप महान् प्रभाव सहित।।९।।
इन सब गुण से युक्त तुम्हें, स्थिर योगी आचार्य प्रधान।
बहुत भक्तियुत विधिवत् मुकुलित, करपुट कमल धरूँ शिरधाम।।१०।।
नमूँ तुम्हें कर्मोदय संभव, जन्म जरा मृति बंध रहित।
होवे इति शिव अचल अनघ, अक्षय निर्बाध मुक्ति सुख नित।।११।।

***क्षेपक श्लोक**

नमो वृषभसेनादि-गौतमान्त्यगणेशिने।
मूलोत्तर गुणाढ्याय, सर्वस्मै मुनये नमः।।१।।
गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटिमुनीश्वरान् ।।२।।

अंचलिका

इच्छामि भंते! आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहा-चाराणं आयरियाणं, आयारादि-सुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

श्रुतपंचमी के दिन धवला, जयधवला आदि किन्हीं नये ग्रंथ का स्वाध्याय प्रारंभ करें। पुनः स्वाध्याय समापन की क्रिया करें।

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वणि स्वाध्यायनिष्ठापन क्रियायां...... श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(सामायिक दंडक, ९जाप्य, थोस्सामि करके पृ. ११६ से 'स्तोष्ये संज्ञानानि' अथवा 'जिनका वर शासन' इत्यादि हिन्दी पद्य की श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वक्रियायां.....शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् दंडक, जाप्य, थोस्सामि करके पृ. १३६ से 'न स्नेहाच्छरणं' इत्यादि शांतिभक्ति पढ़ें।'

अंचलिका

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारितयुत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशकवर्य।।२।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्व साधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।४।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।३।।

विशुद्धवंश, परमाभिरूपो। जितेन्द्रियो धर्मकथा-प्रसक्तः।
सुखर्द्धिलाभे-ष्वविसक्तचित्तो। बुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः।।४।।

विजित-मदनकेतुं निर्मलं निर्विकारं, रहित-सकलसंगं संयमा-सक्तचित्तम्।
सुनयनिपुण-भावं ज्ञात-तत्त्वप्रपंचम् , जननमरणभीतं सद्गुरुं नौमि नित्यम् ।।५।

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वक्रियायां.....सिद्धश्रुताचार्यशांतिभक्ती: कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् जाप्य आदि करके पृ. १४१ से 'स्वात्माभिमुखसंवित्ति' वृहत् या 'प्रथमं करणं' इत्यादि लघु समाधिभक्ति पढ़ें।)

*****

श्रावकों की श्रुतपंचमी क्रिया

श्रावक स्वाध्याय ग्रहण नहीं करें तो सिद्ध, श्रुत और शांति भक्ति पढ़ें। उसकी विधि निम्न प्रकार है-

नमोऽस्तु श्रुतपंचमीपर्वक्रियायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(सामायिक दंडक, जाप्य, थोस्सामि करके पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें, ऐसे ही श्रुतभक्ति व शांतिभक्ति करके समाधिभक्ति पढ़ें।)

सिद्धान्तवाचना क्रिया

सिद्धांतग्रंथ धवला, जयधवला आदि ग्रंथों की वाचना के प्रारंभ में श्रुतपंचमी के समान ही विधि की जाती है[१]। जैसे कि-

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनाप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

अथवा

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनायां श्रुतस्कंधप्रतिष्ठापनक्रियायां......सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् दंडकादिपूर्वक ९ जाप्य करके पृ. ११३ से 'सिद्धानुद्धूत' आदि सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनायां श्रुतस्कंधप्रतिष्ठापनाक्रियायां....श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से 'स्तोष्ये संज्ञा' इत्यादि श्रुतभक्ति पढ़ें। अनंतर श्रुतस्कंध यंत्र की या सिद्धांत ग्रंथ की स्थापना करें।) पुन:-

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनाप्रारंभक्रियायां......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके संस्कृत या प्राकृत वृहत् श्रुतभक्ति पढ़ें।)

सम्यग्दर्शनमूलं, ज्ञानस्कंधं चरित्र-शाखाढ्यम् ।
मुनिगण-विहगाकीर्णं, आचार्य-महाद्रुमं वंदे।।६।।

---

१. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ५९।

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनाप्रारंभक्रियायां....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. २६० से संस्कृत या प्राकृत आचार्य भक्ति पढ़ें अनंतर सिद्धान्त ग्रंथ की वाचना करके समापन विधि करें।)

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनानिष्ठापनक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से वृहत् श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनानिष्ठापनक्रियायां....शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु सिद्धांतवाचनानिष्ठापनक्रियायां........सिद्धश्रुताचार्यशांतिभक्ती: कृत्वा हीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

आचारवाचना क्रिया

मूलाचार, आचारसार आदि आचार ग्रंथ कहलाते हैं। इनकी वाचना में भी उपर्युक्त सारी क्रियायें करनी चाहिए।

प्रयोग विधि निम्न प्रकार है।

नमोऽस्तु आचारवाचनाप्रतिष्ठापनक्रियायां......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

शेष सारी विधि पूर्ववत् ही है मात्र प्रतिज्ञा वाक्य में 'सिद्धान्त वाचना' के स्थान में 'आचारवाचना' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

विशेष-इस सिद्धान्तवाचना में एक-एक अर्थाधिकार के प्रारंभ व समापन में सिद्ध, श्रुत और आचार्य भक्ति करनी चाहिए[१] इत्यादि। इसका विशेष विवरण अनगार धर्मामृत में देखना चाहिए।

संन्यास प्रारंभ की क्रिया कब और कैसे करें?

जब कोई साधु संघ में सल्लेखना ग्रहण करते हैं तब आचार्य उन्हें यह संन्यास ग्रहण विधि कराते हैं अर्थात् भक्ति पाठ पूर्वक सल्लेखना का नियम देते हैं इसे ही संस्तर ग्रहण कहते हैं जो साधु सल्लेखना ग्रहण कर रहे हैं उन्हें आगे बताई विधि अनुसार भक्ति पढ़ना चाहिए। संघ के सभी साधु भी यह क्रिया करते हैं ऐसा समझ में आता है। विशेष जिज्ञासु को अनगार धर्मामृत और मूलाचार प्रदीप देखना चाहिए।

---

१. मेरी समझ में यह सिद्धान्तवाचना या आचारवाचना के प्रारंभ के दिवस की क्रिया है। महीनों वाचना चलने पर प्रतिदिन तो प्रतिदिन की स्वाध्याय विधि पर्याप्त है। वाचना समापन के दिन भी यह पूरी विधि कर सकते हैं।

संन्यास ग्रहण क्रिया

नमोऽस्तु संन्यासप्रतिष्ठापनक्रियायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु संन्यासप्रतिष्ठापनक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से श्रुतभक्ति पढ़ें।)

इसके बाद आचार्य देव उन मुनि को सल्लेखना दे देते हैं। पुन: संन्यास ग्रहण के दूसरे दिन से सभी साधु उन क्षपक के पास में स्वाध्याय सुनाते हैं। उसमें वृहद् श्रुतभक्ति और वृहत् आचार्य भक्ति पढ़कर स्वाध्याय प्रारंभ करते हैं पुन: वृहत् श्रुतभक्ति से ही समापन करते हैं।

क्षपक के पास स्वाध्याय ग्रहण क्रिया

नमोऽस्तु स्वाध्याय प्रतिष्ठापनक्रियायां..श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु स्वाध्याय प्रतिष्ठापनक्रियायां...आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. २६० से आचार्य भक्ति पढ़ें।) भगवती आराधना, परमात्मप्रकाश आदि ग्रंथों का स्वाध्याय सुनावें।)

नमोऽस्तु स्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां..... श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से श्रुतभक्ति पढ़ें।)

जब उन सल्लेखनारत साधु की समाधि हो जाती है तब सभी साधु मिलकर संन्यास समापन की क्रिया करते हैं। उसे दिखाते हैं-

नमोऽस्तु संन्यासनिष्ठापनक्रियायां......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु संन्यासनिष्ठापनक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु संन्यासनिष्ठापनक्रियायां.....शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु संन्यासनिष्ठापनक्रियायां......सिद्धश्रुतशांतिभक्ती: कृत्वातद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधि भक्ति पढ़ें।)

इससे अतिरिक्त स्वाध्याय ग्रहण नहीं करने वाले श्रावकों को संन्यास के प्रथम दिन और अंतिम दिन सिद्ध, श्रुत और शान्ति भक्ति पढ़ना चाहिए।

आष्टान्हिक क्रिया कब और कैसे करें?

साधुगण आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक ऐसे आष्टाह्निक पर्व में नंदीश्वर पर्व की क्रिया करते हैं। यह क्रिया पौर्वाण्हिक स्वाध्याय के बाद की जाती है क्योंकि ''पौर्वाण्हिकस्वाध्यायग्रहणानंतरम्''[1] ऐसा पाठ है। इस पर्व में साधु सिद्ध, नंदीश्वर, पंचगुरु और शांति इन चार भक्तियों को पढ़कर क्रिया करते हैं। विधि निम्न प्रकार है-

आष्टाह्निक या नंदीश्वर क्रिया

नमोऽस्तु नंदीश्वरपर्वक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(सामायिक दंडक, ९ जाप्य व थोस्सामि पढ़कर पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु नंदीश्वरपर्वक्रियायां........नंदीश्वरभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं आदि सामायिक दंडक पढ़कर ९जाप्य करके थोस्सामि पढ़कर 'त्रिदशपति' इत्यादि संस्कृतभक्ति या 'त्रिदशपती के मुकुटतटों की' इत्यादि हिन्दी पद्यानुवाद की नंदीश्वर भक्ति पढ़ें।)

जिनमंदिर में बैठकर इस भक्ति को पढ़ते-पढ़ते जिनप्रतिमाओं की तीन प्रदक्षिणा करने का विधान है। यथा-

दीयते चैत्यनिर्वाण-योगिनंदीश्वरेषु हि।
वंद्यमानेष्वधीयानस्तत्तद्भक्तिं प्रदक्षिणा।।[2]

चैत्यभक्ति, निर्वाणभक्ति, नंदीश्वरभक्ति और योगिभक्ति करते समय उन-उन की प्रदक्षिणा देनी चाहिए।

नंदीश्वर भक्ति:

त्रिदशपति-मुकुट-तटगत-
मणिगण-करनिकर-सलिल-धारा-धौत-
क्रमकमल-युगलजिनपति-रुचिर-
प्रतिबिंब-विलय-विरहित-निलयान् ।।१।।
निलया-नह-मिह महसां सहसा, प्रणिपतन-पूर्व-मवनौम्य-वनौ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्ध्या निसर्ग-शुद्धान्-विशुद्धये घनरजसां।।२।।

नंदीश्वर भक्ति

त्रिदशपती के मुकुटतटों की, मणिगणप्रभ जलधारा से।
धौत पादपंकज जिनप्रतिमा, के अकृत्रिम जिनगृह हैं।।१।।
उन नैसर्गिक शुद्ध जिनालय, को सहसा साष्टांग यहीं।
त्रयशुद्धी से नमूँ निविडरज-कर्मविशुद्धी हेतु सही।।२।।

---

१. अनगार धर्मा. अ. ९ श्लोक ६३ की टीका। २. अनगार धर्मा. अ. ८।

भावन-सुर-भवनेषु, द्वासप्तति-शत-सहस्र-संख्या- भ्यधिकाः।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता, भवनानां भूरितेजसां भुवनानाम्।।३।।
त्रिभुवन-भूतविभूनां, संख्यातीता-न्यसंख्य-गुणयुक्तानि।
त्रिभुवन-जननयन-मनः-प्रियाणि भवनानि भौमविबुध-नुतानि।।४।।
यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योतिर्लोकाधि-देवताभि-नुतानि।
कल्पेऽनेक-विकल्पे, कल्पातीतेऽहमिन्द्रकल्पानल्पे।।५।।
विंशति-रथ त्रिसहिता, सहस्र-गुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता।
चतु-रधिका-शीति-रतः, पंचक-शून्येन विनिहता-न्यनघानि।।६।।
अष्टापंचाश-दतश्चतुः शतानीह मानुषे क्षेत्रे।
लोकालोकविभाग-प्रलोकनालोक-संयुजां जयभाजाम्।।७।।
नवनवचतुः शतानि च, सप्त च नवतिः सहस्त्रगुणिताः षट् च।
पंचाशत्-पंचवियत्-प्रहताः पुनरत्र कोट्योऽष्टौ प्रोक्ताः।।८।।
एतावंत्येव सता-मकृत्रिमा-ण्यथ जिनेशिनां भवनानि।
भुवनत्रितये त्रिभुवन-सुरसमिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि।।९।।

भवनवासि देवों के जिनगृह, सात करोड़ बहत्तर लाख।
उनमें तेजोमय जिनप्रतिमा, वंदन करूँ नमाकर माथ।।३।।
व्यंतर देवों में त्रिभुवनपति, प्रतिमा के गृह संख्यातीत।
त्रिभुवनजन मननयन प्रीतिकर, सुरनुत उन्हें नमूँ नत शीश।।४।।
ज्योतिष सुर से पूज्य जिनालय, संख्यातीत नमूँ उनको।
बहु विकल्पयुत कल्पों में, अरु कल्परहित में वन्दन हो।।५।।
लक्ष चुरासी सहस सत्तानवे, तेईस अधिक जिनालय हैं।
कल्पवासि कल्पातीतों के, उनको नितप्रति वंदूँ मैं।।६।।
लोकालोक विलोकित जिनवर, जयशाली के जिनगृह हैं।
मनुषक्षेत्र में चार शतक, अट्ठावन उनको प्रणमूँ मैं।।७।।
त्रिभुवन के सब चैत्यालय हैं, आठ करोड़ सुछप्पन लाख।
सहस सत्तानवे चार शतक, इक्यासी सबको नमूँ त्रिकाल।।८।।
इतने ही जिनभवन अकृत्रिम, त्रिभुवन में हैं नमूँ उन्हें।
त्रिभुवन के सुरगण से अर्चित, सत्प्रतिमायुत नमूँ उन्हें।।९।।

वक्षाररुचककुंडल - रौप्यनगोत्तर - कुलेषुकार - नगेषु।
कुरुषु च जिनभवनानि, त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या।।१०।।
नंदीश्वर - सद्द्वीपे, नंदीश्वरजलधि - परिवृते धृतशोभे।
चंद्रकरनिकर-संनिभ-रुन्द्रयशो-वितत-दिङ्महीमंडलके।।११।।
तत्रत्यांजन-दधिमुख-रतिकर-पुरुनग-वराख्य-पर्वतमुख्याः।
प्रतिदिश-मेषा-मुपरि, त्रयोदशेन्द्रा-र्चितानि जिनभवनानि।।१२।।
आषाढकार्तिकाख्ये, फाल्गुन-मासे च शुक्लपक्षे-ष्टम्याः।
आरभ्याष्ट-दिनेषु च, सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतयो भक्त्या।।१३।।
तेषु महामह-मुचितं, प्रचुराक्षत-गंधपुष्प-धूपैर्दिव्यैः।
सर्वज्ञ - प्रतिमाना - मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्वहितम् ।।१४।।
भेदेन वर्णना का, सौधर्मः स्नपन - कर्तृता - मापन्नः।
परिचारक-भावमिताः, शेषेन्द्रा रुन्द्रचंद्र-निर्मल-यशसः।।१५।।
मंगल पात्राणि पुनस्तद्देव्यो बिभ्रति स्म शुभ्रगुणाढ्याः।
अप्सरसो नर्तक्यः, शेषसुरास्तत्र लोकना - व्यग्रधियः।।१६।।

कुलगिरि इष्वाकार रुचक, कुंडल वक्षार रजत पर्वत।
मनुजोत्तरगिरि देवोत्तरकुरु, के जिनगृह छब्बिस त्रयशत।।१०।।
नन्दीश्वरजलधि से वेष्टित, नन्दीश्वरवरद्वीप महान।
चन्द्रकिरणसम उज्ज्वल यश से, व्याप्त किया भूमण्डल आन।।११।।
उनमें अंजन दधिमुख रतिकर, उत्तम पर्वत प्रतिदिश में।
तेरह तेरह उन पर सुरपति, अर्चित जिनमंदिर शोभें।।१२।।
अषाढ़ कार्तिक फाल्गुन के शुभ, शुक्लपक्ष अष्टमि तिथि से।
अष्ट दिनों तक भक्ती से, सौधर्म प्रमुख सुरपति आते।।१३।।
वहाँ दिव्य बहु गंधाक्षत चरु, दीप धूप पुष्पादिक से।
अनुपम जिन सर्वज्ञ बिम्ब की, महामहिम पूजा करते।।१४।।
भेदों का क्या वर्णन जब, सौधर्म इन्द्र संस्नपन करें।
शेष इन्द्र शशिसम निर्मल, यशयुत परिचारक भाव धरें।।१५।।
इन्द्र देवियाँ उज्ज्वल गुण-मणियुत बहु मंगलपात्र लिये।
नृत्य करें अप्सरा शेष, सुरगण अवलोकन व्यग्र हुए।।१६।।

वाचस्पति-वाचामपि, गोचरतां संव्यतीत्य यत्क्रममाणम्।
विबुधपति-विहितविभवं, मानुष-मात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम्।।१७।।
निष्ठापित-जिनपूजाश्-चूर्णस्नपनेन दृष्टविकृत-विशेषाः।
सुरपतयो नंदीश्वर-जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः।।१८।।
पंचसु मंदरगिरिषु, श्रीभद्रशाल - नंदन - सौमनसं।
पांडुकवन - मिति तेषु, प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव।।१९।।
तान्यथ परीत्य तानि च, नमसित्वा कृतसुपूजनास्-तत्रापि।
स्वास्पदमीयुः सर्वे, स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य।।२०।।
सहतोरण-सद्वेदी, परीतवन-याग-वृक्ष-मानस्तंभ-
ध्वजपंक्ति-दशकगोपुर-चतुष्टय-त्रितय-शाल-मंडपवर्यैः।।२१।।
अभिषेक-प्रेक्षणिका-क्रीडनसंगीत-नाटका-लोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पित-कल्पन-संकल्पातीतकल्पनैः समुपेतैः।।२२।।
वापीसत्-पुष्करिणी-सुदीर्घिका-द्यंबुसंसृतैः समुपेतैः।
विकसित-जलरुहकुसुमै-र्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि।।२३।।

वाचस्पति के वचन अगोचर, इन्द्रादिककृत विभव सहित।
उस पूजाविधि के वर्णन में, मनुजमात्र हैं शक्ति रहित।।१७।।
जिनपूजा निष्ठापित कर वे, चूर्ण लेप से दिखें विशेष।
सुरगण नन्दीश्वर जिनगृह की, प्रदक्षिणा कर पुनः अशेष।।१८।।
पाँचों मन्दरगिरि पर जाते, भद्रसाल नन्दन वन में।
सौमनसं पांडुकवन सबमें, चार-चार मंदिर शोभें।।१९।।
उनकी प्रदक्षिणा वन्दन कर, पूजा कर निजचर्या से।
स्वास्पद मूल्य ग्रहण कर सुरगण, स्वस्वस्थान चले जाते।।२०।।
तोरण वेदी वन से वेष्टित, यागवृक्ष अरु मानस्तंभ।
दशध्वज पंक्ति चार गोपुर, त्रयसाल सहित शुभवर मंडप।।२१।।
अभिषेक प्रेक्षण क्रीड़न, संगीत नाट्य आलोक सदन।
शिल्पि कल्पना संकल्पों से, रहित अकल्पित चैत्यभवन।।२२।।
वापी पुष्करिणी जलसंभृत, विकसित पंकज पुष्प सहित।
नभ से शशिग्रह तारागण से, प्रतिबिम्बित जलजन्तु रहित।।२३।।

भृङ्गाराब्दक-कलशा-द्युपकरणै-रष्टशतक-परिसंख्यानैः।
प्रत्येकं चित्रगुणैः, कृतझणझण-निनद-वितत-घंटाजालैः।।२४।।
प्रभ्राजंते नित्यं, हिरण्मया - नीश्वरेशिनां भवनानि।
गंधकुटीगतमृगपति-विष्टर-रुचिराणि विविधविभवयुतानि।।२५।।
येषु जिनानां प्रतिमाः, पंचशत-शरा-सनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।
मणिकनक-रजत-विकृता-दिनकर-कोटिप्रभाधिक-प्रभदेहाः।।२६।।
तानि सदा वंदेऽहं, भानु-प्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिश-मतिशय-शोभाविभांजि पापविभंजि।।२७।।
सप्तत्यधिकशत-प्रियधर्मक्षेत्र-गततीर्थकर-वरवृषभान्।
भूतभविष्यत्संप्रति-कालभवान्-भवविहानये विनतोऽस्मि।।२८।।
अस्या-मवसर्पिण्यां, वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता।
अष्टापदगिरि-मस्तक-गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः।।२९।।
श्रीवासुपूज्यभगवान्, शिवासु पूजासु पूजित-स्त्रिदशानां।
चंपायां दुरितहरः, परमपदं प्रापदा-पदा-मन्तगतः।।३०।।

झारी दर्पण कलश आदि, उपकरण एक सौ आठ प्रमाण।
सब प्रतिमा के पास शोभते, अरु घण्टा की ध्वनि झण झाण।।२४।।
श्रीजिनवर के भवन स्वर्णमय, सदा शोभते विभव सहित।
उनमें गंधकुटी में सुन्दर, सिंहासन हैं रुचिर विविध।।२५।।
उन पर राजित जिनवर प्रतिमा, धनुष पाँच सौ ऊँची हैं।
मणिमय कनक रजतमय प्रतिमा, कोटि सूर्यप्रभ मंद करें।।२६।।
भानु सदृश उन सब जिनगृह को, वंदूँ मैं निज भक्तिसहित।
प्रतिदिश में यश तेज करें, अघनाशक अतिशय शोभायुत।।२७।।
इक सौ सत्तर धर्मक्षेत्र में, तीर्थंकर जितने होते।
भूत भावि सांप्रत त्रैकालिक, उन्हें नमूँ भवदुःख हरें।।२८।।
इस अवसर्पिणि में तीर्थंकर, वृषभदेव जिन प्रथम हुए।
अष्टापदगिरि मस्तक से प्रभु, पापनाश शिवधाम गये।।२९।।
पंचकल्याणक पूजा में श्री-वासुपूज्य सुरगण पूजित।
चम्पापुर से मुक्त हुए सब, दुरित दूर आपद अंतक।।३०।।

मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जितकषाय रिपुरथ जातः।
बृहदूर्जयंतशिखरे, शिखामणि-स्त्रिभुवनस्य नेमिर्भगवान्।।३१।।
पावापुर-वरसरसां, मध्यगतः सिद्धिवृद्धि-तपसां महसां।
वीरो नीरद नादो, भूरिगुणश्-चारुशोभ-मास्पदमगमत्।।३२।।
सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्र-मस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थकराः, कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ।।३३।।
शेषाणां केवलिनां, अशेषमतवेदि-गणभृतां साधूनां।
गिरितल-विवर-दरी-सरि-दुरुवन-तरुविटपि-जलधि-दहनशिखासु।।३४।।
मोक्षगतिहेतुभूत-स्थानानि सुरेन्द्र-रुन्द्र-भक्तिनुतानि।
मंगलभूता-न्येता-न्यंगीकृत-धर्मकर्मणा-मस्माकम् ।।३५।।
जिनपतयस्-तत्प्रतिमास्-तदालयास्-तन्निषद्यका-स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम् ।।३६।।
संध्यासु तिसृसु नित्यं, पठेद्यदि स्तोत्रमेतदुत्तम-यशसाम्।
सर्वज्ञानां सार्वं, लघु लभते श्रुतधरेडितं पदममितम् ।।३७।।

मुदितमती बलदेवमुरारी-पूज्य कषायजयी भगवान।
ऊर्जयन्तगिरि से त्रिभुवन के, चूड़ामणि हुए नेमि महान।।३१।।

पावापुरिवर सरवर मध्ये, सिद्धि वृद्धि तप तेज सहित।
मेघध्वनी सम वीरनाथ, शिवधाम गये अगणित गुणयुत।।३२।।

मत्तगजों युत वन से वेष्टित, श्रीसम्मेदशिखरगिरि से।
शेष तीर्थंकर कीर्ति सहित, इच्छित सिद्धी को प्राप्त हुए।।३३।।

शेष केवली सब मतवेदी, गणधरगण साधूगण भी।
गिरि तल विवर दरी उपवन तरु, जलधी अग्नि शिखा से भी।।३४।।

मोक्ष गये हैं जहाँ कहीं से, सभी स्थल सुरपति नुत हैं।
धर्मकर्म रुचियुत हम सब के, लिए सदा मंगलमय हैं।।३५।।

जिनपति जिनप्रतिमा जिनगृह, जिन निषीधिका स्थान महान।
वे चारों ही भव्य जनों के, भव घातक हों मम सुखदान।।३६।।

संध्यात्रय में नित उत्तम, यशयुत सर्वज्ञ स्तुति पढ़ते।
वे श्रुतधरनुत अमित सर्वहित-पद को त्वरित प्राप्त करते।।३७।।

नित्यं निःस्वेदत्वं, निर्मलता क्षीरगौर-रुधिरत्वं च।
स्वाद्या-कृति-संहनने, सौरुप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ।।३८।।
अप्रमित-वीर्यता च, प्रियहित-वादित्व-मन्य-दमितगुणस्य।
प्रथिता दश संख्याताः, स्वतिशय-धर्माः स्वयंभुवो देहस्य।।३९।।
गव्यूतिशत-चतुष्टय-सुभिक्षता-गगन-गमन-मप्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभावश्-चतुरास्यत्वं च सर्वविद्येश्वरता।।४०।।
अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पंदश्च समप्रसिद्धनखकेशत्वं।
स्वतिशयगुणा भगवतो, घातिक्षयजा भवंति तेऽपि दशैव।।४१।।
सार्वार्ध-मागधीया, भाषा मैत्री च सर्वजनता-विषया।
सर्वर्तुफलस्तवक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरुपरिणामा।।४२।।
आदर्शतल-प्रतिमा, रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिलः, परमानंदश्च भवति सर्वजनस्य।।४३।।
मरुतोऽपि सुरभि-गंध-व्यामिश्रा योजनांतरं भूभागं।
व्युपशमितधूलिकंटक-तृणकीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति।।४४।।

स्वेद रहित निर्मलता नित ही, क्षीर समान रुधिर उज्ज्वल।
उत्तम संस्थान संहननयुत, सुरभितदेह सुरूप सुभग।।३८।।

सहस आठ लक्षणयुत अतुलित, वीर्यसहित प्रियहित वादी।
अगणितगुणी स्वयंभू प्रभु के, ये दश अतिशय बड़भागी।।३९।।

कोस चार सौ तक सुभिक्षता, गगन गमन नहिं प्राणीवध।
भोजन अरु उपसर्ग नहीं है, सब विद्या ईश्वर चउमुख।।४०।।

छाया अरु टिमकार रहित हैं, नहिं नख-केश बढ़े प्रभु के।
घाति के क्षय से दश अतिशय, प्रगट हुए केवलिजिन के।।४१।।

अर्द्धमागधी भाषा होती, सब जन मैत्रीभाव सदा।
सब ऋतु के फलफूल खिलें, तरुलता सुशोभित हुए मुदा।।४२।।

पृथ्वी रत्नमयी दर्पणवत्, शोभित हुई चमकशाली।
परमानन्द करें सब जन को, मंद सुगंधित पवन चली।।४३।।

वायुकुमार सुगंधित वायू, से योजन तक पृथ्वी को।
धूलि कंटक तृण पत्थर से, रहित स्वच्छ कर दिया अहो।।४४।।

तदनु स्तनितकुमारा, विद्युन्माला-विलास-हासविभूषाः।
प्रकिरन्ति सुरभिगंधिं, गंधोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः।।४५।।
वरपद्मरागकेसर-मतुलसुखस्पर्शहेममय-दलनिचयम्।
पादन्यासे पद्मं, सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवंति।।४६।।
फलभारनम्रशालिब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृतरोमांचा।
परिहृषितेव च भूमिस -त्रिभुवन-नाथस्य वैभवं पश्यंती।।४७।।
शरदुदयविमल-सलिलं, सर इव गगनं विराजते विगतमलं।
जहति च दिशस्तिमिरिकां, विगतरजः प्रभृति-जिह्मताभावं सद्यः।।४८।।
एतैतेति त्वरितं, ज्योति-र्व्यंतर दिवौकसा-ममृतभुजः।
कुलिशभृदाज्ञापनया, कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ।।४९।।
स्फुरदर-सहस्र-रुचिरं, विमलमहारत्न-किरण-निकरपरीतम्।
प्रहसितकिरण-सहस्र-द्युतिमंडल-मग्रगामि धर्मसुचक्रम्।।५०।।
इत्यष्टमंगलं च, स्वादर्शप्रभृति भक्ति-रागपरीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशैरेतेऽपि निरुपमाति-विशेषाः।।५१।।

मेघकुमार देव भी विद्युन्माला, की बहु शोभा से।
इन्द्राज्ञा से सुरभि सुगंधित, गंधोदक वृष्टी करते।।४५।।

जहाँ चरण प्रभु धरें वहाँ हैं, उत्तम स्वर्ण कमल खिलते।
आगे पीछे सात-सात, सौगंधित अतुल सुखद होते।।४६।।

शालि आदिक खेती के फल, भारों से झुकती पृथ्वी।
त्रिभुवनपति का वैभव लखकर, हर्षित हो रोमांच हुई।।४७।।

शरद ऋतु सम विमल सरोवर, सम निर्मल आकाश अहो।
सभी दिशाएँ तत्क्षण ही, तमरहित प्रकाशें सब थल को।।४८।।

आओ! आओ! देव! भवन, व्यंतर ज्योतिष वैमानिक सब।
इंद्राज्ञा से सभी तरफ से, त्वरित बुलावें सुरगण तब।।४९।।

हजार आरों से सुन्दर बहु, रत्न किरणयुत अति चमके।
रविमंडल को हंसने वाला, धर्मचक्र चलता आगे।।५०।।

इस विध मंगल आठ कहें, दर्पण आदिक अनुपम सुविशेष।
भक्तिराग युत देवेन्द्रों से, कल्पित बहुविध महा विशेष।।५१।।

वैडूर्यरुचिरविटप-प्रवालमृदुपल्लवोप-शोभितशाखः।
श्रीमानशोकवृक्षो, वरमरकतपत्र-गहन-बहलच्छायः।।५२।।
मंदारकुंदकुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः।
समदभ्रमर-परीतैर्व्या-मिश्रा पतति कुसुम-वृष्टिर्नभसः।।५३।।
कटक-कटि-सूत्रकुंडल-केयूर-प्रभृति-भूषितांगौ स्वंगौ।
यक्षौ कमल दलाक्षौ, परिनिक्षिपतः सलीलचामर-युगलम्।।५४।।
आकस्मिकमिव युगपद्दिवसकर-सहस्र-मपगतव्यवधानम्।
भामंडल-मविभावित-रात्रिंदिवभेद-मतितरा-माभाति।।५५।।
प्रबलपवनाभिघात-प्रक्षुभितसमुद्र-घोषमन्द्र-ध्वानम्।
दंध्वन्यते सुवीणा-वंशादि-सुवाद्यदुंदुभिस्-तालसमं।।५६।।
त्रिभुवनपतितालांछन-मिंदुत्रयतुल्य-मतुलमुक्ताजालम्।
छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्यविक्लृप्तदंड-मधिक-मनोज्ञम्।।५७।।
ध्वनिरपि योजनमेकं, प्रजायते श्रोत्रहृदय-हारिगंभीरः।
ससलिल-जलधर-पटल-ध्वनित-मिव प्रविततान्त-राशावलयं।।५८।।

वर मरकत पत्रों से छाया, युत प्रवाल मृदु कोपलयुत।
श्रीमत् तरु अशोक बहु शाखा-युत वैडूर्य तना संयुत।।५२।।

नील कमल मंदार कुंद, अरविन्द मालती वकुलादी।
भ्रमर सहित पुष्पों की सुन्दर, कुसुमवृष्टि नभ से होती।।५३।।

कुंडल कंकण कटीसूत्र, केयूर आदि भूषण भूषित।
कमल नेत्र वाले दो यक्ष, ढोरें चंवर सुलीलायुत।।५४।।

अकस्मात् युगपत् हजार रवि, सदृश सदा व्यवधान रहित।
रात्री दिन का भेद मिटाते, भामंडल अतिशय शोभित।।५५।।

प्रबल पवन से क्षुभित जलधि की, मंद्र ध्वनि के सदृश महान।
वीणा दुंदुभि ताल बांसुरी, वाद्यों का सुरदुंदुभि स्वान।।५६।।

तीन चंद्रवत् मुक्ताफलयुत, रुचिर दंड वैडूर्य रचित।
तीन छत्र तव त्रिभुवन प्रभुता, बतलाते हैं सदा प्रगट।।५७।।

दिव्यध्वनि तव इक योजन तक, हो गंभीर कर्ण मनहर।
सजलमेघ सम ध्वनि कर खिरती, व्याप्त किया सब दिश अंतर।।५८।।

स्फुरितांशु-रत्नदीधिति-परिविच्छुरिता मरेन्द्रचापच्छायम्।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः, स्फटिकशिला-घटितसिंह-विष्टर-मतुलम्।।५९।।
यस्येह चतुस्त्रिंशत्-प्रवरगुणाः प्रातिहार्य-लक्ष्म्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुणमहते।।६०।।

अंचलिका

*इच्छामि भंते! णंदीसरभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं णंदीसरदीवम्मि, चउदिस-विदिसासु अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरु-णगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहि गंधेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि, दिव्वेहि धूव्वेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिव्वेहि ण्हाणेहि,

* नन्दीश्वर भक्ति के क्षेपक श्लोक

गत्वा क्षितेर्वियति पंचसहस्र-दण्डान्, सोपानविंशति-सहस्रविराजमाना।
रेजे सभा धनद-यक्षकृता यदीया, तस्मै नमस्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय।।१।।
शालोऽथ वेदिरथ वेदिरथोऽपि शालो,
वेदिश्च शाल इह वेदिरथोऽपि शालः।
वेदिश्च भाति सदसि क्रमतो यदीये,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।२।।
प्रासादचैत्यनिलयाः परिखात-वल्लिः, प्रोद्यान-केतु-सुरवृक्ष-गृहांगणाश्च।
पीठत्रयं सदसि यस्य सदा विभाति, तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।३।।

रत्न किरण से चित्रित सुंदर, इंद्र धनुष छवि सिंहासन।
बना अतुल स्फटिक शिला से, मृगपति धृत सुंदर आसन।।५९।।
जिनके ये चौंतिस गुण अतिशय, प्रातिहार्य लक्ष्मी हैं आठ।
उन त्रिभुवन परमेश्वर भगवन्, अर्हंत प्रभु को वंदूँ आज।।६०।।

अंचलिका-

भगवन्! नंदीश्वर भक्ति का, कायोत्सर्ग किया मैंने।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
द्वीप नंदीश्वर में चउदिश-विदिशा में अंजनगिरि दधिमुख।
रतिकर पर्वत तेरह-तेरह, उन पर बावन जिन आलय।।२।।
उन सबको तीनों लोकों के, भवनवासि व्यंतर ज्योतिष।
कल्पवासि सुर चउविध ये सब, निज-निज परिवारों संयुत।।३।।

आसाढ-कत्तिय-फागुणमासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अंचंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति णंदीसर-महाकल्लाणं करंति, अहमवि इह संतो तत्थसंताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउं मज्झं।

नमोऽस्तु नंदीश्वरपर्वक्रियायां.........पंचगुरुभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।)

मालामृगेन्द्र-कमलांबरवैनतेय-मातंगगोपति-रथांगमयूरहंसाः।
यस्य ध्वजा विजयिनो भुवने विभान्ति, तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।४।।
निर्ग्रन्थकल्पवनिता व्रतिका-भभौम-नागस्त्रियो भवनभौमभ-कल्पदेवाः।
कोष्ठस्थिता नृ-पशवोऽपि नमंति, यस्य, तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।५।।
भाषाप्रभावलय-विष्टर-पुष्पवृष्टिः पिंडिद्रुमस्त्रिदश-दुंदुभिचामराणि।
छत्त्रत्रयेण सहितानि लसंति यस्य, तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।६।।
भृंगारतालकलश-ध्वजसुप्रतीक-श्वेतात-पत्र-वरदर्पणचामराणि।
प्रत्येक-मष्टशतकानि विभांति यस्य तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।७।।
स्तंभप्रतोलि-निधिमार्ग-तडागवापी, क्रीडाद्रि-धूपघट-तोरण-नाट्यशालाः।
स्तूपाश्च चैत्यतरवो विलसंति यस्य, तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।८।।
सेनापति-स्थपति-हर्म्यपति-द्विपाश्च, स्त्री चक्र-चर्ममणि-काकिणिका-पुरोधाः।
छत्रासि-दंडपतयः प्रणमन्ति यस्य, तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।९।।
पद्मःकालो महाकालः सर्वरत्नश्च पांडुकः, नैसर्पो माणवः शंखःपिंगलो निधयो नव।।
एतेषां पतयः प्रणमन्ति यस्य, तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।१०।।
खवियघणघाइकम्मा, चउतीसा-तिसय-विसेसपंचकल्लाणा।
अट्ठवरपाडिहेरा, अरिहंता मंगला मज्झं।।११।।

दिव्य गंध पुष्पों धूपों से, चूर्ण वास अभिषव विधि से।
मास कार्तिक अषाढ़ फाल्गुन, में अष्टमि तिथि से करके।।४।।
पूर्णमासि तक नित ही अर्चन, पूजन वंदन नमन करें।
नंदीश्वर की महाकल्याणक, पूजा कर बहु पुण्य भरें।।५।।
मैं भी यहाँ पर उन जिनवर, आलय की नित अर्चना करूँ।
पूजन वंदन करूँ भक्ति से, नमस्कार भी नित्य करूँ।।६।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधि मरणं, मम जिन गुण संपति होवे।।७।।

पंचमहागुरु भक्तिः

श्रीम-दमरेन्द्रमुकुट-प्रघटितमणि-किरण-वारिधाराभिः।
प्रक्षालित-पदयुगलान्-प्रणमामि जिनेश्वरान्भक्त्या।।१।।
अष्टगुणैः समुपेतान्प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन् ।
सिद्धान्सतत-मनन्तान्, नमस्करो-मीष्टतुष्टि-संसिद्ध्यै।।२।।
साचारश्रुत-जलधीन्प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग-कमलानि दधे शिरसि मेऽहम्।।३।।
मिथ्यावादि-मदोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसिवचनसंदर्भान्।
उपदेशकान्प्रपद्ये मम दुरितारि - प्रणाशाय।।४।।
सम्यग्दर्शनदीप - प्रकाशका - मेयबोधसंभूताः।
भूरिचरित्र - पताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु।।५।।
जिनसिद्ध-सूरिदेशक-साधुवरा-नमलगुणगणोपेतान्।
पंचनमस्कारपदै-स्त्रिसंध्य-मभिनौमि मोक्षलाभाय।।६।।
एष पंचनमस्कारः सर्वपाप - प्रणाशनः।
मंगलानां च सर्वेषां प्रथमं मंगलं मतं।।७।।

पंचमहागुरु भक्ति

श्रीमन् इंद्रों के मुकुटों की, मणिप्रभा जलधारा से।
प्रक्षालित पदयुगल जिनेश्वर, को प्रणमूँ नित भक्ती से।।१।।
दुष्ट अष्टविध कर्म शत्रुगण, नाशक अष्ट गुणों से युत।
नमूँ अनंतों सिद्धों को नित, इष्ट तुष्टि सिद्धी हेतू।।२।।
द्वादशांग श्रुत जलधि पार कर, शुद्ध महान् चरित में रत।
आचार्यों के पदयुग कमलों, को निज शिर पर धारूँ नित।।३।।
मिथ्यावादी के मद तम-विध्वंसी वचन सहित पाठक।
निज दुरितारि प्रणाशन हेतू, शरण लिया तव उपदेशक।।४।।
सम्यग्दर्शन दीप प्रकाशी, ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान उदय।
भूरि चरित ध्वजयुत वे मेरी, रक्षा करें साधुगण सब।।५।।
जिनवर सिद्ध सूरि पाठक सब, साधु अमल गुणगण से युत।
पंचनमस्कृति मंत्र पदों से, त्रिसमय नमूँ मोक्षपद हित।।६।।
पंचनमस्कृति महामंत्र यह, सर्व पाप नाशनकारी।
सभी मंगलों में यह उत्तम, मंगल प्रथम सौख्यकारी।।७।।

अर्हत्सिद्धाचार्यो - पाध्यायाः सर्वसाधवः।
कुर्वन्तु मंगलाः सर्वे निर्वाण - परमश्रियम्।।८।।
सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान् - सिद्धा-नाचार्य-पाठकान् साधून्।
रत्नत्रयं च वन्दे रत्नत्रयं - सिद्धये भक्त्या।।९।।
पान्तु श्रीपाद - पद्मानि पंचानां परमेष्ठिनां।
लालितानि सुराधीश - चूडामणि - मरीचिभिः।।१०।।
प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून् योगांगै - रष्टभिः स्तुवे।।११।।

इच्छामि भंते! पंचमहा-गुरुभत्ति काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठ-महापाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयण-माउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादि-सुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुणपालण-रयाणं सव्वसाहूणं,

---

अर्हत्सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधु परमेष्ठी पाँच।
मुझको दें निर्वाण परमश्री, वे मंगलमय मंगल काज।।८।।
सभी जिनेन्द्र चंद्र सिद्धों को, सूरी पाठक साधू को।
रत्नत्रय की सिद्धी हेतू, नित वंदूँ रत्नत्रय को।।९।।
सुरपति के चूड़ामणि किरणों, से चुंबित श्री पादकमल।
श्रेष्ठ पंच परमेष्ठी के वे, रक्षा करें मेरी प्रतिपल।।१०।।
प्रातिहार्य से युत अर्हन्तों, को अठ गुणयुत सिद्धों को।
वंदूँ अठ प्रवचन माता से, संयुत श्री आचार्यों को।।
शिष्यों से युत पाठक गण को, अष्ट योगयुत साधू को।
वंदूँ पंच महागुरुवर को, त्रिकरण शुचि से हर्षित हो।।११।।

अंचलिका–

दोहा- भगवन् ! पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।
अष्ट महाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हन्त जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहे।।२।।
अठ प्रवचन माता संयुत हैं, श्री आचार्यप्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत, उपदेशी पाठकगण हैं।।३।।

णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु नंदीश्वर पर्वक्रियायां.......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें)

नमोऽस्तु नंदीश्वरपर्वक्रियायां......सिद्धनंदीश्वरपंचगुरुशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. १४१ से समाधि भक्ति पढ़ें)

अभिषेक वंदना क्रिया

यह क्रिया नित्यक्रिया प्रकरण में कही जा चुकी है। अभिषेक के समय सिद्ध, चैत्य, पंचगुरु और शांति इन चार भक्तियों को पढ़कर यह अभिषेक वंदना की जाती है।

****

मंगलगोचर क्रिया कब और कैसे करें?

''मंगलगोचरमध्याह्नवंदना योगयोजनोज्झनयोः।''

वर्षायोग ग्रहण और समापन के पूर्व दिन मंगलगोचरी—आहार के पहले यह 'मंगलगोचर मध्यान्ह वंदना' की जाती है अर्थात् आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी के मध्यान्ह में मंगलगोचर मध्यान्ह देव वंदना करके साधुगण आहार के लिए जाते हैं पुनः आहार से आकर 'मंगलगोचर वृहत्प्रत्याख्यान' नाम से गुरु के पास उपवासरूप प्रत्याख्यान ग्रहण करते हैं। अनंतर चौदश का उपवास करके रात्रि में वर्षायोग क्रिया करके वर्षायोग ग्रहण कर लेते हैं।

ऐसे ही कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन आहार से पूर्व मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना करके आहार के बाद वृहत्प्रत्याख्यान ग्रहण करके चतुर्दशी का उपवास करके चतुर्दशी की पिछली रात्रि में वर्षायोग की निष्ठापना कर देते हैं। इस मंगलगोचर मध्यान्ह वंदना में सिद्ध, चैत्य, पंचगुरु और शांति ये चार भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं।

मध्यान्ह की देववंदना में चैत्य एवं पंचगुरु ये दो भक्तियाँ की जाती हैं किन्तु उपर्युक्त इन दोनों त्रयोदशी में इसी देववंदना में आदि-अन्त में दो भक्तियाँ बढ़ जाती हैं।

यद्यपि शास्त्रों में मध्यान्ह सामायिक के बाद आहार का कथन है फिर भी आजकल आहार के बाद मध्यान्ह की सामायिक देववंदना की जाती है। जो भी हो इस मंगलगोचर मध्यान्ह वंदना को आहार के पहले कर लेने में कोई बाधा नहीं है। इसकी विधि निम्न प्रकार है-

---

रत्नत्रयगुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूँ वंदूँ, नमस्कार मैं करूँ उन्हें।।४।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।५।।

मंगलगोचर मध्यान्ह देववंदना क्रिया

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृ. ११३ से 'सिद्धानुद्धूत' आदि सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां........चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ८ से सामायिक दंडक पढ़कर ९ जाप्य करके पृ. ९ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ६४ से ''जयति भगवान्'' इत्यादि चैत्यभक्ति पढ़कर इच्छा हो तो निम्नलिखित क्षेपक श्लोक पढ़ लेवें पुनः 'इच्छामि भंते!' इत्यादि अंचलिका पढ़ें।

चैत्यभक्ति के क्षेपक श्लोक

मानस्तंभाः सरांसि, प्रविमल-जल-सत्खातिका-पुष्पवाटी।
प्रकारो नाट्यशालाद्वितयमुपवनं वेदिकांतर्ध्वजाद्याः।।
शालः कल्पद्रुमाणां, सुपरिवृत्त-वनं स्तूप-हर्म्यावली च।
प्राकारः स्फाटिकोन्त-र्नृ सुर-मुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयंभूः।।१।।
***देवासुरेन्द्र-नरनाग-समर्चितेभ्यः,**
पापप्रणाश-कर-भव्य-मनोहरेभ्यः।
घंटाध्वजादि-परिवार-विभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः।।२।।
वरकनक शंख-विद्रुम-मरकत-घन-सन्तीभं विगतमोहं।
सप्ततिशतं जिनानां, सर्वामर - वंदितं वंदे।।३।।
कोडी लक्ख सहस्सं, अट्ठय छप्पण्ण सत्तणउदी य।
चउदसमेगासीदी, गणण - गए चेदिये वंदे।।४।।
तिहुवणजिणिंदगेहे अकिट्टिमे किट्टिमे तिकालभवे।
वणकुमरविडंगामर - णरखेचर वंदिये वंदे[१]।।५।।
जिणसिद्धाणं पडिमा अकिट्टिमा किट्टिमा दु अदिसोहा।
रयणमया हेममया रूप्पमया ताणि वंदामि[२]।।६।।

---

* यहां ''वर्षेषु वर्षांतर........'' आदि श्लोक भी हैं। १-२. त्रिलोकसार।

अडदाला णवयसया सदबीस सहस्स लक्ख तेवण्ण।
कोडीपणवीसणवय-सया जिणपडिमा अकिट्टिमे वंदे।।७।।
यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम् ।।८।।
अष्टकोटि-षट्पंचाश-ल्लक्ष-सप्तनवतिसहस्त्रयुतानि च।
चतुःशतैकाशीति-मिताकृत्रिमाणि चैत्यसदनानि स्युः।।९।।
नवशतपंचविंशति-कोट्यो लक्षास्त्रयोत्तरपंचाशच्च।
सप्तविंशतिसहस्त्रा-ण्यष्टचत्वारिंशदधिकनवशतानि च[१]।।१०।।

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां........पंचगुरुभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. ७१ से 'मणुयणाइंद' इत्यादि प्राकृत पंचगुरुभक्ति या पृ. २७७ से 'श्रीमदमरेन्द्र' इत्यादि संस्कृत पंचगुरु भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां.......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. १३६ से 'न स्नेहाच्छरणं' इत्यादि शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु मंगलगोचरमध्यान्हदेववंदनाक्रियायां.......सिद्धचैत्यपंचगुरु-शांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ.१४१ से "स्वात्माभिमुख-संवित्ति" आदि समाधि भक्ति पढ़ें।)

****

मंगलगोचर प्रत्याख्यान क्रिया कब और कैसे करें?

इस क्रिया के बाद साधुगण आहार करके आकर सामूहिकरूप से आचार्यश्री के समक्ष बैठकर प्रत्याख्यान ग्रहण करें। उसकी विधि निम्न प्रकार है-

मंगलगोचर प्रत्याख्यान क्रिया

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां..........सिद्ध-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् दण्डक, जाप्य, थोस्सामि करके पृ. ११३ से 'सिद्धानुद्धूत' इत्यादि सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.........योगि-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

१. त्रैलोक्यचैत्यवंदना।

(पूर्ववत् पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामि पढ़कर पृ. २८३ से "जातिजरोरुरोग" इत्यादि योगभक्ति पढ़ें।)

पुनः सभी शिष्य-मुनि, आर्यिकायें आदि आचार्यश्री से उपवास मांगें या अस्वस्थ आदि हों, उपवास नहीं कर सकते हों तो गुरु की आज्ञा से अगले दिन आहार लेने तक प्रत्याख्यान मांगें। तब आचार्यदेव स्वयं उपवास आदि ग्रहण कर सबको उपवास आदि प्रदान करें। अनंतर सभी शिष्यवर्ग मिलकर आचार्य वंदना करें-

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यवंदनायां....... आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक पढ़कर, ९जाप्य करके पृ. ६ से थोस्सामि स्तव पढ़कर पृ. २४४ से "सिद्धगुणस्तुति" इत्यादि आचार्यभक्ति पढ़ें।)

इस तरह आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें। आचार्य भी परोक्ष में ही गुरु की वंदना करते हैं।

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां..........शांतिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग आदि करके पृ. १३६ से शांति भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां...सिद्धयोगिआचार्य-शांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

****

वर्षायोग ग्रहण कब और कैसे करें?

ततश्चतुर्दशीपूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुती,
चतुर्दिक्षु परीत्याल्पाश्चैत्यभक्तिगुरुस्तुती।।६६।।
शांतिभक्तिं च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यतां,
ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम्[१]।।६७।।

ततः अर्थात् मंगलगोचर प्रत्याख्यान ग्रहण करने के बाद "आषाढ़ शुक्ला चतुर्दश्या रात्रेः प्रथमप्रहरोद्देशे"आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के दिन पूर्वरात्रि में साधुवर्ग वर्षायोग ग्रहण करें-वर्षायोग ग्रहण की भक्तियाँ पढ़कर वर्षायोग-चातुर्मास की स्थापना कर लेवें। इसमें पहले सिद्धभक्ति और योगिभक्ति करें पुनः प्रदक्षिणा रूप से चारों दिशाओं में अंचलिका सहित चैत्य-भक्ति पढ़ें। इस भक्ति में "यावंति जिनचैत्यानि" इत्यादि श्लोक बोलकर "स्वयंभुवा भूतहितेन" इत्यादि स्वयंभूस्तोत्र की दो स्तुतियाँ पढ़कर चैत्यभक्ति पढ़कर पूर्वदिशा के चैत्यालयों की वंदना करें। ऐसे ही स्वयंभू स्तोत्र की आगे-आगे की दो-दो स्तुतियाँ पढ़कर चैत्यभक्ति पढ़ते हुए दक्षिण, पश्चिम और उत्तर

१. अनगार धर्मामृत अ. ९।

दिशा के चैत्यालयों की भावों से ही वंदना करें। इस चतुर्दिक् वंदना में वहाँ पर स्थित जनों को ''योगतंदुल''—पीले चावल का प्रक्षेपण करना चाहिए, ऐसा वृद्धव्यवहार—पुरानी परंपरा है।

इसके बाद पंचमहागुरु भक्ति और शांतिभक्ति करके वर्षायोग ग्रहण की क्रिया पूर्ण करें।

वर्षायोग ग्रहण क्रिया

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां (वर्षायोगनिष्ठापनक्रियायां)[१].... सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में यही विधि करके वर्षायोग समापन किया जाता है।

(मुक्ताशुक्ति मुद्रा से तीन आवर्त एक शिरोनति करके पृ. ५ से सामायिक दंडक पढ़ें। पुनः ९ जाप्य करके पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ११३ से ''सिद्धानुद्धू'' इत्यादि सिद्धभक्ति पढ़ें।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९जाप्य और थोस्सामि करके योगिभक्ति पढ़ें)।

योगिभक्ति

दुवई छंद

जाति-जरोरु-रोगमरणा-तुरशोक-सहस्रदीपिताः।
दुःसह-नरक-पतन-सन्त्रस्त-धियः प्रतिबुध-चेतसः।।
जीवित-मंबुबिंदु-चपलं तडि-दभ्र-समा विभूतयः।
सकल-मिदं विचिन्त्य मुनयः प्रशमाय वनान्त-माश्रिताः।।१।।

भद्रिका छंद-

व्रतसमिति-गुप्तसंयुताः शमसुख-माधाय मनसि वीतमोहाः।।
ध्यानाध्ययन-वशंगताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति।।२।।

योगिभक्ति

जन्म जरा बहु मरण रोग अरु, शोक सहस्रों से तापित।
दुःसह नरक पतन से डरते, सम्यग्बोध हुआ जाग्रत।।
जलबुदबुदवत् जीवन चंचल, विद्युतवत् वैभव सारे।
ऐसा समझ प्रशमहेतू मुनि-जन वन का आश्रय धारें।।१।।
पंच महाव्रत पंच समिति, त्रय गुप्ति सहित हैं मोह रहित।
शम सुख को मन में धारण कर, चर्या करते शास्त्र विहित।।

---

१. कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में वर्षायोग समापन क्रिया में 'वर्षायोगनिष्ठापन' क्रियायां बोलना चाहिए।

दिनकर-किरण-निकर-संतप्त-शिला-निचयेषु निस्पृहाः।
मलपटला-वलिप्त-तनवः शिथिली-कृत-कर्मबंधनाः।।
व्यपगत-मदन-दर्परतिदोष-कषाय-विरक्त-मत्सराः।
गिरिशिखरेषु चंडकिरणा-भिमुख-स्थितयो दिगंबराः।।३।।
सज्ज्ञाना-मृत-पायिभिः क्षान्तिपयः सिच्यमान-पुण्यकायैः।
धृतसंतोष-च्छत्रकैः, तापस्-तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः।।४।।
शिखिगल-कज्जला-लिमलिनै-र्विबुधा-धिप-च पचित्रितैः।
भीमरवै-र्विसृष्ट-चण्डाशनि-शीतल-वायु-वृष्टिभिः।।
गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः।
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशंक-मासते।।५।।
जलधारा-शर-ताडिता न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुःख-भीरवः परीषहा-राति-घातिन-प्रवीराः।।६।।

ध्यान और अध्ययनशील नित, इन दोनों के वश रहते।
कर्म विशुद्धी करने हेतू, घोर तपश्चर्या करते।।२।।
ग्रीष्म ऋतू में सूर्य किरण से, तपी शिलाओं पर बैठें।
मल से लिप्त देहयुत निस्पृह, कर्म बंध को शिथिल करें।।
काम दर्प रति दोष कषायों, से मत्सर से रहित मुनीश।
पर्वत के शिखरों पर रवि के, सन्मुख मुख कर खड़े यतीश।।३।।
सम्यग्ज्ञान सुधा को पीते, पाप ताप को शांत करें।
क्षमा नीर से पुण्यकाय का, वे मुनि सिंचन नित्य करें।।
धरें सदा संतोष छत्र को, तीव्र ताप संताप सहें।
ऐसे मुनिवर ग्रीष्म काल में, कर्मेन्धन को शीघ्र दहें।।४।।
वर्षा ऋतु में मोरकण्ठ सम, काले इन्द्रधनुष वाले।
खूब गरजते शीतल वर्षा, वज्रपात बिजली वाले।।
ऐसे मेघों को लखकर वे, मुनिगण सहसा रात्रि में।
पुनरपि वृक्ष तलों में बैठें, निर्भय ध्यान धरें वन में।।५।।
मूसल जलधारा बाणों से, ताड़ित होते मुनि पुंगव।
फिर भी चारित से नहिं डिगते, सदा अटल नरसिंह सदृश।।
भव दुःख से भयभीत परीषह, शत्रू का संहार करें।
शूरों में भी शूर महामुनि, वीरों में भी वीर बनें।।६।।

अविरत-बहल-तुहिन-कणवारिभि-रंघ्रिप-पत्रपातनैः
अनवरत-मुक्त-सीत्कार-रवैःपरुषैः-
रथानिलैः शोषित-गात्र-यष्टयः।
इह श्रमणा धृतिकंबला-वृताः शिशिर-निशां।
तुषार-विषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः।।७।।
इति योग-त्रय धारिणः सकल-तपः-शालिनः प्रवृद्ध-पुण्यकायाः।
परमानंद-सुखैषिणः समाधि-मग्रयं दिशंतु नो भदन्ताः।।८।।
गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसरे वाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।९।।
गिरिकंदरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिं।।१०।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! योगिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु आदावण-रुक्ख-मूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्क-पास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्ख-**

शीत में बरफ कणों से पीड़ित, महाधैर्य कंबल ओढ़ें।
चतुष्पथों में खड़े शीत की, रात बितावें ध्यान धरें।।७।।
आतापन तरुमूल चतुष्पथ, इस विध तीन योगधारी।
सकल तपश्चर्याशाली नित, पुण्य योग वृद्धिंकारी।।
परमानन्द सुखामृत इच्छुक, वे भगवान महामुनिगण।
हमको श्रेष्ठ समाधि शुक्ल, शुचि ध्यान प्रदान करें उत्तम।।८।।
ग्रीष्म ऋतू में गिरि शिखरों पर, वर्षा रात्रि में तरु तल।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ प्रतिपल।।९।।
पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर हैं रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।१०।।

अंचलिका

हे भगवन्! इस योग भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।

खवणादियोग-जुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अथ पूर्वदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम् ।।
स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समंज-सज्ञान-विभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैःकरैः।।१।।
प्रजापति-र्यः प्रथमं जिजीविषुः, शशास कृष्या दिषु-कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुन-रद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः।।२।।

मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।२।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।३।।

अथ पूर्वदिक् वंदना-

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्।।

श्रीवृषभदेव स्तुति

शेरछंद- प्रभु आप स्वयंभू जगत में प्राणिहित करा।
सज्ज्ञानविभव चक्षु धरें मोह तम हरा।।
निजगुणसमूह रश्मि से अघ ध्वांत विनाशें।
ऐसे जिनेन्द्र चन्द्रमा भूतल में सुशोभें।।१।।
युग के प्रथम सब जीवितेच्छु प्रजा के लिए।
सिखलाई प्रजापती ने कृषि आदि क्रियायें।।
फिर तत्त्वबोध प्राप्त कर अद्भुत विभव धरा।
ममता से हो विरक्त तुम हुए विदांवरा।।२।।

विहाय यः सागरवारि-वाससं, वधू-मिवेमां वसुधावधूं सतीम् ।
मुमुक्षु-रिक्ष्वाकु-कुलादि-रात्मवान्, प्रभु प्रवव्राज सहिष्णु-रच्युतः।।३।।
स्वदोष-मूलं स्वसमाधि-तेजसा, निनाय यो निर्दय-भस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगते-ऽर्थिनेऽजसा, बभूव च ब्रह्म-पदा-मृतेश्वरः।।४।।
स विश्वचक्षु-र्वृषभोऽर्चितः सतां, समग्रविद्यात्म-वपुर्निरंजनः।
पुनातु चेतोमम नाभिनन्दनो, जिनो जितक्षुल्लक-वादिशासनः।।५।।

।। इति ऋषभजिनस्तोत्रम् ।।

यस्य प्रभावात्त्रिदिव-च्युतस्य क्रीडास्वपि क्षीव-मुखारविन्दः।
अजेयशक्ति-र्भुवि बन्धुवर्गः चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ।।१।।
अद्यापि यस्या-जितशासनस्य, सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थम् ।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं, स्वसिद्धि-कामेन जनेन लोके।।२।।

सागर सुवस्त्र धारती वसुंधरा सती।
पत्नी सदृश इसको तजा पण इंद्रियाँ जितीं।।
इच्छ्वाकु कुल के आदि पुरुष प्रभू मुमुक्षू।
दैगम्बरी दीक्षा ग्रही अच्युत हो सहिष्णू।।३।।
सब दोष के जड़ कर्म को निजध्यान अग्नि से।
निर्दय हुए प्रभु भस्मसात् कर दिया तुमने।।
सौख्याभिलाषि जग को सत्य तत्त्व बताया।
फिर ब्रह्मपद को प्राप्त कर ईश्वरपना पाया।।४।।
वे विश्वज्ञानचक्षु वृषभ सत्पुरुष अर्चित।
सम्पूर्ण विद्यामय तनु कर्मांजनों विरहित।।
सब क्षुद्रवादि संप्रदाय जीत जिन हुए।
हे नाभिललन मेरा मन पवित्र कीजिए।।५।।

श्री अजितनाथ स्तुति

प्रभु स्वर्ग से अवतीर्ण हुए तुम प्रभाव से।
सब बन्धुओं के मुखकमल खिलते हैं हर्ष से।।
सब खेल में भी वे अजेयशक्ति हों यहाँ।
इस हेतु "अजित" नाम ये सार्थक प्रभो कहा।।१।।
सत्पुरुष के नायक अजय्य शासनं कहा।
तुम नाम भी परम पवित्र आज भी यहाँ।।

यः प्रादु-रासीत्-प्रभुशक्ति-भूम्ना, भव्याशया-लीन-कलंकशान्त्यै।
महामुनि-मुर्क्तघनोपदेहो, यथा-रविन्दा, भ्युदयाय भास्वान् ।।३।।
येन प्रणीतं पृथुधर्म-तीर्थं, ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गांगं ह्रदं चन्दन-पंकशीतं गज-प्रवेका इव धर्म-तप्ताः।।४।।
स ब्रह्मनिष्ठः-सममित्रशत्रु-र्विद्याविनि-र्वान्त-कषायदोषः।
लब्धात्म-लक्ष्मी-रजितो-ऽजितात्मा जिनः श्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ।।५।।

इत्यजितजिनस्तोत्रम्

नमोऽस्तु वर्षायोग प्रतिष्ठापनक्रियायां........चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ.८ से सामायिक दंडक,९ जाप्य और पृ.९ से थोस्सामिस्तव करके लघु चैत्यभक्ति पढ़ें।)

लघुचैत्यभक्तिः

वर्षेषु वर्षान्तर-पर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम् ।।१।।

स्वसिद्धि के इच्छुक मनुष्य नाम को जपते।
प्रत्येक मंगलार्थ "अजित" नाथ को नमते।।२।।
प्रभुत्व महाशक्ति से प्रभु आप उदित हों।
भव्यों के हृदय के कलंक शांति हेतु हो।।
सब कर्म सघन लेपरहित महामुनि हो।
जैसे कमल विकसित करे भास्कर उदय अहो।।३।।
तुमने विशाल श्रेष्ठ धर्म तीर्थ प्रकाशा।
जीवों ने इसे प्राप्त करके दुःख को जीता।।
गजराज जैसे धूप से पीड़ित हुए आके।
चन्दन समान शीत गंगनीर में न्हाते।।४।।
स्वब्रह्म में निलीन मित्र-शत्रु में समता।
सज्ज्ञानचरित्र में कषाय दोष को हता।।
स्वात्मा की लक्ष्मी प्राप्त जितेन्द्रिय अजित अहो!।
भगवन् ! मुझे अर्हंतलक्ष्मी दीजिए प्रभो!।।५।।

लघु चैत्यभक्ति

भरत आदि क्षेत्रों में हिमवन, आदि सभी पर्वत ऊपर।
नन्दीश्वर द्वीपों में पाँचों, मेरू के अस्सी मंदिर।।

अवनि-तल-गतानां कृत्रिमा-कृत्रिमाणां
वन-भवन-गतानां दिव्यवैमानिकानाम् ।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि।।२।।
जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्रत्रये ये भवाः
चन्द्राम्भोज-शिखंडिकंठ-कनक-प्रावृड्-घनाभा जिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धना।
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।३।।
श्रीमन्-मेरौ कुलाद्रौ रजत-गिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे।
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषाङ्के।
ईष्वाकारे-ऽञ्जनाद्रौ दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोके-ऽभिवन्दे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि।।४।।
द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्र-नीलप्रभौ
द्वौ बन्धूक-समप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गु प्रभौ।

मध्यलोक में जितने भी जिनवर के मंदिर शाश्वत हैं।
उन सबको मैं नितप्रति वंदूं वे भवदधि से तारक हैं।।१।।
भवनवासि व्यंतर ज्योतिष वैमानिक देवों के गृह में।
पृथ्वीतल में कृत्रिम अकृत्रिम जितने भी जिनगृह हैं।।
इस जग में मनुजों से निर्मित सुरनर से पूजित मंदिर।
भावसहित उन सबको वंदूं स्मरण करूं मैं शिर नत कर।।२।।
जम्बूद्वीप धातकी पुष्करअर्ध अढाई द्वीपों में।
रत्नत्रयधर तीर्थंकर हों इक सौ सत्तर क्षेत्रों में।।
श्वेत लाल नीले स्वर्णिम अरु हरित वर्ण के जिनवर ये।
कर्मेंधन को भस्म किया त्रयकालिक जिन को वंदन है।।३।।
मेरु कुलाचल रजतगिरि जम्बू शाल्मलि तरु गिरि वक्षार।
चैत्यवृक्ष मनुजोत्तर अंजन दधिमुख रतिकर इष्वाकार।
कुंडल रुचकाचल इन सब पर जिनगृह भावन व्यंतर के।
ज्योतिष के स्वर्गों के जिनगृह इन सबको प्रणमूं रुचि से।।४।।
कुंदकुसुम शशि बर्फ हार सम धवल चंद्रप्रभु सुविधि हैं।
इन्द्रनील सम दो जिन लालकमल सम दो व हरित दो हैं।।

शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु-रहिताः सन्तप्त-हेमप्रभाः
ते संज्ञान-दिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः।।५।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! चेइयभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्प-वासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति, अहमवि इह संतो तत्थसंताइं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

प्राग्दिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धाः, योगिगणास्तानहं वंदे ।।

इति पूर्वदिक् वंदना।

सोलह जिनवर तप स्वर्णसम जन्ममृत्युहत सुरनुत हैं।
ये सज्ज्ञानसूर्य चौबिस जिन हम सबको सिद्धी देवें।।५।।

अंचलिका —

भगवन्! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन संतोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं, त्रिभुवन के चउविध, सुर करें भक्ति से सेव।।१।।
भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूं वंदूं नमूं सतत।।२।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं मम जिनगुण सम्पत् होवे।।३।।
प्राग्दिग्विदिगतरे, केवलि-जिन-सिद्ध-साधु गणदेवाः।
ये सर्वर्द्धि - समृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।१।।

इति पूर्वदिग्वंदना।

अथ दक्षिणदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।
त्वं शम्भवः संभव-तर्षरोगैः, संतप्य-मानस्य जनस्य लोके।
आसी-रिहा-कस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथा नाथ! रुजां प्रशान्त्यै।।१।।
अनित्य-मत्राण-महंक्रियाभिः, प्रसक्त-मिथ्याध्यवसाय-दोषम् ।
इदं जगज्जन्म-जरान्त-कार्त्तं, निरंजनां शान्ति-मजीगम-स्त्वम् ।।२।।
शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं, तृष्णामया-प्यायन-मात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तप-त्यजस्त्रं, तापस्तदाया-सयतीत्यवादीः।।३।।
बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतु-र्बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं, नैकान्त-दृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता।।४।।

अथ दक्षिणादिग्वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

संभवजिन स्तुति

संसार तृष्णा रोग से पीड़ित सभी जन को।
इस लोक में "शंभव" कल्याणकारि आप हो।।
भवरोग शमक आप ही निरपेक्ष वैद्य हो।
अनाथ रुग्ण रोग शांति हेतु वैद्य ज्यों।।१।।
यह जग अनित्य त्राणरहित अहंकार से।
विपरीत अभिप्राय दोष से विलिप्त है।।
यह जन्म जरा मृत्यु से पीड़ित इसे तुमने।
अघपंक रहित शांति दिलायी प्रभो तुमने।।२।।
जग सुख सभी बिजली चमक समान क्षणिक हैं।
तृष्णा को बढ़ाने में एक मात्र हेतु हैं।।
तृष्णा की यह वृद्धि सदैव ताप को करे।
वह ताप क्लेश ही करे तुमने कहा अरे।।३।।
हे नाथ! बंध मोक्ष और इनके हेतु जो।
आत्मा बंधा व मुक्त तथा मुक्ति का फल जो।।

शक्रोऽप्यशक्त-स्तव पुण्य-कीर्त्तेः, स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुत-पाद-पद्मो ममार्य देयाःशिव-ताति-मुच्चैः।।५।।
।। इति शंभवजिनस्तोत्रम्।।
गुणाभिनन्दा-दभिनन्दनो भवान्, दयावधूं क्षान्ति-सखी-मशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोप-पत्तये, द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य-गुणेन चायुजत् ।।६।।
अचेतने तत्कृत-बन्धजेऽपि च, ममेद-मित्याभिनिवेशक-ग्रहात्।
प्रभंगुरे स्थावर-निश्चयेन च, क्षतंजगत्तत्व-मजिग्रहद् भवान् ।।७।।
क्षुदादि-दुःख-प्रतिकारतः स्थिति-र्न चेन्द्रियार्थ-प्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देह-देहिनो-रितीद-मित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ।।८।।

स्याद्वादी आपके यहां ही युक्त घटेगा।
एकांतवादि में न अतः आप ही शास्ता।।४।।
तव पुण्यगुण कथन में इन्द्र भी अशक्त है।
फिर मुझ सदृश अज्ञानि स्तुति कैसे करे हैं?
फिर भी तेरी भक्ती से स्तवित पदकमल प्रभो!
उत्कृष्ट सौख्य राशि मुझे दीजिए विभो!।।५।।

अभिनन्दन जिनस्तुति

प्रभु आप गुण की वृद्धि से अभिनन्दनं हुए।
क्षमा सखी सहित दयावधू को आश्रये।।
वरध्यान के आधीन ध्यान सिद्धि के लिए।
अंतर बहि निर्ग्रंथ गुण दोनों से युत हुए।।१।।
पुद्गल व बंधजन्य सुख-दुखादि अन्य में।
ये मेरे हैं इस मिथ्या आशय पिशाच से।।
नश्वर को थिर समझ के नष्ट हुए जगत को।
प्रभु आप सत्य तत्त्व बताया है सभी को।।२।।
क्षुध आदि प्रतीकार हेतु अशन आदि से।
अरु इन्द्रिय विषय से हुए भी अल्प सौख्य से।।
तनु और आत्मा की न स्थिति न उपकार।
प्रभु आपने इस जगत् को समझाया इस प्रकार।।३।।

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्ध-दोषतो, भया-दकार्येष्विह न प्रवर्त्तते।
इहाप्यमुत्रा-प्यनुबन्ध-दोषवित् कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ।।९।।
स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत् तृषोऽपि वृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं, ततो भवानेवगतिः सतां मतः।।१०।।

इत्यभिनन्दनजिनस्तोत्रम्

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां.......चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. २८८ से "वर्षेषु वर्षांतर......"आदि चैत्यभक्ति पढ़ें।)

दक्षिणदि-ग्विदिगंतरे, केवलि-जिन-सिद्ध-साधु-गणदेवाः।
ये सर्वर्द्धि - समृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे ।।

इति दक्षिणदिक् वंदना।

अथ पश्चिमदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

मानव अती आसक्त भी आसक्तिदोष से।
नृप आदि के भय से अकार्य मे न प्रवर्ते।।
द्वय भव में भी आसक्ति दोष जान भव सुख में।
आसक्त कैसे हो रहे विस्मय अहो! इसमें।।४।।
आसक्ति से तृष्णा की वृद्धि जन को तापकर।
संसार सुख न जन को कभी होते तुष्टिकर।।
जिस हेतु आप मत प्रभो! त्रैलोक्य हितंकर।
अत आप ही हैं सत्पुरुष के लिए शरणकर।।५।।

पुनः-

दक्षिणदिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।

अथ पश्चिमदिग्वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

अन्वर्थसंज्ञः सुमति-र्मुनिस्त्वं, स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम् ।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्वक्रिया-कारक-तत्त्वसिद्धिः।।१।।
अनेक-मेकं च तदेव तत्त्वं, भेदान्वय-ज्ञान-मिदं हि सत्यम् ।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे, तच्छेष-लोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम्।।२।।
सतः कथंचित्-तदसत्त्व-शक्तिः, खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभाव-च्युत-मप्रमाणं, स्ववाग्-विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत्।।३।।
न सर्वथा नित्य-मुदेत्यपैति, न च क्रियाकारक-मत्र युक्तम् ।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गल-भावतोऽस्ति।।४।।
विधि-र्निषेधश्च कथंचिदिष्टौ, विवक्षया मुख्य-गुण-व्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं, मति-प्रवेकःस्तुवतोऽस्तु नाथ।।५।।

इति सुमतिजिनस्तोत्रम्

श्रीसुमतिजिन स्तुति

हे सुमतिनाथ! आपका सार्थक सुनाम है।
सुयुक्ति सहित आप मत स्वयं सुमान्य है।।
क्योंकि क्रिया व कारक जो तत्त्व कहे हैं।
सब शेष मतों में न उनकी सिद्धि हुई है।।१।।
अनेक और एकरूप वही तत्त्व है।
वह भेद तथा अन्वय ज्ञान से ही सत्य है।।
उपचार कथन मिथ्या एक का अभाव हो।
हो शेष का अभाव भी फिर तत्त्व अकथ हो।।२।।
सत् वस्तु में कथंचित् असत्त्वशक्ति है।
आकाश में कुसुम नहीं वृक्षों में दिखे हैं।।
यदि तत्त्व सब स्वभाव-शून्य अप्रमाण है।
तव मत से अन्य मत प्रभो! स्ववचविरुद्ध हैं।।३।।
जो नित्य सर्वथा न वो जन्मे न नष्ट हो।
उसमें न क्रिया कारक युक्ती से घटित हों।।
नहिं जन्म असत् का व सत् का नाश नहीं है।
दीपक बुझा तो तिमिर भी पुद्गलमयी ही है।।४।।
अस्तित्व व नास्तित्व कथंचित् ही इष्ट हैं।
वक्ता की इच्छा से ही मुख्य गौण रूप हैं।।

पद्मप्रभःपद्म-पलाशलेश्यः, पद्मालया-लिंगित-चारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्य-पयोरुहाणां, पद्मा-कराणा-मिव पद्मबन्धुः।।१।।
बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान्पुरस्तात्प्रति-मुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वती-मेव समग्रशोभां, सर्वज्ञ-लक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः।।२।।
शरीर-रश्मि-प्रसरः प्रभोस्ते, बालार्क-रश्मिच्छवि-रालिलेप।
नरामरा-कीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभ-मणेः स्वसानुम्।।३।।
नभस्तलं पल्लव-यन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुज-गर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातित-मोहदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै।।४।।
गुणाम्बुधे-र्विप्रुष-मप्यजस्त्रं, नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक्किमुतातिभक्ति-र्मां बाल-मालापयतीद-मित्थम्।।५।।

।। इति पद्मप्रभस्तोत्रम् ।।

हे सुमतिनाथ! आपकी यह कथन पद्धती।
मुझ स्तुतिकर्ता की हो उत्कृष्टतम मती।।५।।

श्रीपद्मप्रभ सतुति

हे पद्मप्रभो! आप देह लालकमल सम।
अन्तर व बाह्य श्री से स्पर्शित आप तन।।
जैसे रवी कमल समूह को खिला रहे।
वैसे ही आप भव्यकमल को खिला रहे।।१।।
प्रभु आपने शिव से प्रथम अर्हंत दशा में।
लक्ष्मी व सरस्वती उभय के पती हुए।।
या समवसरणयुत सरस्वती को धरा।
फिर विगतकर्म उत्तम सर्वज्ञश्री वरा।।२।।
प्रातः रवी किरण सदृश छवि आपकी प्रभो!
तव देहकांति का प्रसार व्याप रहा भो।।
नरसुरगणों से सहित सभा को प्रकाशता।
जिस विध से पद्ममणी गिरि के तट को भासता।।३।।
हे नाथ! आप सहस्रदल कमल पे पग धरें।
तव पदकमल आकाश को ही पल्लवित करें।।
तुम कामदेव मद विनाश करके भूमि पे।
सब जन के विभव हेतु श्रीविहार किये थे।।४।।
तव गुणसमुद्र की हे ऋषे! एक बिन्दु की।
नहिं आज तक भी स्तुति कर सका इन्द्र भी।।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां.........चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ५ से सामायिक दंडक,९जाप्य और पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. २८८ से चैत्यभक्ति पढ़ें।)

पश्चिम-दिग्विदिगंतरे, केवलि-जिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे ।।

इति पश्चिमदिक् वंदना।

अथ उत्तरदिक् वंदना

यावंति जिनचैत्यानि, विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।
स्वास्थ्यं यदात्यन्तिक-मेष पुंसां, स्वार्थो न भोगःपरिभंगु-रात्मा।
तृषोऽनुषंगान्न च तापशांति-रितीद-माख्यद्-भगवान् सुपार्श्वः।।१।।
अजंगमं जंगम-नेययन्त्रं, यथा तथा जीवधृतं शरीरम् ।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च, स्नेहो वृथा-त्रेति हितं त्वमाख्यः।।२।।

फिर मुझ सदृश कैसे भला कर सकता स्तुती?
अति भक्ति ही मुझ अज्ञ को बुलवा रही कुछ भी।।५।।
पश्चिमदिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।३।।

अथ उत्तरदिग्वंदना

यावंति, जिनचैत्यानि, विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहं।।

श्री सुपार्श्वनाथ स्तुति

जीवों का है परिपूर्ण स्वास्थ्य स्व में स्थिति।
क्षणभंगुरे ये भोग नहिं निज के अर्थ ही।।
तृष्णा की वृद्धि से नहीं है ताप की शांती।
भगवन् ! सुपार्श्व आपने यह सूक्ति सिखा दी।।१।।
जिस विध से जड़ ये यंत्र सचेतन से चले हैं।
वैसे ही अचेतन शरीर जीव धरे हैं।।

अलंघ्यशक्ति-र्भवितव्यतेयं, हेतुद्वया-विष्कृत-कार्यलिंगा।
अनीश्वरो जन्तु-रहं क्रियार्त्तः, संहत्य कार्ये-ष्विति साध्ववादीः।।३।।

बिभेति भृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो, नित्यं शिवं वांछति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकाम-वश्यो, वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः।।४।।

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता, मातेव बालस्य हिता-नुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता, मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य।।५।।

इति सुपार्श्वजिनस्तोत्रम् ।

चन्द्रप्रभं चन्द्र-मरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महता-मृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त-कषायबन्धम्।।१।।

यह तनु घृणित दुर्गंधि विनश्वर व तापकर।
इसमें है राग व्यर्थ ऐसा तव कथन हितकर।।२।।

ये होनहार है अलंघ्य टाले न टलती।
अन्तर व बाह्य हेतुओं से कार्य की सिद्धी।।
असमर्थ भी ये जीव अहंकार से ग्रसित।
सहकारि से ही कार्य न हों प्रभु कथन उचित।।३।।

यह जीव मृत्यु से डरे फिर भी नहीं मुक्ती।
नित मोक्ष की वांछा करे फिर भी न हो प्राप्ती।।
फिर भी ये अज्ञ जीव भय व कामवश हुआ।
स्वयमेव व्यर्थ है दुःखी प्रभु तुमने यह कहा।।४।।

प्रभु आप सब पदार्थ के ज्ञाता प्रसिद्ध हैं।
बालक के लिए हितकथन में मातु सदृश हैं।।
गुण खोजने वालों के नेता आप ही यहां।
प्रभु आज मैं भी तव स्तव भक्ती से कर रहा।।५।।

चन्द्रप्रभ स्तुति

हे चंद्रप्रभो! चन्द्रकिरण सम सफेद हो।
मानो द्वितीय चंद्र ही भूपर उदित अहो।।
इंद्रादि वंद्य ऋषिपती जिनराज आप हो।
अंतःकषायबंधविजित मैं तुम्हें वंदों।।१।।

यस्यांग-लक्ष्मी-परिवेश-भिन्नं, तमस्तमोरे-रिव रश्मि-भिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम् ।।२।।

स्वपक्षसौस्थित्य-मदावलिप्ता, वाक्सिंहनादै-र्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्र-गण्डा, गजा यथा केशरिणो निनादैः।।३।।

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनन्त-धामाक्षर-विश्वचक्षुः, समंत-दुःखक्षय-शासनश्च।।४।।

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाभ्र-कलंकलेपः।
व्याकोश-वाङ्न्याय-मयूख-मालः, पूयात् पवित्रो भगवान्मनो मे।।५।।

इति चन्द्रप्रभजिनस्तोत्रम्

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां.......चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य,पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. २८८ से चैत्य-भक्ति पढ़ें।)

जैसे रवी किरण अंधेर नष्ट करे हैं।
तव देह कांति वैसे सुप्रकाश धरे हैं।।
यह कांति बाह्य के समस्त तिमिर को नाशे।
अरु ध्यानदीप अतिशय मन ध्वांत विनाशे।।२।।

निजपक्ष के श्रेष्ठत्व मद से चूर प्रवादी।
तुम वचन सिंहनाद से निर्मद हुए सभी।।
जैसे कि मद से आर्द्र गंडस्थल हुए जिनके।
गजराज वे भी सिंहगर्जना से भागते।।३।।

जो कर्मजीत अद्भुत कर्म तेज धारते।
आनन्त्यज्ञान शाश्वत विश्वनेत्र धारते।।
संपूर्णदुःखनाशन शासन को धरे हैं।
त्रिभुवन में परमपद में वो स्थिति करे हैं।।४।।

सब दोषरूप मेघ के कलंक से रहित।
अविरोध दिव्यध्वनी किरण से सदा प्रगट।।
सब भव्य कुमुद को प्रफुल्ल करें चन्द्रमा।
भगवान वे पावन पवित्र करें मुझ मना।।५।।

उत्तरदिग्विदिगंतरे, केवलिजिनसिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।

इति उत्तरदिक्‌वंदना

यह चतुर्दिक्‌वंदना हुई है।

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां....पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।)

पंचमहागुरु भक्तिः

श्रीमद-मरेन्द्रमुकुट-प्रघटित-मणिकिरण-वारिधाराभिः।
प्रक्षालित-पदयुगलान्-प्रणमामि जिनेश्वरान्-भक्त्या।।१।।
अष्टगुणैः समुपेतान्, प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन्।
सिद्धान्-सतत-मनन्तान्, नमस्करो-मीष्टतुष्टि-संसिद्ध्यै।।२।।
साचार-श्रुतजलधीन्, प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग-कमलानि दधे शिरसि मेऽहम्।।३।।
मिथ्यावादि-मदोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचनसंदर्भान्।
उपदेशकान्प्रपद्ये, मम दुरितारि - प्रणाशाय।।४।।

उत्तरदिग्विदिगंतरे, केवलिजिन-सिद्ध-साधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धि-समृद्धा, योगिगणास्तानहं वंदे।।

इति उत्तरदिग्वंदना

पंचमहागुरु भक्ति

श्रीमन् इंद्रों के मुकुटों की, मणिप्रभा जलधारा से।
प्रक्षालित पदयुगल जिनेश्वर, को प्रणमूं नित भक्ती से।।१।।
दुष्ट अष्टविध कर्म शत्रुगण, नाशक अष्ट गुणों से युत।
नमूं अनंतों सिद्धों को नित, इष्ट तुष्टि सिद्धी हेतु।।२।।
द्वादशांग श्रुतजलधि पार कर , शुद्ध महान चरित में रत।
आचार्यों के पदयुग कमलों, को निज शिर पर धारूँ नित।।३।।
मिथ्यावादी के मद तम विध्वंसी वचन सहित पाठक।
निज दुरितारि प्रणाशन हेतू, शरण लिया तव उपदेशक।।४।।

सम्यग्दर्शनदीप - प्रकाशकामेय - बोधसंभूताः।
भूरिचरित्रपताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु।।५।।
जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधुवरा-नमलगुण-गणोपेतान्।
पंचनमस्कारपदैस्त्रिसंध्य-मभिनौमि मोक्षलाभाय।।६।।
एष पंचनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः।
मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं मतं।।७।।
अर्हत्सिद्धाचार्यो - पाध्यायाः सर्वसाधवः।
कुर्वन्तु मंगलाः सर्वे, निर्वाण-परमश्रियम् ।।८।।
सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान्-सिद्धानाचार्यपाठकान् साधून्।
रत्नत्रयं च वन्दे, रत्नत्रय - सिद्धये भक्त्या।।९।।
पान्तु श्रीपादपद्मानि, पंचानां परमेष्ठिनां।
लालितानि सुराधीश - चूड़ामणि - मरीचिभिः।।१०।।
प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगांगै-रष्टभिः स्तुवे।।११।।

सम्यग्दर्शन दीप प्रकाशी, ज्ञेय तत्त्व का ज्ञान उदय।
भूरि चरित ध्वजयुत वे मेरी रक्षा करें साधुगण सब।।५।।
जिनवर सिद्ध सूरि पाठक सब, साधु अमल गुणगण से युत।
पंचनमस्कृति मंत्र पदों से, त्रिसमय नमूं मोक्षपद हेतु।।६।।
पंचनमस्कृति महामंत्र यह, सर्व पाप नाशनकारी।
सभी मंगलों में यह उत्तम, मंगल प्रथम सौख्यकारी।।७।।
अर्हत्सिद्धाचार्य उपाध्याय सर्व साधु परमेष्ठी पांच।
मुझको दें निर्वाण परमश्री, वे मंगलमय मंगल काज।।८।।
सभी जिनेन्द्र चंद्र सिद्धों को, सूरी पाठक साधू को।
रत्नत्रय की सिद्धी हेतू नित वंदूं रत्नत्रय को।।९।।
सुरपति के चूड़ामणि किरणों, से चुंबित श्री पादकमल।
श्रेष्ठ पंच परमेष्ठी के वे, रक्षा करें मेरी प्रतिपल।।१०।।
प्रातिहार्य से युत अर्हन्तों, को अठ गुणयुत सिद्धों को।
वंदूं अठ प्रवचन माता से, संयुत श्री आचार्यों को।।११।।
शिष्यों से युत पाठकगण को, अष्ट योगयुत साधू को।
वंदूं पंच महागुरुवर को, त्रिकरण शुचि से हर्षित हो।।१२।।

आलोचना —**इच्छामि भंते! पंचमहागुरुभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अट्ठमहापाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं। अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-माउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादि-सुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां.......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां......सिद्धयोगिचैत्यपंचमहागुरु-शांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामि पढ़कर पृ. १४१ से समाधि भक्ति पढ़ें।)

****

वर्षायोग निष्ठापन कब और कैसे करें?

''ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद् रात्रौ च मुच्यताम्।।''

''कार्तिकस्य कृष्ण चतुर्दशीतिथौ'' अर्थात् कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में वर्षायोग को निष्ठापित कर देवें।

अंचलिका

दोहा-

भगवन् ! पंचमहागुरु, भक्ति कायोत्सर्ग।
करके आलोचन विधि, करना चाहूँ सर्व।।१।।
अष्ट महाशुभ प्रातिहार्य, संयुत अर्हन्त जिनेश्वर हैं।
अष्ट गुणान्वित ऊर्ध्वलोक, मस्तक पर सिद्ध विराज रहे।।२।।
अठ प्रवचन माता संयुत हैं, श्री आचार्यप्रवर जग में।
आचारादिक श्रुतज्ञानामृत उपदेशी पाठकगण हैं।।३।।
रत्नत्रयगुण पालन में रत, सर्वसाधु परमेष्ठी हैं।
नितप्रति अर्चूं पूजूं वंदूं, नमस्कार मैं करूं उन्हें।।४।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपद् होवे।।५।।

वर्षायोग निष्ठापन क्रिया

वर्षायोग प्रतिष्ठापना में जो-जो भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं वे ही सारी भक्तियाँ यहां भी पढ़ी जाती हैं। अन्तर इतना ही है कि 'प्रतिष्ठापन' के स्थान पर 'निष्ठापन' बोलें। यथा-

नमोऽस्तु वर्षायोगनिष्ठापनक्रियायां..........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

ऐसे ही वर्षायोगप्रतिष्ठापन की पूरी क्रिया करनी चाहिए।

वर्षायोग कितने दिनों का है?

आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी के दिन वर्षायोग प्रतिष्ठापना करके यद्यपि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में समापन कर देते हैं फिर भी साधुओं को ''शुक्लोर्जपंचमीं त्र्यवत्'' कार्तिक शुक्ला पंचमी के पहले विहार नहीं करना चाहिए। यदि कदाचित् किसी विशेष कारणवश-दुर्भिक्ष उपसर्गादि के निमित्त से वर्षायोग-चातुर्मास के मध्य उस गांव से विहार करना पड़ जावे तो गुरु से प्रायश्चित लेना चाहिए।

ऐसे ही आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की पूर्वरात्रि में कदाचित् वर्षायोग स्थापना न कर सकें तो ''नभश्चतुर्थीं न लंघयेत् '' श्रावण कृष्णा चतुर्थी को भी कर सकते हैं इसके बाद नहीं।

चातुर्मास के पहले और अनन्तर भी एक-एक माह अधिक उस चातुर्मास स्थान पर रह सकते हैं, ऐसा कथन है[१]।

****

वीर निर्वाण क्रिया कब और कैसे करें?

योगांतेऽर्कोदये सिद्धनिर्वाणगुरुशांतय:।
प्रणुत्या वीरनिर्वाणे कृत्यातो नित्यवंदना।।७०।।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में वर्षायोग निष्ठापना करके रात्रिक प्रतिक्रमण कर लेवें, पुन: साधुवर्ग सूर्योदय के समय वीर निर्वाण क्रिया करें। इसमें सिद्ध, निर्वाण, पंचगुरु और शांतिभक्ति करनी होती हैं पुन: साधुवर्ग नित्य वंदना-पूर्वाण्ह देववंदना-सामायिक करें।

वीरनिर्वाण क्रिया

नमोऽस्तु वीरनिर्वाणक्रियायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से 'णमो अरहंताणं' इत्यादि सामायिक दंडक, ९जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामि पढ़कर पृ. ११३ से 'सिद्धानुद्धूत' आदि सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वीरनिर्वाणक्रियायां......निर्वाणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामि पढ़कर पृ. ३०३ से 'विबुधपतिखगपति' इत्यादि निर्वाण भक्ति पढ़ें।)

इस भक्ति को पढ़ते हुए वीर भगवान के निर्वाण स्थान की या वीर भगवान के प्रतिमा की तीन प्रदक्षिणा देवें।

---

१. अनगार धर्मामृत, अ. ९, श्लोक ६८-६९।

निर्वाण भक्तिः

विबुधपति-खगपति-नरपति-धनदोरग-भूत-यक्षपति-महितम्।
अतुल-सुखविमल-निरुपम-शिव-मचल-मनामयं हि संप्राप्तम्।।१।।
कल्याणैः संस्तोष्ये, पंचभि-रनघं त्रिलोक-परमगुरुम्।
भव्यजन-तुष्टिजननै र्दुरवापैः सन्मतिं भक्त्या।।२।।
आषाढ़-सुसित षष्ठ्यां, हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि।
आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः।।३।।
सिद्धार्थ-नृपति-तनयो, भारत-वास्ये विदेह-कुण्डपुरे।
देव्यां प्रियकारिण्यां, सुस्वप्नान्-संप्रदर्श्य विभुः।।४।।
चैत्र सितपक्ष-फाल्गुनि, शशांक-योगे दिने त्रयोदश्यां।
जज्ञे स्वोच्च-स्थेषु, ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने।।५।।
हस्ताश्रिते शशांके, चैत्र-ज्योत्स्ने चतुर्दशी-दिवसे।
पूर्वाण्हे रत्नघटै-र्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ।।६।।

निर्वाणभक्ति

सुरपति खगपति नरपति धनपति, नाग यक्षपति से पूजित।
अचल निरामय अतुल विमल, निरुपम सुखमय शिवपद को प्राप्त।।१।।
दोष रहित त्रैलोक्य परमगुरु, सन्मति जिन का भक्ती से।
स्तवन करूं भविजन तुष्टिप्रद, दुर्लभ पंचकल्याणक से।।२।।
हस्त उत्तरा मध्य शशी था, सित अषाढ छठ तिथि उत्तम।
पुष्पोत्तर विमानपति दिव सुख, भोग वहां से तज सुरतनु।।३।।
भरत क्षेत्र में विदेह जनपद, कुंडपुरी सिद्धार्थ नृपति।
रानी प्रियकारिणी को स्वप्न, दिखा शुभ गर्भ में आये विभु।।४।।
फाल्गुनि उडु[१] शशियोग चैत्र सित त्रयोदशी शुभ लग्न महा।
सौम्यग्रह सब उच्च स्थानों, में तब प्रभु ने जन्म लिया।।५।।
हस्त नखत में शशि था चैत्र, सुदी चौदस पूर्वाण्ह समय।
इन्द्रों ने मिल रत्न घटों से, प्रभु अभिषेक किया गिरि पर।।६।।

---

१. नक्षत्र।

भुक्त्वा कुमारकाले, त्रिंशद्-वर्षाण्यनंतगुणराशिः।
अमरोपनीतभोगान्-सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः।।७।।
नानाविध-रूपचितां, विचित्र-कूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम्।
चंद्रप्रभाख्य-शिविका-मारुह्य पुराद्-विनिष्क्रान्तः।।८।।
मार्गशिर-कृष्णदशमी-हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते सोमे।
षष्ठेन त्वपराण्हे, भक्तेन जिनः प्रवव्राज।।९।।
ग्राम-पुर-खेट-कर्वट-मटंब-घोषाकरान् प्रविजहार।
उग्रैस्तपोविधानै - र्द्वादशवर्षाण्यमरपूज्यः।।१०।।
ऋजुकूलायास्तीरे, शालद्रुम-संश्रिते शिलापट्टे।
अपराण्हे षष्ठेना-स्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे।।११।।
वैशाखसित-दशम्यां, हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते चंद्रे।
क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ।।१२।।
अथ भगवान् संप्रापद्, दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम् ।
चातुर्वर्ण्यसुसंघस्तत्राभूद् गौतम - प्रभृति।।१३।।

देवों द्वारा लाये भोजन, वसन वस्तु का तीस बरस।
कर उपभोग अनंत गुणाकर, सहज किसी दिन हुए प्रबुद्ध।।७।।
चन्द्रप्रभा पालकि शुभ कूटों से ऊँची मणि से भूषित।
चित्र विचित्रित उस पर चढ़कर, पुर से बाह्य गये सन्मति।।८।।
मगसिर कृष्णा दशमी को शशि, हस्त उत्तरा मध्य हुआ।
बेला कर अपराह्ण काल में, प्रभु ने दीक्षा स्वयं लिया।।९।।
सुरपति पूज्य उग्र तप करते, बारह वर्ष विहार किया।
ग्राम नगर खेट कर्वट खनि, मटंब घोष में भ्रमण किया।।१०।।
ग्राम जृंभिका में ऋजुकूला, नदि तट शाल वृक्ष नीचे।
बेला करके शिलापट्ट पर, सांझ समय में प्रभु तिष्ठे।।११।।
हस्तोत्तर नक्षत्र मध्य शशि, थी वैशाख सुदी दशमी।
ध्यान क्षपक श्रेणी में चढ़कर, वीर हुए केवलज्ञानी।।१२।।
महावीर वैभार मनोहर, दिव्य सुपर्वत पर आये।
चतुर्वर्ण शुभ संघ सुगौतम, गणधर आदि सभी आये।।१३।।

छत्राशोकौ घोषं, सिंहासनदुंदुभी कुसुमवृष्टिम् ।
वरचामर-भामंडल-दिव्या-न्यन्यानि चावापत् ।।१४।।
दशविध-मनगाराणा-मेकादशधोत्तरं तथा धर्मम् ।
देशयमानो व्यवहरत्त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः।।१५।।
पद्मवन-दीर्घिकाकुल-विविध-द्रुमखण्ड-मण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने, व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः।।१६।।
कार्तिककृष्ण-स्यान्ते, स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्-व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ।।१७।।
परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं, ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरु - रक्तचन्दन - कालागुरु - सुरभिगोशीर्षैः।।१८।।
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं, मुकुटानल-सुरभि-धूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि, गता दिवं खं च वनभवने।।१९।।
इत्येवं भगवति वर्धमानचंद्रे, यः स्तोत्रं पठति सुसंध्ययोर्द्वयोर्हि।
सोऽनंतं परमसुखं नृदेवलोके, भुक्त्वांते शिवपद-मक्षयं प्रयाति।।२०।।

तरु अशोक छत्रत्रय दिव्य-ध्वनि सिंहासन दुंदुभि हैं।
कुसुमवृष्टि चामर भामंडल, प्रातिहार्य ये दिव्य कहे।।१४।।
मुनि के दशविध धर्म सुश्रावक, की ग्यारह प्रतिमा उत्तम।
तीस वर्ष तक धर्म वृष्टि कर, जग में प्रभु विहरें शुभतम।।१५।।
कमलों से परिव्याप्त सरोवर, विविध वृक्ष मंडित सुन्दर।
पावापुरि उद्यान वहां पर, कायोत्सर्ग स्थित जिनवर।।१६।।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या दिन, उषाकाल स्वाति नक्षत्र।
शेष कर्म हनि प्राप्त किया प्रभु, अजरामर सुख अक्षयवर।।१७।।
मुक्ति गये सन्मति को जाना, सभी देवगण झट आये।
देवदारु चन्दन कृष्णागरु, गोशीरष चन्दन लाये।।१८।।
अग्निदेव मुकुटानल से शुभ, धूप माल से प्रभू शरीर।
संस्कारित कर गणधर को भज, स्वस्वस्थान गये सब सुर।।१९।।
इस विधि जो भविजन श्रद्धा से, प्रातः संध्या उभय समय।
वर्धमान भगवन् की स्तुति, करते हैं धर भक्ति हृदय।।
वे नर सुर के अभ्युदयों का, दिव्यसुखों का अनुभव कर।
निश्चित ही अक्षय सुखमय शिव, पद पाते हैं भव्य प्रवर।।२०।।

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां, निर्वाणभूमि-रिह भारत-वर्षजानाम् ।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः, संस्तोतु-मुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या।।२१।।
कैलाशशैल-शिखरे परिनिर्वृतो-ऽसौ, शैलेशिभाव-मुपपद्य वृषो महात्मा।
चंपापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान् , सिद्धिं परामुपगतो गतरागबंधः।।२२।।
यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः, पाखंडिभिश्च परमार्थ-गवेषशीलैः।
नष्टाष्ट-कर्मसमये तदरिष्टनेमिः, संप्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते।।२३।।
पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे, पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमान-जिनदेव इति प्रतीतो, निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा।।२४।।
शेषास्तु ते जिनवरा जितमोह-मल्लाः, ज्ञानार्कभूरिकिरणै-रवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारित-सौख्यनिष्ठं, सम्मेद-पर्वततले समवापु-रीशाः।।२५।।

जहां जहां से अर्हन् भगवन्, गणधर मुनि श्रुत पारंगत।
भरतक्षेत्र से मुक्ति गये हैं, वे निर्वाणभूमि शुचिगत।।
उन भूमी की शुद्धमना मैं, वचन क्रिया को भी शुचिकर।
स्तुति करने का इच्छुक मन हो, भक्ती से प्रणमूं सुखकर।।२१।।
वृषभ महात्मा सहस अठारह, शील पूर्ण कर ईश हुए।
शुभ कैलाश शैल से शिवमय, परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।
चंपापुर से ज्ञानशरीरी, वासुपूज्य प्रभु जगनामी।
रागबंध से रहित जिनोत्तम परणी सिद्धिवधू स्वामी।।२२।।
जिस शिवमय पद की इन्द्रादिक, चाह करें प्रार्थना करें।
परमारथ अन्वेषणशाली, पाखंडी भी जिसे चहें।।
अष्ट कर्म के नष्ट समय में, अरिष्ट नेमी जिनवर ने।
प्राप्त किया वह लोकोत्तम पद, उत्तम ऊर्जयंत गिरि से।।२३।।
पावापुर के बाह्य सरोवर, पद्म कुमुदनी से शोभित।
मध्य भाग में उसके उन्नत, भूमि देश में प्रभु राजित।।
श्रीमन् वर्धमान जिनदेवा, त्रिभुवन विश्रुत पाप रहित।
कर्म अघाती धोकर के, निर्वाण गये भगवन् सन्मति।।२४।।
शेष बीस तीर्थंकर जिनवर, मोह मल्ल को जीत महान।
ज्ञान सूर्य किरणों से त्रिभुवन, भासित करके हुए प्रधान।।
श्री सम्मेद सुशैल शिखर से, अनवधि सौख्य सहित उत्तम।
परमधाम को प्राप्त हुए हैं, श्री जिनईश नमूं प्रतिदिन।।२५।।

आद्यश्चतुर्दशदिनै-र्विनिवृत्तयोगः, षष्ठेन निष्ठितकृति-र्जिनवर्द्धमानः।
शेषा विधूतघनकर्म-निबद्धपाशाः, मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः।।२६।।
माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्ध्यान्यादाय मानसकरै-रभितः किरंतः।
पर्येम आदृतियुता भगवन्निषद्याः, संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः।।२७।।
शत्रुंजये नगवरे दमितारि-पक्षाः, पंडोः सुताः परमनिर्वृतिमभ्युपेताः।
तुंग्यां तु संगरहितो बलभद्रनामा, नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः।।२८।।
द्रोणीमति प्रबलकुण्डल-मेढ्रके च, वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि-बलाहके च, विंध्ये च पौदनपुरे वृषदीपके च।।२९।।
सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे, दंडात्मके गजपथे पृथुसार-यष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः, स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ।।३०।।

वृषभदेव प्रभु चौदह दिन का, योग रोध कर सिद्ध हुए।
बेला से श्रीवीर प्रभू जिन, योग रहित हो मुक्ति गये।।
बद्धकर्म घन जाल अघाती, घात शेष बाइस जिनवर।
एक मास का योग निरोधा, शिवपद प्राप्त किया सुखकर।।२६।।
वर्ण संस्तुतिमय कुसुमों से, गूँथी माला को ले करके।
मानस कर से पुष्प बिखेरूं, चारों तरफ महामुद से।
भगवन् की निर्वाणभूमि की, त्रय प्रदक्षिणा दे करके।
प्रणमूं पुनि पंचमगति मांगूँ, भक्ति का फल श्रीजिन से।।२७।।
कर्मशत्रुजित् पांडु पुत्र त्रय शत्रुंजय से मुक्ति गये।
संगरहित बलभद्र महामुनि तुंगीगिरि से मुक्ति गये।।
श्रीसुवर्णभद्र मुनि जितरिपु सरितातट से कर्म हने।
इन सबको औ सिद्धभूमि को नमूं भक्ति को धर मन में।।२८।।
द्रोणागिरि कुंडलपर्वत औ मुक्तागिरि वैभारगिरी।
सिद्धकूट ऋषिगिरि विपुलाचल तथा बलाहक विंध्यगिरी।।
पोदनपुर वृषदीपक सह्याचल सुप्रतिष्ठ हिमवानगिरी।
दंडात्मक गजपंथा औ पृथुसारयष्टि ये निर्वृतिगिरी।।२९।।
आर्यखंड में जहां-जहां से कर्मनाश मुनि सिद्ध हुए।
हैं अनेक निर्वाणक्षेत्र जो यहां ख्याति को प्राप्त हुए।।
उन सब पावन सिद्धक्षेत्र को नमन करूं श्रद्धा रुचि से।
सिद्ध हुए उन महासाधु को भी नित वंदूं बहुरुचि से।।३०।।

इक्षोर्विकार-रसपृक्त-गुणेन लोके, पिष्टोऽधिकं मधुरता-मुपयाति यद्वत्।
तद्वच्च पुण्यपुरुषै-रुषितानि नित्यं, स्थानानि तानि जगता-मिह पावनानि।।३१।।

क्षेपक श्लोक-

***श्रीमच्चंद्रगुहावराक्षरशिलां वस्त्रावतारं सदा,**
अर्चे चारणपादुकां चणगुहे सर्वामरैरर्चिताम् ।
भास्वल्लक्षणपंक्तिनिर्वृतिपथं बिंदुं च धर्मं शिलां,
सम्यग्ज्ञानशिलां च नेमिनिलयं वंदे सशृंगत्रयम् ।।
समवसरणमानं योजनं द्वादशादि-,
जिनपतियदुयावद् योजनार्द्धार्द्धहानिः।
कथयति जिनपार्श्वे योजनैकं सपादं,
निगदितजिनवीरे योजनैकं प्रमाणम् ।।
नाभेयस्य शतानि पंचधनुषां मानं परं कीर्तितम् ।
सद्भिस्ततीर्थकराष्टकस्य निपुणैः पंचाशदूनं हि तत् ।।
पंचानां च दशोनकं भुवि भवेत्पंचोनकं चाष्टके।
हस्ताः स्युर्नव सप्त चान्त्यजिनयोर्येषां तु तान्नौम्यहम् ।।
श्रीचंद्रप्रभनाथपुष्पदशनौ कुंदावदातच्छवी।
रक्ताम्भोजपलाशवर्णवपुषौ पद्मप्रभद्वादशौ।।
कृष्णौ सुव्रतयादवौ च हरितौ पार्श्वः सुपार्श्वश्च वै।
शेषाः सन्तु सुवर्णवर्णवपुषो मे षोडशाघच्छिदे।।
वासुपूज्यस्तथा मल्लिर्नेमिः पार्श्वोऽथ सन्मतिः।
कुमाराः पंच निष्क्रान्ताः पृथिवीपतयः परे।।
वृषभो वासुपूज्यश्च नेमिः पर्यंकयोगतः।
कायोत्सर्गस्थितानां तु सिद्धिः शेषजिनेशिनाम् ।।

इक्षुरस से मिश्रित आटा जैसे मधुर हुआ जग में।
वैसे पुण्य पुरुष से सेवित स्थल नित ही पूज्य बने।।
वे सब स्थल तीर्थ कहाते मन वच तन से नमूं उन्हें।
सभी पुण्य पुरुषों को प्रणमूं मम सब वांछित कार्य बने।।३१।।

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां, प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृति-भूमिदेशाः।
ते मे जिना जितभया मुनयश्च शांताः, दिश्यासु-राशु सुगतिं निरवद्य-सौख्याम्।।३२।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। इमम्मि अवसप्पिणीए चउत्थसमयस्स पच्छिमे भाए। आउट्ठ-मासहीणे वास-चउक्कम्मि सेसकालम्मि। पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो। तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोयिसिय-कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा**

कैलाशाद्रौ मुनीन्द्रः पुरुरपदुरितो मुक्तिमाप प्रणूतः।
चंपायां वासुपूज्यस्त्रिदशपतिनुतो नेमिरप्यूर्जयंते।।
पावायां वर्धमानस्त्रिभुवनगुरवो विंशतिस्तीर्थनाथाः।
सम्मेदाग्रे प्रजग्मुर्ददतु विनमतां निर्वृतिं नो जिनेन्द्राः।।
गौर्गजोऽश्वः कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गंडो महिषसूकरौ।।
सेधा वज्रमृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पलं शंखो नागराजश्च केसरी।।
शांतिकुंथ्वरकौरव्या यादवौ नेमिसुव्रतौ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः।।

तीर्थंकर उपशांत महामुनि जहां जहां से मुक्ति गये।
उन निर्वाण क्षेत्र को वंदूं नितप्रति त्रिकरण शुद्धि लिये।।
वे जितभय जिन शांत महामुनि मुझको शीघ्र सुगति देवें।
दोषरहित सर्वोच्च सौख्यमय उत्तम पंचमगति देवें।।३२।।

अंचलिका

भगवन् परिनिर्वाण भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रूचि से।।१।।
इस अवसर्पिणी का चतुर्थ शुभ, काल उसी के अंतिम में।
तीन मास अरु साढ़े आठ, मास जब शेष बचा उसमें।।२।।
पावानगरी में कार्तिक शुभ, मास कृष्ण चौदश तिथि में।
रात्रि अंत स्वाती नक्षत्र शुभ, उषाकाल की बेला में।।३।।
वर्धमान महावीर महति, भगवान सिद्धि को प्राप्त हुए।
तीन लोक के भावन व्यंतर, ज्योतिष कल्पवासिगण ये।।४।।

दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण-महाकल्लाणपुज्जं करेंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु वीरनिर्वाणक्रियायां.............पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. २७७ से पंचगुरु भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वीरनिर्वाणक्रियायां............शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. १३६ से शांति भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वीरनिर्वाणक्रियायां........सिद्धनिर्वाणपंचगुरुशांतिभक्तीः कृत्वा समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।

****

पांच कल्याणकों में क्रिया कब और कैसे करें?

तीर्थंकर भगवान के गर्भ, जन्म-कल्याणक में, गर्भ, जन्मकल्याणक की वंदना करते समय सिद्ध भक्ति, चारित्र भक्ति और शांति भक्ति करें।

तपकल्याणक में सिद्ध, चारित्र, योगि और शांति भक्ति पढ़कर क्रिया करें।

ज्ञानकल्याणक में सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि और शांति भक्ति पढ़ें।

मोक्षकल्याणक में सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, निर्वाण और शांतिभक्ति पढ़ें।

ये कल्याणक संबंधी क्रियाएं तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म आदि कल्याणकों की तिथियों के दिन की जाती हैं और गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान तथा निर्वाण से पवित्र तीर्थक्षेत्रों पर निषद्यास्थान-चरणपादुका की वंदना करते समय की जाती हैं।

निज परिवार सहित चउविध सुर, दिव्यगंध दिव पुष्पों से।
दिव्यधूप दिव चूर्ण वास से, दिव्यस्नपन विधी करते।।५।।
अर्चन पूजन वंदन करते, नमस्कार भी नित करते।
महावीर निर्वाण महाकल्याणक पूजा विधि करते।।६।।
मैं भी यहीं मोक्ष कल्याणक, की नित ही अर्चना करूं।
पूजन वंदन करूं भक्ति से, नमस्कार भी पुनः करूं।।७।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।८।।

पंचकल्याणक वंदना क्रिया

जैसे चैत्र कृष्णा नवमी के दिन भगवान आदिनाथ के जन्मकल्याणक की क्रिया करनी है तो निम्न विधि से भक्तियाँ पढ़ें।

नमोऽस्तु वृषभदेवजिनजन्मकल्याणकवंदनाक्रियायां..........सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कायोत्सर्ग विधि करके पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वृषभदेवजिनजन्मकल्याणकवंदनाक्रियायां................चारित्र-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(कायोत्सर्ग विधि करके पृ. १२२ से चारित्रभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वृषभदेवजिनजन्मकल्याणकवंदनाक्रियायां ....शांति-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वृषभदेवजिनजन्मकल्याणकवंदनाक्रियायां.............सिद्ध-चारित्रशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

ऐसे ही उन, उन कल्याणकों के दिवस उपर्युक्त कथित भक्तियों को पढ़ना चाहिए।

श्री वृषभदेव निर्वाणकल्याणक वंदना क्रिया

इस क्रिया में प्राकृत भक्तियां दी गई हैं। इच्छानुसार संस्कृत या हिन्दी पद्यानुवाद की भक्तियां भी पढ़ सकते हैं।

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां........ पूर्वाचार्यानु-क्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीसिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पंचांग प्रणाम कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में नव जाप्य करके तीन आवर्त एक शिरोनति करके थोस्सामिस्तव पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके वंदना मुद्रा से संस्कृत या प्राकृत सिद्धभक्ति पढ़ें।)

प्राकृत सिद्ध भक्ति

अट्ठविह-कम्ममुक्के, अट्ठ-गुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठमपुढवि-णिविट्ठे, णिट्ठिय-कज्जे य वंदिमो णिच्चं।।१।।

तित्थयरे-दरसिद्धे, जल-थल-आयासणिव्वुदे सिद्धे।
अंतयडे-दरसिद्धे, उक्कस्स-जहण्ण-मज्झिमोगाहे।।२।।

उड्ढ-मह-तिरियलोए, छव्विह-काले य णिव्वुदे सिद्धे।
उवसग्ग-णिरुवसग्गे, दीवोदहि-णिव्वुदे य वंदामि।।३।।

पच्छायडेय सिद्धे, दुग-तिग-चदुणाण-पंच-चदुर-जमे।
परिपडिदा-परिपडिदे, संजम-सम्मत्त-णाण-मादीहिं।।४।।

प्राकृत सिद्ध भक्ति (पद्यानुवाद)

श्री सिद्धचक्र सब आठ कर्म, विरहित औ आठ गुणों युत हैं।
अनुपम हैं सब कार्य पूर्ण कर, अष्टम पृथ्वी पर स्थित हैं।।
ऐसे कृतकृत्य सिद्धगण का, हम नितप्रति वंदन करते हैं।
मन वचन काय की शुद्धी से, शिरसा अभिनन्दन करते हैं।।१।।

तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए, बिन तीर्थंकर जो सिद्ध हुए।
जल से थल से जो सिद्ध हुए, जो भी आकाश से सिद्ध हुए।।
जो हुए अंतकृत केवलि या, बिन हुए सिद्धि को प्राप्त हुए।
उत्तम जघन्य मध्यम तनु की, अवगाहन धर जो सिद्ध हुए।।२।।

जो ऊर्ध्वलोक औ अधोलोक, औ तिर्यक् लोक से सिद्ध हुए।
उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के भी, छह कालों से जो सिद्ध हुए।।
उपसर्ग सहन कर सिद्ध हुए, उपसर्ग बिना भी सिद्ध हुए।
उन सबको वंदूं ढाई द्वीप, दो समुद्र से जो सिद्ध हुए।।३।।

मति श्रुत से केवलज्ञान प्राप्त, या तीन ज्ञान या चार सहित।
केवलज्ञानी हो सिद्ध हुए, पांचों संयम या चार सहित।।
संयम समकित औ ज्ञान आदि, से च्युत हो पुनि ग्रह सिद्ध हुए।
जो संयम समकित ज्ञान आदि, से बिना पतित हो सिद्ध हुए।।४।।

साहरणा-साहरणे, सम्मुग्घादेदरे य णिव्वादे।
ठिदपलियंक-णिसण्णे, विगयमले परमणाणगे वंदे।।५।।
पुंवेदं वेदंता, जे पुरिसा खवगसेढि-मारूढा।
सेसोदयेण वि तहाज्झाणु-वजुत्ता य ते हु सिज्झंति।।६।।
पत्तेयसयंबुद्धा, बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा।
पत्तेयं पत्तेयं, समये समयं पणिवदामि सदा।।७।।
पण-णव-दु-अट्ठवीसा-चउतिय-णवदी य दोण्णि पंचेव।।
वावण्णहीण-बियसय-पयडिविणासेण होंति ते सिद्धा।।८।।
अइसय-मव्वावाहं, सोक्ख-मणंतं अणोवमं परमं।
इंदियविसयातीदं, अप्पत्तं अच्चवं च ते पत्ता।।९।।
लोयग्ग-मत्थयत्था, चरम-सरीरेण ते हु किंचूणा।
गयसित्थ-मूसगब्भे, जारिस-आयार तारिसायारा।।१०।।

जो साधु संहरण सिद्ध बिना, संहरण प्राप्त हो सिद्ध हुए।
जो समुद्घात कर सिद्ध हुए, बिन समुद्घात भी सिद्ध हुए।।
खड्गासन और पर्यंकासन से, कर्म नाश कर सिद्ध हुए।
उन परम ज्ञानयुत सिद्धों को, मैं वंदूं त्रिकरण शुद्धि किये।।५।।

जो भाव पुरुषवेदी मुनिवर, वर क्षपक श्रेणी चढ़ सिद्ध हुए।
जो भाव नपुंसक वेदी भी, थे पुरुष ध्यान धर सिद्ध हुए।।
जो भाववेद स्त्री होकर, भी द्रव्य पुरुष अतएव उन्हें।
हो शुक्लध्यान सिद्धि जिससे, सब कर्म नाश कर सिद्ध बने।।६।।

प्रत्येक बुद्ध और स्वयंबुद्ध, औ बोधित बुद्ध सुसिद्ध बनें।
उन सबको पृथक्-पृथक् प्रणमूँ, औ एक साथ भी नमूँ उन्हें।।७।।

पण नव दो अट्ठाईस चार, तेरानवे दो औ पांच प्रकृति।
इक सौ अड़तालिस प्रकृति नाश, सब सिद्ध हुए प्रणमूं नित प्रति।।८।।

जो अतिशय अव्याबाध सौख्य, और अनंत अनुपम परम कहा।
इंद्रिय विषयों से रहित, पूर्व, अप्राप्त, ध्रौव्य को प्राप्त किया।।९।।

लोकाग्रशिखर पर स्थित वे, अंतिम तनु से किंचित् कम हैं।
गल गया मोम सांचे अंदर, आकार सदृश आकृति धर हैं।।१०।।

जर-मरण-जम्मरहिया, ते सिद्धा मम सुभत्ति-जुत्तस्स।
दिंतु वरणाण-लाहं, बुहयण-परिपत्थणं परमसुद्धं।।११।।
किच्चा काउस्सग्गं, चउरट्ठय-दोसविरहियं सुपरिसुद्धं।
अइभत्ति-संपउत्तो, जो वंदइ लहु लहइ परमसुहं।।१२।।

अंचलिका **—इच्छामि भंते! सिद्धभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविह-कम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद- वट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां........श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर संस्कृत श्रुतभक्ति या प्राकृत श्रुतभक्ति पढ़ें।)

वे जन्म मरण औ जरा रहित, सब सिद्ध भक्ति से नुति उनको।
बुधजन प्रार्थित और परम शुद्ध, वर ज्ञानलाभ देवो मुझको।।११।।
बत्तिस दोषों से रहित शुद्ध, जो कायोत्सर्ग विधी करके ।
अतिभक्तीयुत वंदन करते, वे तुरतहिं परम सौख्य लभते।।१२।।

अंचलिका (चौबोल छंद)-

हे भगवन् ! श्री सिद्ध भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूं, जो सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।
अठविध कर्मरहित प्रभु ऊर्ध्वलोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयम सिद्ध चरितसिध जो।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूं, वंदूं नमूं भक्ति युक्ता।।
दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधि मरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां........श्रुतभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर संस्कृत श्रुतभक्ति पद्यानुवाद या प्राकृत श्रुतभक्ति पद्यानुवाद पढ़ें।)

प्राकृत श्रुतभक्ति

सिद्धवरसासणाणं, सिद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं।
काऊण णमुक्कारं, भत्तीए णमामि अंगाइं।।१।।
आयारं सुद्दयणं, ठाणं समवाय विहाय-पण्णत्ती।
णाणाधम्म-कहाओ, उवासयाणं च अज्झयणं।।२।।
वंदे अंत-यड-दसं, अणुत्तर-दसं च पण्हवायरणं।
एयारसमं च तहा, विवायसुत्तं णमंसामि।।३।।
परियम्म-सुत्त पढमा-णुओय-पुव्वगय-चूलिया चेव।
पवरवर-दिट्ठिवादं, तं पंचविहं पणिवदामि।।४।।
उप्पायपुव्व-मग्गाय-णीय वीरियत्थिणत्थि य पवादं।
णाणा-सच्चपवादं, आदा-कम्मप्पवादं च ।।५।।
पच्चक्खाणं विज्जा-णुवाय कल्लाणणाम-वरपुव्वं।
पाणावायं किरिया-विसाल-मथ लोयबिंदु-सारसुदं।।६।।
दस चउदस अट्ठट्ठारस बारस तह य दोसु पुव्वेसु।
सोलह वीसं तीसं, दसमम्मि य पण्णरसवत्थू।।७।।

***प्राकृत श्रुतभक्ति* (शंभु छंद-पद्यानुवाद)**

जिनका वर शासन जग प्रसिद्ध, जो कर्मचक्र से रहित सिद्ध।।
उनको कर नमस्कार भक्त्या, द्वादश अंगों को नमूं नित्य।।१।।
आचार सूत्रकृत स्थान अंग, समवाय व व्याख्याप्रज्ञप्ती।
है ज्ञातृधर्मकथनांग छठा, औ उपासकाध्ययनांग कृती।।२।।
अंतःकृत्दश औ अनुत्तरोपपाददशक हैं अंगज्ञान।
है प्रश्न व्याकरण विपाकसूत्र, इन ग्यारह अंगों को प्रणाम।।३।।
परिकर्मसूत्र प्रथमानुयोग, पूर्वगत चूलिका पंचविधा।
इन युत बारहवां दृष्टिवाद, है अंग उसे प्रणमूं त्रिविधा।।४।।
उत्पादपूर्व अग्रायणीय, औ वीर्य अस्तिनास्ति प्रवाद।
ज्ञानप्रवाद सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद कर्मप्रवाद।।५।।
औ प्रत्याख्यान पूर्व विद्यानुवाद कल्याण नाम पूरब।
जो प्राणवाद किरिया विशाल, औ लोकविंदुसार पूरब।।६।।
दश चौदह आठ अठारह औ, बारह बारह सोलह व बीस।
हैं तीस व पंद्रह शेष चार, में दश दश वस्तू श्रुत प्रणीत।।७।।

एदेसिं पुव्वाणं जावदियो वत्थुसंगहो भणियो।
सेसाणं पुव्वाणं, दसदसवत्थू पणिवदामि।।८।।
एक्केक्कम्मि य वत्थू, वीसं वीसं य पाहुडा भणिया।
विसम-समाविय वत्थू, सव्वे पुण पाहुडेहि समा।।९।।
पुव्वाणं वत्थुसयं, पंचाणवदी हवंति वत्थूओ।
पाहुड तिण्णिसहस्सा, णवय-सया चउदसाणं पि।।१०।।
एवमए सुदपवरा, भत्तीराएण संथुया तच्चा।
सिग्घं मे सुदलाहं, जिणवर-वसहा पयच्छंतु।।११।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अंगोवंग-पइण्णए पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगयचूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।**

चौदह पूर्वों में वस्तुनाम, अधिकारों की संख्या क्रम से।
इन पूर्वों की जितनी वस्तू, उन सबको प्रणमूं भक्ति से।।८।।
एक एक वस्तु में बीस-बीस, प्राभृत माने आचार्यों ने।
वस्तू तो विषम व सम भी हैं, प्राभृत सब संख्या में मानें।।९।।
चौदह पूर्वों की एक शतक, पंचानवे वस्तू होती हैं।
सब प्राभृत संख्या तीन सहस, नव सौ पूर्वों की होती हैं।।१०।।
दोहा- इस विधि भक्ति राग से, स्तवन किया श्रुत शास्त्र।
जिनवर वृषभ मुझे तुरत, देवें श्रुत का लाभ।।११।।

***अंचलिका* (चौबोल छंद)-**

हे भगवन्! श्रुत भक्ती कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, आंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्रस्तव स्तुति, अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूँ, वंदूं नमूं भक्ति युत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊँ झटिति से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां......चारित्र-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य, पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर संस्कृत या प्राकृत चारित्रभक्ति पढ़ें।)

प्राकृत चारित्रभक्ति

तिलोए सव्वजीवाणं, हिदं धम्मोवदेसिणं।
वड्ढमाणं महावीरं, वंदित्ता सव्ववेदिणं।।१।।
घादिकम्म-विघादत्थं, घादिकम्म-विणासिणा।
भासियं भव्वजीवाणं, चारित्तं पंचभेददो।।२।।
सामाइयं तु चारित्तं, छेदोवट्ठावणं तहा।
तं परिहारविसुद्धिं च, संजमं सुहुमं पुणो।।३।।
जहाखादं तु चारित्तं, तहाखादं तु तं पुणो।
किच्चाहं पंचहाचारं, मंगलं मलसोहणं।।४।।
अहिंसादीणि उत्ताणि, महव्वयाणि पंच य।
समिदीओ तदो पंच, पंचइंदिय-णिग्गहो।।५।।

प्राकृत चारित्रभक्ति

शंभुछंद (पद्यानुवाद)-

त्रिभुवन के सब जीवों के, हितकर्ता सुधर्म उपदेशक जो।
वंदन करके श्री वर्धमान, महावीर सर्ववेदी उनको।।१।।

भाषित जो घाति कर्मनाशक, से घातिकर्म के नाश हेतु।
वह चारित पांच भेदयुत है, वह भव्य जनों के मुक्ति हेतु।।२।।

सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धी चारित हैं।
चौथा है सूक्ष्म सांपराय, ये परंपरा शिवदायक हैं।।३।।

जो पंचम यथाख्यात चारित, या तथाख्यात सब मंगलकर।
मल शोधनकर इन पांचों को, धारण कर पाऊँ सौख्य प्रवर।।४।।

महाव्रत हैं पांच अहिंसादी, ईर्यादी समिती पांच कहीं।
इंद्रिय निग्रह हैं पांच तथा, छह आवश्यक की क्रिया कहीं।।५।।

छब्भेयावास भूसिज्जा, अण्हाणत्त-मचेलदा।
लोयत्तं ठिदिभुत्तिं च, अदंतधावण-मेव य।।६।।
एयभत्तेण संजुत्ता, रिसिमूलगुणा तहा।
दसधम्मा तिगुत्तीओ, सीलाणि सयलाणि च।।७।।
सव्वेवि य परीसहा, उत्तुत्तर-गुणा तहा।
अण्णे वि भासिया संता, तेसिं हाणिं मए कया।।८।।
जइ राएण दोसेण, मोहेणण्णादरेण वा।
वंदित्ता सव्वसिद्धाणं, संजदा सा मुमुक्खुणा।।९।।
संजदेण मए सम्मं, सव्वसंजमभाविणा।
सव्वसंजम-सिद्धीओ, लब्भदे मुत्तिजं सुहं।।१०।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! चारित्तभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मण्णाणुज्जोयस्स, सम्मत्ताहिट्ठियस्स सव्वपहाणस्स, णिव्वाण-मग्गस्स, कम्मणिज्जर-फलस्स, खमाहारस्स, पंचमहव्वय-संपुण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पंचसमिदि-जुत्तस्स णाणज्झाणसाहणस्स, समयाइव-पवेसयस्स, सम्म-**

भूशयन अस्नान अचेलकता, कचलोच खड़े भोजन करना।
नहिं दंतधावन औ एक भक्त, ऋषि के ये मूलगुण नित धरना।।६।।
दशधर्म त्रिगुप्ती सकलशील, औ सर्व परीषह जय माने।
ये उत्तरगुण कहलाते हैं, औ अन्य बहुत विध भी मानें।।७।।
मेरे से मूलगुणों में या, उत्तर गुण में जो हानि हुई।
यदि राग द्वेष या मोह, अनादर से भी जो कुछ हानि हुई।।८।।
इन व्रत में जो अतिक्रम व्यतिक्रम, अतिचार अनाचार हुए सभी।
मैं सब सिद्धों को वंदूं नित, इन दोष विशोधन हेतु अभी।।९।।
सब संयम की भावना लिये, मैं संयत तथा मुमुक्षु हूँ।
मुझको सब संयम सिद्धि मिले, मैं मुक्ती सुख का इच्छुक हूँ।।१०।।

अंचलिका-दोहा-

भगवन्! चरित्र भक्ति अरु, कायोत्सर्ग महान्।
कर उसकी आलोचना, करना चहूँ प्रधान।।

चौबोल छंद-

सम्यग्ज्ञान युक्त सम्यक् से सहित सभी में श्रेष्ठ प्रधान।
मोक्षमार्गमय कर्म निर्जरा, के फलरूप क्षमा आधार।।

चारित्तस्स, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां.........योगि-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक, ९ जाप्य पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर संस्कृत या प्राकृत योगिभक्ति पढ़ें।)

प्राकृत योगिभक्ति

थोस्सामि गुणधराणं, अणयाराणं गुणेहिं तच्चेहिं।
अंजलि-मउलिय-हत्थो, अभिवंदंतो सविभवेण।।१।।
सम्मं चेव य भावे, मिच्छाभावे तहेव बोधव्वा।
चइऊण मिच्छभावे, सम्मम्मि उवट्ठिदे वंदे।।२।।
दोदोसविप्पमुक्के, तिदंडविरदे तिसल्ल-परिसुद्धे।
तिण्णिय-गारव-रहिये, तियरण-सुद्धे णमंसामि।।३।।

पंचमहाव्रत सुयुत पंच, समिति अरु तीन गुप्ति से युक्त।
ज्ञानध्यान का साधक समता, से संयुत उत्तम चारित।।
उस चरित्र को नितप्रति अर्चूं, पूंजू वंदूं नमूं महान।
शुद्ध भाव से भक्ती करके, पाऊँ पंचम चरित प्रधान।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधि मरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

प्राकृत योगिभक्ति

शंभु छंद (पद्यानुवाद)-

गुणधर अनगारों की तात्त्विक, गुण से स्तुति मैं करता हूँ।
करमुकुलित अंजलि जोड़ विभव, निजयुत अभिवंदन करता हूँ।।१।।
सम्यक्त्वभाव मिथ्यात्वभाव, इन दो में स्थित दो विध मुनि हैं।
मिथ्यात्व छोड़ इक समकित में, स्थित उन मुनि को वंदन है।।२।।
जो राग द्वेष दो दोष रहित, त्रयदण्ड रहित त्रय शल्य रहित।
त्रय गारवमुक्त साधु उनको, त्रिकरणशुद्धी से वंदन नित।।३।।

चउविह-कसायमहणे, चउगइ-संसारगमण-भयभीए।
पंचासव-पडिविरदे, पंचिंदिय-णिज्जिदे वंदे।।४।।
छज्जीव-दयावण्णे, छडायदण-विवज्जिदेसमिदभावे।
सत्तभय-विप्पमुक्के, सत्ता-णभयंकरे वंदे।।५।।
णट्ठट्ठ - मयट्ठाणे, पणट्ठ - कम्मट्ठ - णट्ठसंसारे।
परमट्ठ - णिट्ठियट्ठे, अट्ठगुणड्ढीसरे वंदे।।६।।
णवबंभचेरगुत्ते, णवणय-सब्भावजाणगे वंदे।
दहविधम्मट्ठाई, दससंजमसंजदे वंदे।।७।।
एयारसंग-सुदसायर-पारगे बारसंग-सुदणिउणे।
बारसविहतव-णिरदे, तेरस-किरियादरे वंदे।।८।।
भूदेसु दयावण्णे, चउदस चउदस सुगंथ-परिसुद्धे।
चउदसपुव्व-पगब्भे, चउदस-मलवज्जिदे वंदे।।९।।
वंदे चउत्थ-भत्तादि-जावछम्मास-खवण-पडिवण्णे।
वंदे आदावंते, सूरस्स य अहिमुहट्ठिदे सूरे।।१०।।

चउविध कषाय का मथन करें, चउगति संसार गमन भययुत।
पांचों आस्रव से विरत पांच, इंद्रिय विजयी को वंदन नित।।४।।
षट्काय जीव की दयायुक्त, छह अनायतन वर्जित प्रशांत।
सातों भय मुक्त सत्त्व को नित, दें अभयदान मैं नमूं शांत।।५।।
आठों मद शून्य आठ कर्मों, को नाश नष्ट संसार किया।
परमार्थ सर्वकृतकार्य अष्ट-गुण ऋद्धीश्वर को नमन किया।।६।।
नव ब्रह्मचर्य से गुप्त नवों, नय के ज्ञाता को वंदूं मैं।
दशविध धर्मों में रत दशविध, संयम युत संयत वंदूं मैं।।७।।
श्रुत ग्यारह अंग अब्धि पारग, श्रुत द्वादशांग में निपुण रहें।
द्वादश विध तप में निरत क्रिया, तेरह में आदर नमूं उन्हें।।८।।
चौदह भूतों में दया युक्त, चौदह अंतर परिग्रह विमुक्त।
चौदह पूर्वों के ज्ञानी को, वंदूं जो चौदह मल विमुक्त।।९।।
उपवास एक से लेकर छह, महीने तक करते उन्हें नमूं।
दिन आदि अंत रवि के सन्मुख, स्थित तप करते उन्हें नमूं।।१०।।

बहुविहपडिमट्ठाई, णिसिज्ज-वीरासणेक्कवासी य।
अणिट्ठीव - कंडुवदीवे, चत्तदेहे य वंदामि।।११।।
ठाणी मोणवदीए, अब्भोवासी य रूक्खमूली य।
धुदकेसमंसुलोमे, णिप्पडियम्मे य वंदामि।।१२।।
जल्ल-मल्ल-लित्तगत्ते, वंदे कम्ममल-कलुसपरिसुद्धे।
दीहणह-मंसुलोमे, तवसिरिभरिए णमंसामि।।१३।।
णाणोदया-हिसित्ते, सीलगुण-विहूसिए तवसुगंधे।
ववगयराय-सुदड्ढे सिवगइ-पहणायगे वंदे।।१४।।
उग्गतवे दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे य घोरतवे।
वंदामि तवमहंते, तवसंजम - इड्ढिसंजुत्ते।।१५।।
आमोसहिए खेलोसहिए जल्लोसहिए तवसिद्धे।
विप्पोसहिए सव्वोसहिए वंदामि तिविहेण।।१६।।
अमय-महु-खीर-सप्पिसवीए अक्खीण-महाणसे वंदे।
मणबलि-वचबलि-कायबलिणो य वंदामि तिविहेण।।१७।।

जो बहुविध प्रतिमायोग तथा, पर्यंक वीरासन आदि धरें।
नहिं थूकें नहिं खुजलावें जो, तन निर्मम उनका नमन करें।।११।।
स्थित ध्यानी मौनी करते, अभ्रावकाश तरुमूल ध्यान।
शिर दाढ़ी केशलोंच कर तनु, निष्प्रतिकारी उनको प्रणाम।।१२।।
जो जल्लमल्ल से लिप्त गात्र, फिर भी स्वकर्ममलकलुष शुद्ध।
नख दाढ़ी केश बढ़े जिनके, तप लक्ष्मीभृत उन नमूं नित्य।।१३।।
जो ज्ञान नीर अभिषिक्त शीलगुण, भूषित तप से सुरभित हैं।
रागादिरहित श्रुतपूर्ण मोक्ष गति, पथनेता को मम नति है।।१४।।
जो उग्रतपस्या दीप्तीतप, तपतप्त महातप घोरतपी।
तप में महंत तप संयम की, ऋद्धी युत उनको नमूं अभी।।१५।।
आमौषधि क्ष्वेलौषधि जल्लौषधि, विप्रुष औषधि सर्वौषधि।
तपसिद्धि पांच औषधी ऋद्धि, इन युत मुनि को वंदूं त्रयविध।।१६।।
अमृत मधु दुग्ध व घी स्रावी, अक्षीण महानस को वंदूं।
मनबली वचनबलि कायबली, मैं त्रिविध सभी मुनि को वंदूं।।१७।।

वरकुट्ठ-बीयबुद्धी पदाणुसारीय भिण्णसोदारे।
उग्गह-ईह-समत्थे, सुत्तत्थ-विसारदे वंदे।।१८।।
आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणि-मणणाणि-सव्वणाणीय।
वंदे जगप्पदीवे, पच्चक्ख - परोक्खणाणी य।।१९।।
आयास-तंतु-जल-सेढिचारणे जंघचारणे वंदे।
विउवण-इड्ढिपहाणे, विज्जाहर-पण्णसवणे य।।२०।।
गइचउरंगुल-गमणे, तहेव फलफुल्ल-चारणे वंदे।
अणुवम - तवमहंते, देवासुरवंदिदे वंदे।।२१।।
जियभय-जियउवसग्गे, जियइंदिय-परीसहे जियकसाए।
जियराय-दोसमोहे, जियसुह-दुक्खे णमंसामि।।२२।।
एवं मए भित्थुया, अणयारा रागदोसपरिसुद्धा।
संघस्स वरसमाहिं, मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु।।२३।।

अंचलिका **—इच्छामि भंते! योगिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्ज-दीव-दोसमुद्देसु पण्णारस-कम्मभूमिसु आदावण-रुक्खमूल-**

वर कोष्ठ बीज बुद्धी, पद अनुसारी संभिन्न श्रोतृ ऋद्धी।
अवग्रह ईहा में समर्थ मुनि, सूत्रार्थ विशारद नमूं सभी।।१८।।
मति श्रुत ज्ञानी अवधी ज्ञानी, मनपर्ययज्ञानि सर्वज्ञानी।
मैं वंदूं जग प्रद्योतक मुनि, प्रत्यक्ष परोक्ष सभी ज्ञानी।।१९।।
आकाश तंतु जल श्रेणी के, चारण जंघाचरण वंदूं।
विक्रिया ऋद्धियुत विद्याधर, मुनि प्रज्ञाश्रमण उन्हें वंदूं।।२०।।
भू से चतुरंगुल अधर चलें, फल फूलों पर चलते जो यति।
अनुपम तप से महनीय देव, असुरों से वंदित उन्हें नती।।२१।।
भयजित् उपसर्ग जयी इंद्रिय, परिषह विजयी मुनि कषायजित्।
जितरागद्वेष जितमोह दुःखसुखजयी उन्हें प्रणमूँ नितप्रति।।२२।।

दोहा- रागद्वेषगत साधु सब, मुझसे स्तुति प्राप्त।
संघ को मुझे समाधि दें, करें दुःख का नाश।।२३।।

अंचलिका (चौबोल छंद)-

हे भगवन् ! इस योग भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।

अब्भोवास-ठाण-मोणवीरासणेक्क-पास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्ख-खवणादियोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां.........निर्वाण-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् कृतिकर्म विधिपूर्वक ९जाप्य करके संस्कृत या प्राकृत निर्वाण भक्ति पढ़ें। निर्वाण भक्ति पढ़ते समय निर्वाणक्षेत्र के मंदिर, टोंक आदि की तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए।)

प्राकृत निर्वाण भक्ति

अट्ठावयम्मि उसहो, चंपाए वासुपुज्ज-जिणणाहो।
उज्जंते णेमिजिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो।।१।।
वीसं तु जिणवरिंदा, अमरासुर-वंदिदा धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।२।।

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
आतापन तरुमूलयोग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।
मौन करें वीरासन, कुक्कुट, आसन एक पार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास उपवास, आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूं।
पूंजूं वंदूं नमस्कार भी, करूं सतत वंदना करूं।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

प्राकृत निर्वाण भक्ति का पद्यानुवाद

चाल-हे दीन बन्धु............

वृषभेश गिरिकैलाश से निर्वाण पधारे। चंपापुरी से वासुपूज्य मुक्ति सिधारे।।
नेमीश ऊर्जयंत से निर्वाण गये हैं। पावापुरी से वीर परमधाम गये हैं।।१।।
इंद्रादिवंद्य बीस जिनेश्वर करम हने। सम्मेदगिरि शिखर से शिव गये नमूँ उन्हें।।
इन चार बीस जिन की सदा वंदना करूं। निर्वाण सौख्य प्राप्ति हेतु अर्चना करूं।।२।।

सत्तेव य बलभद्दा, जदुव-णरिंदाण अट्ठकोडीओ।
गजपंथे गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।३।।
वरदत्तो य वरंगो, सायरदत्तो य तारवरणयरे।
आहुट्ठयकोडीओ, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।४।।
णेमिसामी पज्जुण्णो, संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो।
बाहत्तरकोडीओ, उज्जंते सत्तसया सिद्धा।।५।।
रामसुआ विण्णि जण्णा, लाड-णरिंदाण पंचकोडीओ।
पावागिरिवर-सिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।६।।
पंडुसुआ तिण्णि जणा, लाड-णरिंदाण अट्ठकोडीओ।
सित्तुंजय-गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।७।।
रामहणू-सुग्गीवो, गवय-गवक्खो व णीलमहणीलो।
णव-णवदी-कोडीओ, तुंगीगिरि-णिव्वुदे वंदे।।८।।
अंगाणंगकुमारा[१], विक्खा-पंचद्धकोडि-रिसिसहिया।
सुवण्णगिरि-मत्थयत्थे[२], णिव्वाण गया णमो तेसिं।।९।।

बलभद्र सात और आठ कोटि बताए। यादव नरेन्द्र आर्ष मे हैं साधु कहाये।।
गजपंथगिरिशिखर से ये निर्वाण गये हैं। इनको नमूं ये मुक्ति में निमित्त कहे हैं।।३।।
वरदत्त औ वरांग सागरदत्त मुनिवरा। ऋषि और साढ़े तीन कोटि भव्य सुखकरा।।
ये तारवरनगर से मुक्तिधाम पधारे। मैं नित्य नमूं मुझको भी संसार से तारें।।४।।
श्री नेमिनाथ औ प्रद्युम्न शंभु कुमारा। अनिरुद्धकुमर पा लिया भवदधि का किनारा।।
मुनिराज बाहत्तर करोड़ सात सौ कहे। ये ऊर्जयंत गिरि से सभी मुक्ति को लहें।।५।।
दो पुत्र रामचंद्र के औ लाडनृपादी। ये पांचकोटि साधुवृंद निज रसास्वादी।।
ये पावागिरीवर शिखर से मोक्ष गये हैं। भविवृंद के निर्वाण में ये हेतु कहे हैं।।६।।
जो पांडुपुत्र तीन और द्रविडनृपादी। ये आठ कोटि साधु परम समरसास्वादी।।
शत्रुंजयाद्रि शिखर से ये सिद्ध हुए हैं। इनको नमूं ये सिद्धि में निमित्त हुए हैं।।७।।
श्रीराम हनूमान औ सुग्रीव मुनिवरा। जो गव गवाख्य नील महानील सुखकरा।।
निन्यानवे करोड़ तुंगीगिरि से शिव गये। उन सबकी वंदना से सर्व पाप धुल गये।।८।।
जो नंग औ अनंग दो कुमार हैं कहे। वे साढ़े पांच कोटि मुनि सहित शिव गये।
सोनागिरी शिखर है सिद्धक्षेत्र इन्हों का। इनको नमूं इन भक्ति भवसमुद्र में नौका।।९।।

---

१. णंगाणंग....इति पाठांतरं। २. सुवण्णवरगिरिसिहरे इति पाठांतरं।

दसमुहरायस्स सुआ, कोडी पंचद्ध-मुणिवरे सहिया।
रेवाउहयम्मि[१] तीरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१०।।
रेवाणइए तीरे, पच्छिम-भायम्मि सिद्धवरकूडे।
दो चक्की छह कप्पे, आहुट्ठय-कोडिणिव्वुदे वंदे।।११।।
वडवाणी-वरणयरे, दक्खिण-भायम्मि चूलगिरि-सिहरे।
इंदजिय-कुंभयण्णो, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१२।।
पावागिरिवर-सिहरे, सुवण्ण-भद्दाइ मुणिवरा चउरो।
चेलणाणई-तडग्गे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१३।।
फलहोडी-वरगामे, पच्छिम-भायम्मि दोणगिरिसिहरे।
गुरुदत्ताइमुणिंदा, णिव्वाण गया णमा तेसिं।।१४।।
णायकुमार-मुणिंदो, वालि-महावालि चेव अज्झेया।
अट्ठावय-गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१५।।
अच्चलपुर-वरणयरे, ईसाणभाए मेढगिरि-सिहरे।
आहुट्ठय-कोडीओ, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१६।।

दशमुखनृपति के पुत्र आत्म तत्त्व के ध्याता। जो साढ़े पांच कोटि मुनि सहितविख्याता।।
रेवा नदी के तीर से निर्वाण पधारे। मैं नित्य नमूं मुझको भवोदधि से उबारें।।१०।।
चक्रीश दो दस कामदेव साधुपद धरा।मुनि साढ़े तीन कोटि मुक्तिराज्य को वरा।।
रेवा नदी के तीर अपरभाग में सही। मैं सिद्धवरसुकूट को वंदू जो शिवमही।।११।।
बड़वानि वरनगर में दक्षिणी सुभाग में। है चूलगिरिशिखर जो सिद्धक्षेत्र नाम में।।
श्री इन्द्रजीत कुंभकरण मोक्ष पधारे।मैं नित्य नमूं उनको सकल कर्म विडारे।।१२।।
पावागिरी नगर में चेलनानदी तटे। मुनिवर सुवर्णभद्र आदि चार शिव बसे।।
निर्वाण भूमि कर्म का निर्वाण करेगी। मैं नित्य नमूं मुझको परम धाम करेगी।।१३।।
फलहोड़ी श्रेष्ठ ग्राम में पश्चिम दिशा कही। श्री द्रोणगिरि शिखर है परमपूत भू सही।।
गुरुदत्त आदि मुनिवरेन्द्र मृत्यु के जयी। निर्वाण गये नित्य नमूं पाऊँ शिव मही।।१४।।
श्री बालि महाबालि नागकुमर आदि जो। अष्टापदाद्रि शिखर से निर्वाण प्राप्त जो।।
उनको नमूं वे कर्म अद्रि चूर्ण कर चुके। वे तो अनंत गुण समूह पूर्ण कर चुके।।१५।।
अचलापुरी ईशान में मेढ़ागिरी कही। मुनिराज साढ़े तीन कोटि, उनकी शिव मही।।
मुक्तागिरी-निर्वाण भूमि नित्य नमूं मैं। निर्वाण प्राप्ति हेतु अखिल दोष वमूं मैं।।१६।।

१. रेवाउहयतडग्गे इति पाठांतरं।

वंसत्थलम्मि णयरे, पच्छिमभायम्मि कुन्थगिरिसिहरे।
कुलदेसभूसणमुणी, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१७।।
जसहर-रायस्स सुआ, पंचसया कलिंगदेसम्मि।
कोडिसिलाए कोडिमुणी, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१८।।
पासस्स समवसरणे, [१]गुरुदत्त-वरदत्त-पंचरिसि-पमुहा।
रिस्सिंदी गिरिसिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं।।१९।।
जे जिणु जित्थु तत्था, ते दु गया णिव्वुदिं परमं।
ते वंदामि य णिच्चं, तियरणसुद्धो णमंसामि।।२०।।
सेसाणं तु रिसीणं, णिव्वाणं जम्मि जम्मि ठाणम्मि।
ते हं वंदे सव्वे, दुक्खक्खय-कारणट्ठाए।।२१।।
पासं तह अहिणंदण, णायद्दहि मंगलाउरे वंदे।
अस्सारम्मे पट्टणि, मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि।।२२।।
बाहूबलि तह वंदमि, पोदणपुर हत्थिणापुरे वंदे।
संती कुंथुव अरिहो, वाराणसीए सुपास पासं च।।२३।।

वंशस्थली नगर के अपरभाग में कहा। कुंथलगिरी शिखर जगत में पूज्य हो रहा।।
श्री कुलभूषण औ देशभूषण मुक्ति गये हैं। मैं नित्य नमूं उनको वे कृतकृत्य हुए हैं।।१७।।
जसरथनृपति के पुत्र और पांच सौ मुनी। निर्वाण गए हैं कलिंग देश से सुनी।।
मुनिराज एक कोटि कोटिशिला से कहे। निर्वाण गए उनको नमूं दुःख ना रहे।।१८।।
श्रीपार्श्व के समवसरण में जो प्रधान थे। वरदत्त आदि पांच ऋषी गुण निधान थे।।
रेंसिदिगिरि शिखर से वे निर्वाण पधारे। मैं उनको नमूं वे सभी संकट को निवारें।।१९।।
जिस-जिस पवित्र थान से जो-जो महामुनी। निर्वाण परम धाम गये हैं अतुलगुणी।।
मैं उन सभी की नित्य भक्ति वंदना करूं। त्रिकरण विशुद्ध कर नमूं शिवाँगना वरूं।।२०।।
मुनिराज शेष जो असंख्य विश्व में कहे। जिस जिस पवित्र थान से निर्वाण को लहें।।
उन साधुओं की क्षेत्र की भी वंदना करूं। सम्पूर्ण दुःखक्षय निमित्त प्रार्थना करूं।।२१।।
श्री पार्श्वनागद्रह में कहे उनको मैं नमूं। श्री मंगलापुरी में अभिनन्दनं नमूं।।
पट्टण सुआशारम्य में मुनिसुव्रतेश को। है बार-बार वंदना इन श्री जिनेश को।।२२।।
पोदनपुरी में बाहुबली देव को नमूं। श्री हस्तिनापुरी में शांति कुंथु अर नमूं।।
वाराणसी में श्री सुपार्श्व पार्श्व जिन हुए। उनकी करूं मैं वंदना वे सौख्यकर हुए।।२३।।

१. 'सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच 'इति पाठांतरं'।

महुराए अहिछित्ते, वीरं पासं तहेव वंदामि।
जंबुमुणिंदो वंदे, णिव्वुइपत्तोवि जंबुवणगहणे।।२४।।
पंचकल्याणठाणइ, जाणिवि संजाद-मच्चलोयम्मि।
मणवयणकायसुद्धो, सव्वे सिरसा णमंसामि।।२५।।
अग्गलदेवं वंदमि, वरणयरे णिवणकुंडली वंदे।
पासं सिरिपुरि वंदमि, लोहागिरि-संखदीवम्मि।।२६।।
गोम्मटदेवं वंदमि, पंचसयं धणुहदेहउच्चं तं।
देवा कुणंति वुट्ठी, केसर-कुसुमाण तस्स उवरिम्मि।।२७।।
णिव्वाणठाण जाणिवि, अइसय-ठाणाणि अइसये सहिया।
संजाद मिच्चलोए, सव्वे सिरसा णमंसामि।।२८।।
जो जण पढइ तियालं, णिव्वुइ-कंडंपि भावसुद्धीए।
भुंजदि णरसुरसुक्खं, पच्छा सो लहइ णिव्वाणं।।२९।।

अंचलिका **—इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं इमम्मि अवसप्पिणीए चउत्थ-समयस्स पच्छिमे भाए**

मथुरा में श्रीवीर को नाऊँ सुभाल मैं। अहिच्छत्र में श्री पार्श्व को वंदूं त्रिकाल मैं।।
जम्बूमुनीन्द्र जम्बूविपिन गहन में आके। निर्वाण प्राप्त हुए नमूं शीश झुकाके।।२४।।
जो पंचकल्याणक पवित्र भूमि कही हैं। इस मर्त्यलोक में महान तीर्थ सही हैं।।
मनवचसुकायशुद्धि सहित शीश नमा के। मैं नित्य नमस्कार करूं हर्ष बढ़ाके।।२५।।
श्री वरनगर में पूज्य अर्गलदेव को वंदूं। उनके निकट श्री कुंडली जिनेश को वंदूं।।
शिरपुर में पार्श्वनाथ को मैं भाव से नमूं। लोहागिरी के शंखदेव नेमि को नमूं।।२६।।
जो पांच सौ पचीस धनुष तुंग तनु धरें। केशर कुसुम की वृष्टि जिन पे देवगण करें।।
उन गोमटेश देव की मैं वंदना करूं। निज आत्म सौख्य प्राप्ति हेतु अर्चना करूं।।२७।।
निर्वाणथान मध्यलोक में भी जो कहे। अतिशय भरे अतिशय स्थान जगप्रथित रहें।।
इन सिद्धक्षेत्र सर्व को ही शीश झुकाके। मैं बार बार नमन करूं ध्यान लगाके।।२८।।
जो भव्य जीव भावशुद्धि सहित नित्य ही। निर्वाणकांड को पढ़ें त्रिकाल में सही।।
चक्रीश इन्द्रपद के वे सुखानुभव करें। पश्चात् परमानंदमय निर्वाणपद वरें।।२९।।

अंचलिका (कुसुमलता छंद)

भगवन्! परिनिर्वाण भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रुचि से।।

आहुट्ठमासहीणे वासचउक्कमि सेसकम्मि, पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भयवदो महदिमहावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोयिसिय-कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति परिणिव्वाण-महाकल्लाणपुज्जं करेंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां......... शांतिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु वृषभदेवजिननिर्वाणकल्याणकवंदनाक्रियायां.......... सिद्धश्रुत-चारित्रयोगिनिर्वाणशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोष-विशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

इस अवसर्पिणि में चतुर्थ शुभ, काल उसी के अंतिम में।
तीन वर्ष अरु आठ मास, इक पक्ष शेष था जब उसमें।।
पावानगरी में कार्तिक शुभ, मास कृष्ण चौदश तिथि में।
रात्रिअंत नक्षत्र स्वाति सह, उषाकाल की बेला में।।
वर्धमान भगवान् महति महावीर सिद्धि को प्राप्त हुए।
तीन लोक के भावन व्यंतर, ज्योतिष कल्पवासिगण ये।।
निज परिवार सहित चउविध सुर, दिव्य गंध दिव पुष्पों से।
दिव्यधूप दिव चूर्णवास औ, दिव्य स्नपन विधी करते।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार भी नित करते।
परिनिर्वाण महाकल्याणक, पूजा विधि रुचि से करते।।
मैं भी यहीं मोक्षकल्याणक, की नित ही अर्चना करूं।
पूजन वंदन करूं भक्ति से नमस्कार भी पुनः करूं।।
दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

विशेष-कदाचित् समयाभाव में लघु भक्तियाँ भी पढ़ सकते हैं। यदि गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान या निर्वाण क्षेत्रों की अथवा रामचन्द्र, हनुमान आदि के निर्वाण से पवित्र मांगीतुंगी आदि क्षेत्रों की वंदना कर रहे हों तो उस समय भी उपर्युक्त भक्तियों को पढ़ना चाहिए। समयाभाव में लघु भक्तियों को पढ़ने की विधि कहते हैं।

निर्वाणक्षेत्रवंदनाक्रिया (लघु)

नमोऽस्तु निर्वाणक्षेत्रवंदनायां.........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् पृ. ८ से लघु सामायिकदंडक, ९ जाप्य, पृ. ९ से लघु थोस्सामि पढ़कर लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।)

लघु सिद्धभक्ति

संसारचक्रगमनागतिविप्रमुक्तान् नित्यंजरामरणजन्मविकारहीनान् ।
देवेन्द्रदानवगणैरभिपूज्यमानान् सिद्धांस्त्रिलोकमहितान् शरणं प्रपद्ये।।१।।

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य।
सायारमणायारा लक्खणमेयं तु सिद्धाणं।।२।।
मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का।
मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदसंसारा।।३।।
अट्ठविहकम्मवियडा सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।४।।
सिद्धा णट्ठट्ठमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसब्भावा।
तिहुवणसिरसेहरया पसियंतु भडारया सव्वे।।५।।
गमणागमणविमुक्के विहडियकम्मट्ठपयडिसंघाए।
सासहसुहसंपत्ते ते सिद्धे वंदिमो णिच्चं।।६।।
जय मंगलभूदाणं विमलाणं णाणदंसणमयाणं।
तइलोयसेहराणं णमो सया सव्वसिद्धाणं।।७।।
सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।८।।
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि[१]।।९।।

१. क्रियाकलाप से।

अथवा-'तवसिद्धे' आदि एक श्लोक पढ़कर भी पृ. ७७ से ''इच्छामि भंते! सिद्धभत्ति'' इत्यादि अंचलिका पढ़ें।

नमोऽस्तु निर्वाणक्षेत्रवंदनायां..........श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर लघु श्रुतभक्ति पढ़ें।)

लघु श्रुतभक्ति

श्रुतमपि जिनवरविहितं गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम् ।
अंगांगभावभावित - मनंतविषयं नमस्यामि।

अथवा-

*(क्षेपकश्लोक पढ़कर पृ. १३ से 'इच्छामि भंते! सुदभत्ति......इत्यादि अंचलिका पढ़ें।)

नमोऽस्तु निर्वाणक्षेत्रवंदनायां......चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् दंडक, ९जाप्य, थोस्सामि पढ़कर लघु चारित्रभक्ति पढ़ें।)

लघु चारित्रभक्ति

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः।।१।।
शिवसुखफलदायी यो दयाछाययौद्धः शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः।।२।।

** क्षेपक श्लोकाः-*

बारह-अंगग्गिज्जा, विचलिय-मल-मूढ-दंसणुत्तिलया।
विविह-वर-चरण-भूसा, पसियउ सुय-देवया सुइरं[१]।।१।।

सतीं श्रुतस्कंधवने विहारिणी-मनेकशाखागहने सरस्वतीम् ।
गुरुप्रवाहेण जडानुकंपिना, स्तुवेऽभिनन्द्ये वनदेवतामिव[२]।।
नमस्तस्यै सरस्वत्यै विमलज्ञानमूर्तये।
विचित्रालोकयात्रेयं, यत्प्रसादात् प्रवर्तते[३]।।३।।

वंदे वागीश्वरीं नित्यं, जिनवक्त्राब्जनिर्गताम् ।
वाक्शुद्ध्यै नयसिद्ध्यै च, स्याद्वादामृतगर्भिणीम्[४]।।४।।

१. षट्खंडागम, पुस्तक १, पृ. ६। २. द्विसंधानकाव्य। ३. कातंत्ररूपमाला। ४. नियमसार प्राभृत।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय।।३।।
धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः।।
धर्मान्नास्त्यपरःसुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय।।४।।
धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तओ।
देवावि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो[१]।।५।।

अथवा-

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः।
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि।।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परैः
आचारं परमेष्ठिनोजिनपतेर्वीरं नमामो वयम् ।।

इच्छामि भंत्ते चारित्तभत्ति.......इत्यादि।

(पृ. ३१७ से अंचलिका पढ़ें।)

नमोऽस्तु निर्वाणक्षेत्रवंदनाक्रियायां........योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके लघु योगिभक्ति पढ़ें।)

लघु योगिभक्ति

योगीश्वरान् जिनान् सर्वान्, योगनिर्धूत-कल्मषान् ।
योगैस्त्रिभिरहं वंदे योगस्कंध - प्रतिष्ठितान् ।।१।।

अथवा-प्रावृट्काले इत्यादि पढ़ें।

इच्छामि भंत्ते! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं! अड्ढाइज्जदीवदो-समुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावण-रुक्खमूल-अब्भोवास-ठाणमोण वीरासणेक्कपास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्ख-खवणादिजोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि,वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु निर्वाणक्षेत्रवंदनाक्रियायां.......निर्वाणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके निर्वाणभक्ति पढ़ें।)

---

१. क्रियाकलाप से।

लघु निर्वाणभक्ति

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां, निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम् ।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः, संस्तोतु-मुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या।।१।।

इच्छामि भंत्ते! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं! इमम्मि अवसप्पिणीये चउत्थसमयस्स पच्छिमे भाये। आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि। पावाये णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो। तिसुवि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोयिसियकप्पवासियंत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति परिणिव्वाणमहाकल्लाणपुज्जं करेंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु निर्वाणक्षेत्रवंदनायां........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडकादि करके लघु शांतिभक्ति पढ़ें।)

लघु शांतिभक्ति

श्रीमत् पंचमसार्वभौम-पदवीं प्रद्युम्नरूपश्रियम् ।
प्राप्तः षोडश तीर्थकृत्त्वमखिलं त्रैलोक्यपूजास्पदम् ।।
यस्तापत्रयशांतितः स्वयमितः शांतिं प्रशान्तात्मनाम् ।
शांतिं यच्छति तं नमामि परमं शांतिं जिनं शांतये।।

अथवा-*

नमोऽस्तु निर्वाणक्षेत्रवंदनायां.........समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक आदि करके लघु समाधिभक्ति पढ़ें।)

---

*क्षेपक श्लोक-**

शांतिः शिरोधृतजिनेश्वरशासनानाम् ।
शांतिर्निरन्तरतपोऽभवभावितानाम् ।।
शांतिः कषायजयजृंभितवैभवानाम् ।
शांतिः स्वभावमहिमानमुपागतानाम् ।।१।।

लघु समाधिभक्ति

स्वात्माभिमुखसंवित्ति-लक्षणं श्रुतचक्षुषा।
पश्यन् पश्यामि देव त्वां, केवलज्ञानचक्षुषा।।

अथवा-

* क्षेपक श्लोक पढ़कर अंचलिका पढ़ें।

जीवंतु संयमसुधारसपानतृप्ता।
नंदंतु शुद्धसहसोदयसुप्रसन्नाः।।
सिद्ध्यंतु सिद्धिसुखसंगकृताभियोगाः।
तीव्रं तपंतु जगतां त्रितयेऽर्हदाज्ञाः।।२।।
तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः।
सन्तन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण।
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षुवर्गे।।३।।
शांतिः शं तनुतां समस्तजगतः संगच्छतां धार्मिकैः।
श्रेयः श्रीः परिवर्धतां नयधुरा धुर्यो धरित्रीपतिः।।
सद्विद्यारसमुद्‌गिरंतु कवयो नामाप्यघस्यास्तु मा।
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ।।४।।

***क्षेपक श्लोक-**

व्युत्सृज्य दोषान्निः शेषान्सद्ध्याने स्यात्तनूत्सृतौ।
सहेताप्युपसर्गोर्मीन् कर्मैवं भिद्यतेतरां।।१।।
ध्यानाशुक्षुणा विद्धे मनोरूत्विक्समाहितः।
स्वकर्मसमिधो भाव-सर्पिषा जुहुमोऽधुना।।२।।
अहमेवाहमित्यात्म-ज्ञानादन्यत्र चेतनां।
इदमस्मि करोमीद-मिदं भुंज इति क्षिपेत् ।।३।।
अहमेवाहमित्यन्त-र्जल्पसंपृक्तकल्मषां।
त्यक्त्वाऽवाग्गोचरं ज्योतिः, स्वयं पश्यामि शाश्वतम् ।।४।।
आद्यंतवर्जित-मशेष-विकल्पशून्यं।
रागादिदोषरहितं च विमुक्तदेहं।।

ऐसे ही केवलज्ञान आदि क्षेत्रों की वंदना करने में-

नमोऽस्तु केवलज्ञानक्षेत्रवंदनायां.......सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

इत्यादि विधि करें।

सल्लेखना प्राप्त मुनि के शरीर की और निषद्या की वंदना क्रिया कब और कैसे करें?

जो मुनि समाधिपूर्वक मरण को प्राप्त करते हैं उनके मृत शरीर की वंदना करने में भक्तियां की जाती हैं और जहाँ पर उनका संस्कार किया जाता है उसे निषेधिका या निषद्या कहते हैं, उसकी भी वंदना करने में भक्ति का विधान है सो ही बताते हैं-

१. सामान्य साधु के शरीर की या निषद्या की वंदना में साधु सिद्धभक्ति, योगिभक्ति और शांतिभक्ति पढ़ते हैं।

२. सिद्धांत वेत्ता साधु के शरीर या निषद्या की वंदना में सिद्ध, श्रुत, योगि और शांति ये चार भक्ति करते हैं।

३. उत्तरगुणधारी साधु के शरीरादि की वंदना में सिद्ध, चारित्र, योगि और शांतिभक्ति पढ़ते हैं।

४. यदि वे सिद्धांतवेत्ता भी हैं तो सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि और शांतिभक्ति करते हैं।

५. आचार्य के शरीर या निषद्या वंदना में सिद्ध, योगि, आचार्य और शांतिभक्ति पढ़ते हैं।

६. यदि आचार्य सिद्धान्तवेत्ता हैं तो सिद्ध, श्रुत, योगि, आचार्य और शांतिभक्ति से वंदना करते हैं।

७. यदि आचार्य सिद्धांतवेत्ता और उत्तम गुणधारी भी हैं तो उनके शरीर या निषद्या की वंदना में सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, आचार्य और शांतिभक्ति पढ़कर वंदना करते हैं।

आचार्य के शरीर की वंदना क्रिया

नमोऽस्तु [१]आचार्यश्री.....शरीरवंदनाक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् दंडक, जाप्य, थोस्सामि करके पृ. ११३ से वृहत् सिद्धभक्ति या पृष्ठ ७७ से लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।)

यन्नित्यमव्ययमचिंत्यमनंतबोधं।
तद्ब्रह्म शुद्धमहमेव सुखस्वरूपम् ।।५।।
अमुह्यंत-मरज्यंत-मद्विषंतं च यः स्वयं।
शुद्धे निधत्ते स्वे शुद्ध-मुपयोगं स शुद्ध्यति।।६।।
बोधिसमाधिविशुद्ध-स्वचिदुपलब्ध्युच्छलत्प्रमोदभराः।
ब्रह्म विदंति परं ये ते सद्‌गुरवो मम प्रसीदंतु।।७।।

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति..........इत्यादि अंचलिका पढ़ें।

---

१. जिन आचार्य की समाधि हुई हो संस्कार से पूर्व उनके शरीर की वंदना के समय उन्हीं का नाम लेना चाहिए।

नमोऽस्तु आचार्यश्री.....शरीरवंदनाक्रियायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११६ से वृहत् श्रुतभक्ति या पृष्ठ १३ से लघु श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्री.....शरीरवंदनाक्रियायां.....चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १२२ से बड़ी चारित्र भक्ति या पृष्ठ ३३० से लघु चारित्र भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्री.....शरीरवंदनाक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १०६ से बड़ी योगिभक्ति या पृष्ठ ४८ से लघु योगिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्री.........शरीरवंदनाक्रियायां.........आचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. २४४ से आचार्य भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्री.....शरीरवंदनाक्रियायां...शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्री........शरीरवंदनाक्रियायां........सिद्धश्रुतचारित्रयोगि-आचार्यशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

****

निषद्यावंदना क्रिया

साधु या आचार्य के संस्कार के स्थल की वंदना करते समय उपर्युक्त भक्तियों का ही विधान है। जिन साधु या आचार्य की निषद्या हो उनका नाम लेवें।

नमोऽस्तु आचार्य श्रीशांतिसागरनिषद्यावंदनायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११३ से वृहत् सिद्धभक्ति या पृष्ठ ७७ से लघु सिद्ध भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्रीशांतिसागरनिषद्यावंदनायां.........श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(कायोत्सर्ग विधि करके वृहत् या लघु श्रुतभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्रीशांतिसागरनिषद्यावंदनायां.......चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके वृहत् या लघु चारित्रभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्रीशांतिसागरनिषद्यावंदनायां...........योगिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके वृहत् या लघु योगिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्रीशांतिसागरनिषद्यावंदनायां.......आचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके वृहत् या लघु आचार्य भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्रीशांतिसागरनिषद्यावंदनायां........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु आचार्यश्रीशांतिसागरनिषद्यावंदनायां..........सिद्धश्रुतचारित्र-योगिआचार्यशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

विशेष-किन्हीं भी मुनि या आचार्य की सल्लेखना के समाचार प्राप्त होने पर या उनकी पुण्यतिथि के दिन उपर्युक्त प्रकार से ही भक्तियां पढ़ें।

****

जिनबिंब प्रतिष्ठा में कौन सी भक्तियां कब और कैसे?

स्थिर जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा और चल जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा के समय सिद्धभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है।

स्थिर जिनबिंब की प्रतिष्ठा के चतुर्थ दिन के अभिषेक के समय सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति वृहदालोचना और शांतिभक्ति पढ़कर वंदना की जाती है। चल जिनबिंब की प्रतिष्ठा के चतुर्थ दिन के अभिषेक के समय सिद्ध, चैत्य, पंचगुरु और शान्ति ये चार भक्तियां मानी गई हैं।

चल-अचल जिनबिंब प्रतिष्ठा क्रिया

नमोऽस्तु चलजिनबिंबप्रतिष्ठाक्रियायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु चलजिनबिंबप्रतिष्ठाक्रियायां......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

ऐसे ही अचल जिनबिंब की प्रतिष्ठा के समय पढ़ें।

चल जिनप्रतिमा की अभिषेक वंदना क्रिया

नमोऽस्तु चलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां.........सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग, पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पाठ)

नमोऽस्तु चलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां............चैत्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग, पृ. ६४ से चैत्यभक्ति पाठ)

नमोऽस्तु चलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां..........पंचगुरुभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग, पृ. २७७ से पंचगुरुभक्ति पाठ)

नमोऽस्तु चलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग, पृ. १३६ से शांतिभक्ति पाठ)

नमोऽस्तु चलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां.......सिद्धचैत्यपंचगुरु-शांतिभक्ती: कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग पृ. १४१ से समाधिभक्ति पाठ)

अचल जिनप्रतिमा की अभिषेक वंदना क्रिया

नमोऽस्तु अचलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां.....सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग, पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पाठ)

नमोऽस्तु अचलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां......सालोचनाचारित्र-भक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग पृष्ठ १२२ से चारित्रभक्ति पाठ करके ''इच्छामि भंते! चरित्तायारो.......इत्यादि पढ़ें।)

नमोऽस्तु अचलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां.........शांतिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग, पृ. १३६ से शांतिभक्ति पाठ)

नमोऽस्तु अचलजिनप्रतिमाअभिषेकवंदनाक्रियायां....सिद्धचारित्रशांति-भक्ती: कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग, पृ. १४१ से समाधिभक्ति पाठ)

प्रतिमायोगधारी मुनि की वंदना कब, कौन और कैसे करें?

लघीयसोऽपि प्रतिमायोगिनो योगिनः क्रियाम्।
कुर्युः सर्वेऽपि सिद्धर्षि-शांतिभक्तिभिरादरात्[१]।।८२।।

जो सूर्याभिमुख आदि खड़े होकर कायोत्सर्ग ध्यान करने वाले हैं ऐसे मुनि यदि दीक्षा में छोटे भी हैं तो भी सभी साधु मिलकर सिद्ध, योगि और शांतिभक्ति पढ़कर उनकी वंदना करें। इस वंदना में योगिभक्ति पढ़ते-पढ़ते योगिराज की तीन प्रदक्षिणा देवें।[२]

प्रतिमायोगधारी मुनि की वंदना क्रिया

नमोऽस्तु प्रतिमायोगधारिमुनिवंदनाक्रियायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु प्रतिमायोगधारिमुनिवंदनाक्रियायां.......योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ.१०६ से योगिभक्ति पढ़ते हुए योगिराज की तीन प्रदक्षिणा देवें।)

नमोऽस्तु प्रतिमायोगधारिमुनिवंदनाक्रियायां.........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु प्रतिमायोगधारिमुनिवंदनाक्रियायां.......सिद्धयोगिशांतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

****

मुनि केशलोच के समय कौन सी भक्ति करें?

मुनि दो महीने में उत्कृष्ट, तीन महिने में मध्यम और चार महिने में जघन्य ऐसा केशलोंच करें। इस केशलोंच के दिन उपवास[३] करना चाहिए और प्रतिक्रमण करना चाहिए।

केशलोंच प्रारंभ-समापन क्रिया

नमोऽस्तु लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां..........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ७७ से लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।)

---

१. अनगार धर्मा., अ. ९। २. अनगार धर्मा. अ. ८। ३. अनगार धर्मा. अ. ९, श्लोक ८६।

नमोऽस्तु लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां..........योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके पृ. ४८ से लघु योगिभक्ति पढ़ें।)

अनन्तर अपने हाथ से या पर के हाथ से केशों का लोच करें। केशलोंच पूरा होने के बाद-

नमोऽस्तु लोचनिष्ठापनक्रियायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(विधिवत् कायोत्सर्ग करके लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।)

इस केशलोंच का प्रतिक्रमण दैवसिक या पाक्षिक प्रतिक्रमण में अंतर्भूत हो जाता है अतः अलग से करने का कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

विशेष-अनगार धर्मामृत की इस नवमी अध्याय में आचार्य पद ग्रहण के समय की और दीक्षा ग्रहण के समय की भक्तियाँ पढ़ने का विधान है उन्हें यहां नहीं लिया गया है। मुनि दीक्षा विधि और आचार्य दीक्षा विधि में ही उनका प्रकरण लिया जायेगा।

इति नैमित्तिकक्रियाविधानं

यहां तक नैमित्तिक क्रियायें पूर्ण हुई हैं।

अथ सर्वदोषप्रायश्चित्तविधिः

ॐ ह्रीं अर्हं असिआउसा त्रयस्त्रिंशदत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१।।
ॐ ह्रीं अर्हं अहिंसामहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२।।
ॐ ह्रीं अर्हं सत्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।३।।
ॐ ह्रीं अर्हं अचौर्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।४।।
ॐ ह्रीं अर्हं ब्रह्मचर्यमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।५।।
ॐ ह्रीं अर्हं अपरिग्रहमहाव्रतस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।६।।
ॐ ह्रीं अर्हं ईर्यासमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।७।।
ॐ ह्रीं अर्हं भाषासमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।८।।
ॐ ह्रीं अर्हं एषणासमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।९।।
ॐ ह्रीं अर्हं आदाननिक्षेपणसमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१०।।
ॐ ह्रीं अर्हं उत्सर्गसमिते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।११।।
ॐ ह्रीं अर्हं मनोगुप्ते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१२।।
ॐ ह्रीं अर्हं वचोगुप्ते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१३।।
ॐ ह्रीं अर्हं कायगुप्ते-रत्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१४।।
ॐ ह्रीं अर्हं जीवास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१५।।
ॐ ह्रीं अर्हं पुद्गलास्तिकायस्या-त्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१६।।
ॐ ह्रीं अर्हं धर्मास्तिकायस्या-त्यासादना-त्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१७।।

ॐ ह्रीं अर्हं अधर्मास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१८।।
ॐ ह्रीं अर्हं आकाशास्तिकायस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।१९।।
ॐ ह्रीं अर्हं पृथ्वीकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२०।।
ॐ ह्रीं अर्हं अप्कायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२१।।
ॐ ह्रीं अर्हं तेजःकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२२।।
ॐ ह्रीं अर्हं वायुकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२३।।
ॐ ह्रीं अर्हं वनस्पतिकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठित-प्रोषधोद्योतनाय नमः।।२४।।
ॐ ह्रीं अर्हं त्रसकायिकस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२५।।
ॐ ह्रीं अर्हं जीवपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२६।।
ॐ ह्रीं अर्हं अजीवपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२७।।
ॐ ह्रीं अर्हं आस्त्रवपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२८।।
ॐ ह्रीं अर्हं बंधपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।२९।।
ॐ ह्रीं अर्हं संवरपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।३०।।
ॐ ह्रीं अर्हं निर्जरापदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।३१।।
ॐ ह्रीं अर्हं मोक्षपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।३२।।
ॐ ह्रीं अर्हं पुण्यपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।३३।।
ॐ ह्रीं अर्हं पापपदार्थस्यात्यासादनात्यागायानुष्ठितप्रोषधोद्योतनाय नमः।।३४।।
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्दर्शनाय नमः।।३५।।
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यग्ज्ञानाय नमः।।३६।।
ॐ ह्रीं अर्हं सम्यक्चारित्राय नमः।।३७।।

इति सर्वदोषप्रायश्चित्तविधिः

कल्याणालोचना (प्राकृत)

परमप्पइ वड्ढमई, परमेट्ठीणं करोमि णवकारं।
सगपरसिद्धिणिमित्तं, कल्लाणालोयणा वोच्छे।।१।।

कल्याणालोचना (हिन्दी पद्यानुवाद)

परमात्मा को वृद्धिंगत ज्ञान-सहित परमेष्ठी को प्रणमूं।
निजपर की सिद्धी हेतू मैं यह कल्याणालोचना भणूं।।१।।

रे जीवाणंतभवे, संसारे संसरंत बहुवारं।
पत्तो ण बोहिलाहो, मिच्छत्तविजंभपयडीहिं।।२।।
संसारभमणगमणं, कुणंत आराहिओ ण जिणधम्मो।
तेण विणा वर दुक्खं, पत्तोसि अणंतवाराइं।।३।।
संसारे णिवसंता, अणंतमरणाइ पाविओसि तुमं।
केवलिणा विणतेसिं, संखापज्जत्ति णो हवइ।।४।।
तिण्णिसया छत्तीसा, छावट्ठिसहस्सवार मरणाइं।
अंतोमुहुत्तमज्झे, पत्तोसि णिगोयमज्झम्मि।।५।।
वियलिंदिए असीदी, सट्ठी चालीसमेव जाणीहि।
पंचेदिय चउवीसं, खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स।।६।।*
अण्णोण्णं खज्जंता, जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
ण हु तेसिं पज्जत्ती, कह पावइ धम्ममइसुण्णो।।७।।

रे जीव! अनंतभवों में तू भव भव में बहु संसरण किया।
मिथ्यात्व प्रकृति के उदयनिमित नहिं बोधि लाभ को प्राप्त किया।।२।।

संसार भ्रमण करते करते, नहिं आराधा जिनधर्म कभी।
जिन धर्म बिना बहु दुःख अनंतों बार प्राप्त कर रहा दुखी।।३।।

संसार में रहते मरण अनंतानंत बार कीया तूने।
केवलि प्रभु बिन उन मरणों की संख्या नहिं कह सकता जग में।।४।।

छ्यासठ हजार अरु तीन शतक छत्तीस क्षुद्रभव माने हैं।
तूने अंतर्मुहूर्त में ही ये सब भव धरे निगोदों में।।५।।

दो त्रय चउ इंद्रिय के क्रम से अस्सी व साठ चालिस भव हैं।
पंचेन्द्रिय के चौबीस कुभव, अन्तर्मुहूर्त में होते हैं।।६।।

बहु जीव परस्पर में क्रोधित होकर दारुण दुख पाते हैं।
जिनधर्मबुद्धि से रहित जीव कैसे उनसे छुट सकते हैं।।७।।

***पुडविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया।**
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्कं बार खं छक्कं।।
***क्वचित् पुस्तके इयमपि गाथा उपलभ्यते।**

मायापिया कुडंबो, सुजणजणो कोवि णायई सत्थे।
एगागी भमइ सदा, णहि वीओ अत्थि संसारे।।८।।
आउक्खएवि पत्ते, ण समत्थो कोवि आउदाणेय।
देवेंदो ण णरेंदो, मणिमोसह-मंतजालाई।।९।।
पुढविदगागणिमारुद-साहारणथूलसुहुमपत्तेया।
एदेसु अपुण्णेसु य, एक्केक्कं बार खं छक्कं।।
संपडि जिणवरधम्मो, लद्धोसि तुमं विसुद्धजोएण।
खामसु जीवा सव्वे, पत्तेयसमये पयत्तेण।।१०।।
तिण्णिसया तेसट्ठि, मिच्छत्ता दंसणस्स पडिवक्खा।
अण्णाणे सद्दहिया, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।११।।
महुमज्जमंसजूआ-पभिदीवसणाइ सत्तभेयाइं।।
णियमो ण कयं च तेसिं, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।१२।।
अणुवयमहव्वया जे, जमणियमा सीलसाहुगुरुदिण्णा।
जे जे विराहिदा खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।१३।।
णिच्चदरधादुसत्तय, तरुदसवियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो, चउदस मणुए सदसहस्सा।।१४।।

मां पिता कुटुम्बी स्वजन आदि कोई भी साथ न आते हैं।
तू सदा अकेला भ्रमें न कोई दूजा तेरा इस जग में।।८।।
आयू क्षय होने में समर्थ नहिं कोई आयू देने में।
देवेंद्र नरेंद्र मंत्र मणि औषध नहीं बचा सकते जग में।।९।।
अब जिनवर धर्म मिला तुमको, मन वच तन को तुम शुद्ध करो।
प्रतिसमय सावधानीपूर्वक सब जीवों पर तुम क्षमा करो।।१०।।
सम्यग्दर्शन के शत्रू त्रय सौ-त्रेसठ मिथ्यादर्शन जो।
अज्ञान से इन पर श्रद्धा की वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।११।।
मधु मांस मद्य अरु जुआ आदि सातों व्यसनों का सेवन जो।
नहिं इनका त्याग किया मैंने वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१२।।
अणुव्रत महाव्रत यम नियम शील मुनिवर गुरुवर ने दीये जो।
उन-उनमें विराधना की जो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१३।।
नित्य अनित्य चउ धातू भी सात-सात लक्ष तरु दश लक्षा।
विकलेंद्रिय छह लख सुर नारक तिर्यक् चउ चउ नर चौदह लक्षा।।१४।।

एदे सव्वे जीवा चउरासीलक्खजोणिवसि पत्ता।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।१५।।
पुढविजलग्गिवाओ, तेओ वि वणप्फई य वियलतिया।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।१६।।
मल सत्तरा जिणुत्ता, वयविसये जा विराहणा विविहा।
सामइय खमइया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।१७।।
फलफुल्लछल्लिवल्ली, अणगल ण्हाणं च धोवणादीहिं।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।१८।।
णो सीलं णेव खमा, विणओ तवो ण संजमोवासा।
ण कया ण भाविकया, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।१९।।
कंदफलमूलबीया, सचित्तरयणीयभोयणाहारा।
अण्णाणे जे वि कया, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२०।।
णो पूया जिणचरणे, ण पत्तदाणं ण चेरियागमणं।
ण कया ण भाविय मये, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२१।।

इन सब चौरासी लाख योनियों-में सब जीव भ्रमें दुख सों।
उन-उन की विराधना की जो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१५।।
पृथ्वी जल अग्नी वायु वनस्पति, अरु विकलत्रय प्राणी जो।
उन-उनकी विराधना की जो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१६।।
सम्यक्त्व व्रतों में जिनवर ने सत्तर अतिचार बताये जो।
सामायिक क्षमादि में हानी की सब दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१७।।
फल फूल छाल अरु लता अनछने जल से स्नान आदि भी जो।
उन-उनकी विराधना की जो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१८।।
नहिं शील क्षमा नहिं विनय व तप, संयम उपवास न कीये हों।
नहिं किया भावना भी इनकी, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।१९।।
फल मूल बीज अरु कंद सचित, अज्ञान से इनको खाया हो।
रात्री भोजन भी किया कराया, दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२०।।
जिनचरणों की पूजा नहिं पात्रदान नहिं ईर्या शुद्धि जो।
नहिं किया भावना नहिं भायी, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२१।।

बंभारंभपरिग्गह, सावज्जा बहुपमाददोसेण।
जीवा विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं-हुज्ज।।२२।।
सत्तस्सिउखित्तभवा-तीदाणागयसुवट्टमाणजिणा।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२३।।
अरिहासिद्धाइरिया, उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२४।।
जिणवयणधम्मचेइय-जिणपडिमा किट्टिमाअकिट्टिमया।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२५।।
दंसणणाणचरित्ते, दोसा अट्ठट्ठपंचभेयाइं।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२६।।
मइसुइओहीमणपज्जयं, तहा केवलं च पंचमयं।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२७।।
आयारादी अंगा, पुव्वपइण्णा जिणेहिं पण्णत्ता।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२८।।

आरंभ परिग्रह बहुत प्रमाद दोष से पाप उपार्जे जो।
जीवों की विराधना करके वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२२।।
इक सौ सत्तर क्षेत्रों के भूत भविष्यत वर्तमान जिन जो।
उन-उनकी विराधना की हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२३।।
अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय-साधु पंचपरमेष्ठी जो।
उन-उनकी विराधना की जो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२४।।
जिन-वचन धर्म जिनगृह जिनवर प्रतिमा कृत्रिम-अकृत्रिम जो।
उन-उनकी विरधना की हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२५।।
दर्शन सुज्ञान चारित में क्रम से, आठ-आठ पण दोष भी जो।
उन-उनसे विराधना की जो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२६।।
मति श्रुत अवधी मनपर्यय, केवलज्ञान पांच माने हैं जो।
उन-उनकी विराधना की जो, वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२७।।
आचारादी अंगों पूर्वों व प्रकीर्णक में जिन वर्णित जो।
उन-उनकी विराधना की जो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२८।।

पंच महव्वयजुत्ता, अट्ठादससहस्ससीलकयसोहा।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।२९।।
लोए पियरसमाणा, रिद्धिपवण्णा महागणवइया।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।३०।।
णिग्गंथ अज्जियाओ, सड्ढा सड्ढी य चउविहो संघो।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।३१।।
देवा सुरा मणुस्सा, णेरइया तिरियजोणिगयजीवा।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।३२।।
कोहो माणो माया, लोहो एदेय रायदोसाइं।
अण्णाणे जे वि कया, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।३३।।
परवत्थं परमहिला, पमादजोएण अज्जियं पावं।
अण्णेवि अकरणीया, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज।।३४।।
इक्को सहावसिद्धो, सोहं अप्पा वियप्पपरिमुक्को।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।३५।।

मुनि पांच महाव्रत सहित अठारह सहस शील से शोभित जो।
उन-उनकी विराधना की जो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।२९।।

इस जग में पिता सदृश ऋद्धी-से सहित महागणधर गुरु जो।
उन-उनकी विराधना की हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३०।।

मुनिराज-आर्यिका, श्रावक और श्राविका संघ चतुर्विध जो।
उन-उनकी विराधना की हो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३१।।

सुर असुर मनुज नारक तिर्यक् योनी में रहते प्राणी जो।
उन-उनकी विराधना की जो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३२।।

जो क्रोध मान माया व लोभ अरु राग द्वेष दोषादिक हों।
अज्ञान से मैंने किया इन्हें वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३३।।

परवस्त्र ग्रहण, परमहिला राग से पाप प्रमादयोग से जो।
जो अन्य अकार्य किये मैंने वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।।३४।।

जो एक स्वभावसिद्ध आत्मा संपूर्ण विकल्प विवर्जित है।
नहिं अन्य शरण मेरा कोई वह एक शरण परमात्मा है।।३५।।

अरस अरूव अगंधो, अव्वावाहो, अणंतणाणमओ।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।३६।।
णेयपमाणं णाणं, समए इक्केण हुंति ससहावे।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।३७।।
एयाणेयवियप्पप्पसाहणे सयसहावसुद्धगई।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।३८।।
देहपमाणो णिच्चो, लोयपमाणो वि धम्मदो होदि।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।३९।।
केवलदंसणणाणं, समये इक्केण दुण्णि उवओगा।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।४०।।
सगरूव सहजसिद्धो, विहावगुणमुक्ककम्मवावारो।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।४१।।
सुण्णो णेय असुण्णो, णोकम्मो कम्मवज्जिओ णाणं।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।४२।।

जो अरस अरूप अगंध व अव्याबाध अनंत ज्ञानमय है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।३६।।

सब ज्ञेयप्रमाण ज्ञान एक समय से स्वस्वभाव में है।
नहिं अन्य शरण-मेरा कोई, वह एक शरण परमात्मा है।।३७।।

जो एक-अनेक विकल्प प्रसाधन निजस्वभाव में विशुद्ध है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।३८।।

ज्ञान अपेक्षा लोकमात्र भी नित्य व स्वतनुमात्र जो है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।३९।।

इक समय में केवलदर्शन केवलज्ञान द्वि उपयोगमय है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा, वह एक शरण परमात्मा है।।४०।।

निजरूप सहजसिद्ध है विभावगुण कर्म रहित शुद्धात्मा हैं।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।४१।।

नो कर्म कर्म से रहित शून्य है ज्ञानपूर्ण से अशून्य है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।४२।।

णाणाउ जो ण भिण्णो, वियप्पभिण्णो सहाव सुक्खमओ।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।४३।।
अच्छिण्णोवच्छिण्णो, पमेय रूवत्तगुरुलहू चेव।
अण्णो ण मज्झं सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।४४।।
सुहअसुहभावविगओ, सुद्धसहावेण तम्मयं पत्तो।
अण्णो ण मज्झ सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।४५।।
णो इत्थी ण णउंसो, णो पुंसो णेव पुण्णपावमओ।
अण्णो ण मज्ज सरणं, सरणं सो एक्क परमप्पा।।४६।।
ते को ण होदि सुयणो तं कस्स ण बंधवो ण सुयणो वा।
अप्पा हवेइ अप्पा, एगागी जाणगो सुद्धो।।४७।।
जिणदेवो होउ सया, मई सु जिणसासणे सया होऊ।
सण्णासेण य मरणं, भवे भवे मज्झ संपदओ।।४८।।
जिणो देवो जिणो देवो, जिणो देवो जिणो जिणो।
दयाधम्मो दयाधम्मो, दयाधम्मो दया सया।।४९।।

ज्ञान से नहिं भिन्न विकल्प से भिन्न स्वभाव से सुखमय है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।४३।।

अच्छिन्न व अवच्छिन्न है प्रमेयरूप अगुरूलघुमय है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।४४।।

शुभ-अशुभ भाव से रहित शुद्ध निज भावों से ही तन्मय है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।४५।।

नहिं स्त्री नहीं नपुंसक नहिं ये, पुरुष न पुण्य-पापमय है।
नहिं अन्य शरण कोई मेरा वह एक शरण परमात्मा है।।४६।।

नहिं कोई तेरा स्वजन न तू भी बंधु व स्वजन किसी का है।
यह आत्मा एकाकी ज्ञायक है शुद्ध आत्मा चिन्मय है।।४७।।

जिनदेव सदा हों देव मेरे, जिनशासन में मति रहे सदा।
भव-भव में हो सन्यास मरण, निजसंपति मुझको मिले सदा।।४८।।

जिन एव देव जिन एव देव जिन एव देव जिन हैं जिन नित।
है दयाधर्म है दयाधर्म है दयाधर्म है दया सतत।।४९।।

महासाहू महासाहू, महासाहू दिगम्बरा।
एवं तच्चं सदा हुज्ज, जाव णो मुत्तिसंगमो।।५०।।
एवमेव गओ कालो, अणंतो दुक्खसंगमे।
जिणोवदिट्ठसण्णासे, ण यत्तारोहणा कया।।५१।।
संपइ एव संपत्ताराहणा जिणदेसिया।
किं किं ण जायदे मज्झ, सिद्धिसंदोहसंपई।।५२।।
अहो धम्ममहो धम्मं, अहो मे लद्धि णिम्मला।
संजादा संपदा सारा, जेण सुक्खमणूवमं।।५३।।
एवं आराहंतो, आलोयणवंदणापडिक्कमणं।
पावइ फलं य तेसिं, णिद्दिट्ठं अजियबंभेण।।५४।।

इति कल्लाणालोयणा

सोलह कारण पर्व

भादों, माघ और चैत्र में सोलह कारण पर्व माना गया है। भादों वदी एकम से लेकर अगले मास की अर्थात् आसोज वदी एकम तक यह व्रत किया जाता है। "व्रततिथि निर्णय" के अनुसार इस सोलहकारण व्रत में तीन प्रतिपदा-एकम आना आवश्यक है। इस पर्व में साधुवर्ग भी निम्नलिखित भक्तियों का पाठ कर सकते हैं।[1]

हैं महासाधु हैं महासाधु हैं महासाधु हैं दिगम्बर जो।
ये सभी तत्त्व नित मिले मुझे, जब तक नहिं मुक्ति मिले मुझको।।५०।।
इस विध दु:ख के संग में मेरा यह काल अनंत व्यतीत हुआ।
जिनवर भाषित सन्यास में मैंने यत्न से आरोहण न किया।।५१।।
जिनभाषित आराधना मुझे अब प्राप्त हुई पुण्योदय से।
अब क्या-क्या मुझे मिलेगी नहिं सिद्धी समूह संपति इससे।।५२।।
हे धर्म अहो हे धर्म अहो मुझको निर्मल उपलब्धि मिली।
अब इससे मुझे सर्वस्व मिला, अनुपम सुख कलियां आज खिलीं।।५३।।
इस विध आलोचन वंदन प्रतिक्रमण को आराधन करते।
उनको फल मिलता मोक्ष सौख्य श्री 'अजित ब्रह्म' ऐसा कहते ।।५४।।

दोहा- गणिनी आर्या ज्ञानमती, किया पद्य अनुवाद।
यह कल्याणालोचना, पढ़ो मिले निजस्वाद।।५५।।

---

१. षोडशकारणभक्ति, दशलक्षणभक्ति, पंचमेरुभक्ति, जंबूद्वीपभक्ति और सुदर्शनमेरुभक्ति ये पाचों भक्तियाँ मेरे (आर्यिका ज्ञानमती) द्वारा रचित हैं। सोलहकारण आदि पर्वों में, पंचमेरु के व्रतों में या पंचमेरु, जंबूद्वीप, सुदर्शनमेरु की वंदना करते समय इन भक्तियों को उपर्युक्तक्रम से पढ़ सकते हैं।

षोडशकारण पर्व क्रिया

नमोऽस्तु षोडशकारणपर्वक्रियायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ८ से णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर २७ उच्छ्वास में कायोत्सर्ग करके पृ. ९ से थोस्सामि स्तव पढ़कर पृ. ११३ से सिद्ध भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु षोडशकारणपर्वक्रियायां....षोडशकारणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ८ से "णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिक दंडक पढ़कर २७ उच्छ्वास में कायोत्सर्ग करके पृ. ९ से थोस्सामि स्तव पढ़कर षोडशकारण भक्ति पढ़ें।)

षोडशकारण भक्तिः

उपजाति छंद–

सिद्धिप्रदाः षोडश भावना याः। तीर्थंकरैः प्राक् खलु भावितास्ताः।।
प्रवर्तयंते भुवि धर्मतीर्थं। तास्तांश्च नित्यं प्रणुमः स्वसिद्ध्यै।।१।।
सद्दृग्विशुद्धिः शिवसौख्यदात्री। प्रसूरिवानन्तगुणान् प्रसूते।।
पंचोत्तरा विंशतिदोषशून्या। गुणाष्टमुख्या तां नंनमीमि।।२।।
दृग्ज्ञानवृत्तेषु तथोपचारे। विनेयवृत्तिर्विनयानुरक्ता।।
आनम्रलोकापि च मोक्षद्वारा। संपन्नतां तां विनयैर्नमामि।।३।।

सोलहकारण भक्ति (नरेन्द्र छंद–पद्यानुवाद)

सिद्धि प्रदाता सोलह कारण, भावनाएं मुनि गाते।
तीर्थंकर भगवान् इन्हें ही पहले भव में भाते।।
पुनः जगत् में धर्मतीर्थ का, सफल प्रवर्तन करते।
भावनाओं को तीर्थंकरों को, सिद्धिहेतु हम नमते।।१।।
दर्शविशुद्धी शिवसुख देती, प्रथम भावना जग में।
माता सम अनंतगुण गण को, पैदा करती सच में।।
पच्चिस दोष रहित यह सम्यग्दर्शन शुद्ध कहा है।
संवेगादि आठ गुणयुत को, मैंने नमन किया है।।२।।
दर्शन ज्ञान चरित्र तथा, उपचार विनय चारों है।
इनमें इनके धारी में, अनुराग विनययुत जो हैं।।
सभी जगत् को नम्र बनावे, शिव का द्वार कहावे।
द्वितीय विनय संपन्न भावना इसे सदा शिर नावें।।३।।

शीलव्रतेषूचितधीरजस्त्रं । श्रुतानुसारैरतिचारशून्या।।
संपूर्णशीलव्रतपूर्णकर्त्री। वंदे तृतीयां शुभभावनां ताम् ।।४।।
चतुः प्रकारांश्च जिनोक्तवेदान् । योऽध्यापयेच्चापि स्वयं त्वधीते।।
ज्ञानोपयोगं विदधात्यभीक्ष्णम् । तं भावनां चापि नमामि नित्यम्।।५।।
वैराग्यभावो भवदेहभोगे। धर्मेषु प्रीतिः परमा प्रशस्ता।।
स्वात्मोत्थपीयूषरसैकतृप्तिः। संवेगतां तां हृदि भावयामि।।६।।
रत्नत्रयं भव्यजनाय दद्यात् । महामुनिः प्रासुकदानदक्षः।।
दानं चतुर्धापि हिताय लोके। तं शक्तितस्त्यागमहं महामि।।७।।
अंतर्बहिर्द्वादशभेदयुक्तं। तपश्च कुर्वन् मुनिरात्मशक्त्या।।
ध्यानैकसिद्ध्यै चरतीह सर्वं। तपांसि सर्वाण्यपि भावयामि।।८।।

शील व्रतों में उचित प्रवृत्ति, सदा शास्त्र अनुसारे।
अतिचारों से रहित धरें जो, तृतीय भावना धारें।।
श्रेष्ठ भावना शील व्रतों में, अनतिचार को वंदूँ।
सकल शील व्रत पूर्ण करे ये, इसको धर भव खंडूँ।।४।।
जिनवर कथित वेद हैं, चारों ये अनुयोग कहाते।
स्वयं पढ़ें जो चतुःसंघ को, रुचि से नित्य पढ़ाते।।
वे अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग को, धरते उन्हें नमूं मैं।
सदा भावना को भी प्रणमूं, परमानंद भजूं मैं।।५।।
जो संसार देह भोगों से, विरति भाव को धारें।
श्रेष्ठ धर्म में परम प्रीति धर, वर संवेग विचारें।
स्वात्मा से उत्पन्न परम, अमृत से तृप्त हुए हैं।
उस संवेग भावना को नित, भावूं धरूं हिये में।।६।।
रत्नत्रयनिधि भव्यजनों को, देते साधु नाते।
प्रासुक दान यही है उत्तम, महामुनि कर पाते।।
दान चतुर्विध भी इस जग में, सबका है हितकारी।
यथाशक्ति यह त्याग भावना, नमूं इसे सुखकारी।।७।।
अंतरंग छह बाहर के छह, बारह तप माने हैं।
मुनिवर निजशक्ती सम इनको, करते अघ हाने हैं।
ध्यानसिद्धि के लिए सभी ये, तपश्चरण मुनि करते।
मैं भी नितप्रति सभी तपों को, भावूं अतिशय रुचि से।।८।।

साधोः समाधिर्महतां पुनाति। धर्म्ये च शुक्लेऽविचलं करोति।।
पीड़ाः समस्ताश्च मुनेर्धिनोति। एनां सदा भावय भव्य! चित्ते।।९।।
निर्दोषरीत्यैव रुजादिहर्त्री। सेवा गुरूणां गुणपुंजदात्री।।
या भावना सर्वतपस्सु प्राणं। तां नौमि नित्यं नवमीं गुणाप्त्यै।।१०।।
अर्हत्सु भक्तिर्भुवि कामधेनुः। एकाकिनी सर्वसुखानि दत्ते।।
दौर्गत्यदुःखानि क्षणात् लुनीते। नमाम्यहं तामनुरागभावैः।।११।।
आचार्यभक्त्या बहुमंत्रविद्याः। सिद्ध्यंति भक्तस्य श्रुतौ प्रणीतं।।
मुक्तेश्च दातारमहं प्रवंदे। गुणानुरागादपि भावनां तां।।१२।।
शास्त्राब्ध्युपाध्यायगुरुं प्रणौमि। यस्य प्रसादात् श्रुतवार्धिपारं।।
गच्छन्ति शीघ्रं निजसौख्यपूरं। ज्ञानामृतं चापि पिबंति भव्याः।।१३।।

साधु समाधि महापुरुष के, मन को पावन करती।
धर्मध्यान अरु शुक्लध्यान में निश्चल मन को धरती।।
मुनियों के संपूर्ण कष्ट को, दूर करें जो रुचि से।
ऐसी साधुसमाधि भावना, भव्य धरो नित चित में।।९।।
प्रासुक औषधि से सेवा से, गुरु की वैयावृत्ति।
गुरुओं के रोगादि दूर कर, गुण के पुंज धरें भी।।
सर्व तपों का प्राण कही यह, वैयावृत्ति भावना।
जिनगुण प्राप्ती हेतु नमूं मैं, उत्तम यही भावना।।१०।।
अर्हंतों की भक्ति भुवन में, कामधेनु कहलाती।
यही अकेली सर्वसुखों को, देती मोक्ष दिलाती।।
दुर्गति के संपूर्ण दुःखों को, क्षण में दूर भगाती।
नित्य नमूं अनुरागभाव से, हो निजसुख की प्राप्ती।।११।।
गुरूवर्य आचार्यभक्ति से, बहुत मंत्र विद्यायें।
सिद्धी होती भक्तगणों को, ऐसा शास्त्र बतायें।।
दीक्षादाता मुक्ति प्रदाता, उनके गुण का रागी।
उन्हें नमूं आचार्यभक्ति भी, वंदू गुरु अनुरागी।।१२।।
श्रुतसमुद्र गुरु उपाध्याय को, सदा नमूं भक्ती से।
श्रुतसमुद्र पारंगत होऊँ, उन प्रसाद को पाके।।
बहुश्रुत भक्ती से निजसौख्यपूर पा जाते भविजन।
वे ही ज्ञानामृत को भी नित पीते रहते मुदमन।।१३।।

प्रकृष्टवाचामनुरागभक्त्या। चित्ते स्मरन्तः सततं स्तुवंति।।
चतुर्विधं संघमपीह प्रीत्या। नमंति ते स्वात्मनिधिं लभंते।।१४।।
आवश्यकान् षट् प्रतिपालयन्तः। हानिं कदाचित् नहि कुर्वते ये।।
त एव वश्यां विदधत्यपूर्वां। लक्ष्मीं स्तुवेऽहं किल भावनां तां।।१५।।
ज्ञानेन पूजाविधिना तपोभिः। मार्गप्रभावी जिनशासने यः।।
रत्नत्रयेणापि स्वयं च स्वस्मिन्। प्रभावयेत् नौमि प्रभावनां तां।।१६।।
प्रकृष्टवाचीह सुवत्सलत्वं। संघे श्रुतौ चापि विशिष्टमोदः।।
माता गुणानां च शिवस्य सास्ति। नमोऽस्तु तस्यै जिनसंपदाप्त्यै।।१७।।
अनुष्टुप् - **जगत्सत्त्वान् समुद्धर्तुं, तीर्थकृत्पुण्यहेतुकाः।**
भावनाः षोडशाप्यल्प-ज्ञानमल्यां विभांतु मे।।१८।।

जिनवर के प्रकृष्ट वचनों में अनुराग भक्ती से।
मन में नित स्मरण करें, स्तुती करें भी रुचि से।।
चउविध संघ को नमन करें भी, जो मन में धर प्रीती।
स्वात्मनिधी को पाते वे ही, वंदूं प्रवचन भक्ती।।१४।।
छह आवश्यक को नित पालें, कभी न करते हानी।
अपूर्व लक्ष्मी को वश करते, वे ही मुनिवर ज्ञानी।।
यह आवश्यक अपरिहाणि है, श्रेष्ठ भावना मानी।
मैं इसकी संस्तुति करूं नित पाऊँ निज रजधानी।।१५।।
श्रेष्ठ ज्ञान पूजा विधान से, घोर तपश्चर्या से।
जो जिनशासन में रत शिवपथ की प्रभावना करते।।
रत्नत्रय गुणतेज स्वयं धर, निज की करें प्रभावन।
मार्ग प्रभावन नमूं भावना, करूं स्वगुण उद्भावन।।१६।।
जिनवर वचनों में वत्सलता, प्रवचन वत्सलता है।
संघ में आगम में भी अतिशय, प्रीति हर्षपरता है।।
सब गुण को पैदा करने में, जननी शिव की दात्री।
जिनगुण संपत्ती हेतू मैं, नमूं यही सुखकर्त्री।।१७।।
त्रिभुवन के सब जीवों का, उद्धार करन में हेतू।
तीर्थंकर का अतिशय पुण्य उपार्जन में यह हेतू।।
ये सोलह कारण सुभावना, अल्प "ज्ञानमति" मुझमें।
नित्य रहें देदीप्यमान ये, नमूं इन्हें नितप्रति मैं।।१८।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! सोलहकारणभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, तित्थयर-पयडिणामकम्मबंधकारणभूदाणं दंसणविसुद्धिविणय-संपण्णदा-सीलव्वद-णिरदिचारदा-अभिक्खण-णाणोवजोगसंवेग-जधाथाम-चाग-तव-साहुसमाहि-वेज्जावच्चकरण-अरंहतभत्ति-आइरियभत्ति-बहुसुदभत्ति-पवयण-भत्ति-आवासय-अपरिहीणदा-मग्गप्पभावण-पवयणवच्छलदाणं इमाणं सोलसकारण-भावणाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु षोडशकारणपर्वक्रियायां............चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदंडक, कायोत्सर्ग, थोस्सामि पढ़कर पृ.४४ से चतुर्विंशतितीर्थंकर भक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु षोडशकारणपर्वक्रियायां.........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदंडक, कायोत्सर्ग, थोस्सामि पढ़कर पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु षोडशकारणपर्वक्रियायां..........समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदंडक, कायोत्सर्ग, थोस्सामि पढ़कर पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

दशलक्षण पर्व

यह दशलक्षण पर्व भी वर्ष में तीन बार आता है। भादों, माघ और चैत्र इन मासों के शुक्ल पक्ष की पंचमी से लेकर चतुर्दशी तक दश दिनों का यह दशलक्षण पर्व है। इस पर्व की क्रिया में निम्नलिखित भक्तियों को पढ़ें।–

अंचलिका-

हे भगवन् ! इच्छा करता मैं, सोलह कारण भावन।
भक्ती कायोत्सर्ग किया अब करता हूँ आलोचन।।
तीर्थंकर शुभ नामकर्म की प्रकृति बंध में कारण।
दरश विशुद्धी विनययुक्तता शीलव्रता-नतिचारण।।१।।
सतत ज्ञानउपयोग तथा संवेग शक्तितस्त्यागो।
यथाशक्ति तप साधु समाधी वैय्यावृत में लागो।।
अर्हद् भक्ति सूरिभक्ती बहुश्रुत और प्रवचन भक्ती।
आवश्यक में हानि नहीं शिवपथ प्रभावना युक्ती।।२।।
प्रवचनवत्सलता ये सोलह कारण भावन सुन्दर।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूं वंदूं नमूं शिवंकर।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय बोधिलाभ भी होवे।
सुगतिगमन मम समाधिमरणं, जिनगुणसंपति होवे।।३।।

दशलक्षणपर्वक्रिया

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक पढ़कर, २७ उच्छ्वास में कायोत्सर्ग करके पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां...दशलक्षणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, कायोत्सर्ग व थोस्सामिस्तव करके दशलक्षण भक्ति पढ़ें।)

दशलक्षण भक्तिः

(वसंततिलका छंदः)

योगी क्षमागुणमयो भुवनैकबंधुः। क्रोधं निहत्य निज शांतरसे निमग्नः।।
स्वात्मैकजन्यपरमामृतसंप्रतृप्तः। तं योगिनं हृदि दधे परमां क्षमां च।।१।।
भावो मृदोर्भवति मार्दवधर्म एषः। अष्टौ मदानपि निरस्य विभाति साधौ।।
वश्यं करोति भुवनं विनयैश्चतुर्धा। तं योगिनं हृदि दधे वरमार्दवं च।।२।।
मायामपास्य सरलं कुरुते त्रियोगं। एकाग्रध्यानमपि साम्यतया विधत्ते।।
मुक्तिर्भवेत् ऋजुगतेः खलु तस्य साधोः। तं योगिनं हृदि दधे परमार्जवं च।।३।।

दशलक्षण भक्ति (पद्यानुवाद) शंभु छंद

योगीश्वर उत्तमक्षमा सुगुणमय, त्रिभुवन के इक बांधव हैं।
वे क्रोध कषाय नाशकर अपने, शांतभाव में तन्मय हैं।।
निज आत्मा से उत्पन्न परम, पीयूष पियें संतृप्त रहें।
उन योगी को वर क्षमाधर्म को, हृदय कमल में धारूँ मैं।।१।।

मृदु का जो भाव वही मार्दव, यह उत्तम धर्म जगत में है।
जो आठों मद को नष्ट करे, उन साधू में ही शोभे है।।
जो दर्शन ज्ञान चरित तप चार विनय से जग को वश्य करें।
उन योगी को वर मार्दव को, नित हृदय कमल में धारूं मैं।।२।।

जो माया दूर हटा मन वच, तन योग सरल कर लेते हैं।
वे ही एकाग्रध्यान धरते, समता अमृत रस पीते हैं।।
उन साधू को सीधे ऋजुगति से, निश्चित मुक्ती मिलती है।
उन योगी को उत्तम आर्जव को, हृदय कमल में धारूं मैं।।३।।

लोभं निरस्य शुचितां हृदये दधाति। ब्रह्मव्रतैः कलिलकर्ममलं धुनोति।।
अंतर्बहिः शुचिपरो भुवि पूज्यतेऽसौ। तं योगिनं हृदि दधे शुचये च शौचम्।।४।।
सम्यक् प्रशस्तवचनं भुवनैकसारं। सौख्याकरं सकलसद्गुणरत्नराशिं।।
गृण्हाति दिव्यध्वनिहेतुमिदं मुनींद्रः। तं योगिनं हृदि दधे वरसत्यधर्मं।।५।।
संयम्य पंचकरणानि मनश्च यत्नात्। षट्कायजीवपरिरक्षणदक्षचेताः।।
स्वाधीनसौख्यमुपलभ्य वसेत् च स्वस्मिन्। तं योगिनं हृदि दधे वृषसंयमं च।।६।।
साधुः सदा तपति द्वादशधा तपोभिः। कायं कृशीकुरुत एव किलात्मपुष्ट्यै।।
कर्माणि निर्जरयतीह शिवस्य हेतोः। तं योगिनं हृदि दधे सुतपश्च धर्मं।।७।।
रत्नत्रयं भविगणाय ददाति योगी। तत्त्याग एव परमो यतिभिस्तथोक्तं।।
आहारदानप्रभृतीनपि देहि मुक्त्यै। तं योगिनं हृदि दधे वरत्यागधर्मं।।८।।

जो लोभ दूर कर शौचधर्म को, मनपकंज में धरते हैं।
वे पावन ब्रह्मचर्य द्वारा सब पाप कर्ममल धोते हैं।।
अंतर बाहिर शुचिता धर कर वे जग में पूजित होते हैं।
उन योगी को वर शौच को शुचि-हित हृदय कमल में धरते हैं।।४।।
जो सम्यक् सत्य प्रशस्त वचन, वे जग में सारभूत माने।
वे सर्व सुखों की खान सकल-गुण रत्नों की राशी माने।।
मुनिराज दिव्यध्वनि हेतु सुउत्तम, सत्यधर्म को पाले हैं।
उन मुनि को उत्तम सत्यधर्म को, हृदय कमल में धरते हैं।।५।।
जो बहु प्रयत्न से पंचेन्द्रिय, अरु मन का निग्रह करते हैं।
छह काय जीव की रक्षा करने, में दयार्द्र मन रखते हैं।।
स्वाधीन सौख्य को पा करके, वे निज आत्मा में बसते हैं।
उन मुनि को उत्तम संयम को, हम हृदय कमल में धरते हैं।।६।।
जो मुनिवर बारह तप द्वारा, निज काय तपाते ही रहते।
वे तन को कृश करते फिर भी, आत्मा को हृष्ट पुष्ट करते।।
वे मोक्ष हेतु सब कर्मों को निर्जीर्ण स्वयं कर देते हैं।
उन मुनि को उत्तम तप को भी हम हृदय कमल में धरते हैं।।७।।
मुनिवर ही भव्यजनों को प्रासुक, रत्नत्रय का दान करें।
वो ही है उत्तम त्याग कहा, ऋषियों ने परमागम में खरे।
आहार व औषधि शास्त्र अभय इनको भी देना शिवहेतू।
उन मुनि को त्यागधर्म को चित में, धारूं ये भवदधिसेतू।।८।।

त्रैलोक्यसंपदमपीह ददाति शीघ्रं। देहेऽपि निर्ममरुचिः स अकिंचनः स्यात्।।
ध्यायन् स्वमेव गिरिगह्वरके हि तिष्ठेत्। तं योगिनं हृदि दधे ह्यपरिग्रहं च ।।९।।
ब्रह्मस्वरूप इह स्वात्मनि चर्यते यो। संघेऽप्यसौ वसति सद्गुणसंपदाप्त्यै।।
त्रैलोक्यपूज्यमपि सूत्तमधर्ममीडे। तं योगिनं हृदि दधेऽपि च ब्रह्मचर्यं।।१०।।

अनुष्टुप्- **सिद्धिप्रासाद-निःश्रेणी-पंक्तिवत् भव्यदेहिनां।**
दशलक्षण-धर्मोऽयं, नित्यं चित्तं पुनातु नः।।१।।
हे धर्मकल्पवृक्ष! त्वां, वंदे भक्त्या त्रिशुद्धितः।
'ज्ञानमत्या' समं मह्यं, स्वर्गमोक्षफलं दिश।।२।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! दसलक्खण-धम्मभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, णिच्छयववहार-मोक्खमग्ग-सेढिभूदाणं उत्तमखमा-मद्दव-अज्जव-सउच्च-सच्च-संजम-तव-चाग-आकिंचण-बंभचेर-णाम-दसलक्खण-**

त्रिभुवन की संपति भी देता यह उत्तम आकिंचन्य धरम।
नहिं मेरा किंचित् तन में भी निर्ममता ये ही आकिंचन।।
ऐसे मुनि पर्वत शिखर गुफा में शुद्धात्मा को ध्याते हैं।
उन मुनि को आकिंचन को भी हम हृदय कमल में भाते हैं।।९।।

जो ब्रह्मस्वरूप निजात्मा में चर्या करते सुस्थिर होकर।
सद्गुणसंपत की प्राप्ति हेतु मुनिसंघ में रहते श्रुत तत्पर।।
त्रैलोक्य पूज्य भी उत्तम ब्रह्मचर्य इसको नित नमते हैं।
उन मुनि को ब्रह्मचर्य वृष[1] को भी हृदय कमल में धरते हैं।।१०।।

ये सिद्धि महल की सीढ़ी हैं भव्यों के हेतू दशलक्षण।
ये धर्म हमारा चित्त पवित्र करे वर पावन दशलक्षण।।
हे धर्म कल्पतरु! त्रयशुद्धी युत भक्ती से वंदूं तुमको।
"सज्ज्ञानमती" के साथ स्वर्ग अरु मोक्ष सुफल देओ मुझको।।११।।

अंचलिका-

हे भगवन् ! इच्छा करता हूँ दशलक्षण उत्तम धर्मों की।
भक्ती का कायोत्सर्ग किया उसको आलोचन करने की।।
निश्चय व्यवहार द्विविध वृष शिवपथ में चढ़ने की सीढ़ी हैं।
ये उत्तम क्षमा व मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप हैं।।१।।

---

१. धर्म।

धम्माणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां.........पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, कायोत्सर्ग व थोस्सामिस्तव करके पृ. २७७ से पंचगुरुभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, कायोत्सर्ग व थोस्सामिस्तव, पुनः पृ.१३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां........समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, कायोत्सर्ग, थोस्सामिस्तव, पुनः पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां.........पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पुनः पृ. २७७ से पंचगुरुभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां.........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ बार महामंत्र का जाप्य, थोस्सामिस्तव पुनः पृ.१३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु दशलक्षणपर्वक्रियायां......समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव, पुनः पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

पंचमेरुव्रत या पुष्पांजलिव्रत

भादों सुदी पंचमी से नवमी तक पांच दिन पुष्पांजलि व्रत किया जाता है, इसे पंचमेरुव्रत भी कहते हैं क्योंकि इन पांचों दिन पांचों मेरु की पूजा एवं जाप्य करने का विधान है। ऐसे ही हरिवंशपुराण आदि में मेरुपंक्तिव्रत करने का भी विधान है।

इन पंचमेरु व्रतों के दिन या पंचमेरु की वंदना के समय 'पंचमेरु वंदना' क्रिया कर सकते हैं।

पंचमेरु वंदना क्रिया

नमोऽस्तु पंचमेरुवंदनायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पृ. ५ से सामायिक दंडक पढ़कर २७ उच्छ्वास में जाप्य करके पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु पंचमेरुवंदनायां.......पंचमेरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, कायोत्सर्ग और थोस्सामिस्तव करके पंचमेरुभक्ति पढ़ें।)

वर त्याग अकिंचन ब्रह्मचर्य-नामा ये दशविध धर्म कहे।
मैं नित्यकाल अर्चूं पूजूं वंदूं भक्ती से नमूं इन्हें।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय होवे मम बोधिलाभ होवे।
हो सुगतिगमन व समाधिमरण मुझको जिनगुण संपति होवे।।२।।

श्री पंचमेरुभक्तिः

उपजाति छंद

श्रीपंचमेरुस्थजिनेन्द्रगेहान्, प्रणम्य बिंबानि च वीरनाथं।
तत्राभिषेकाप्तजिनाधिपांश्च, तान् पंचमेरून् किल संस्तवीमि।।१।।

पृथ्वी छंद- **सुदर्शनगिरिं स्तुवे विजयमेर्वचलमंदरान्,**
सुविद्युदनुमालिभूमिभृदनाद्यनंतात्मकान् ।
सुरेन्द्रविहितातिशायि-जिनजन्मकालोत्सवे,
सुधर्मवरतीर्थकृत्-स्नपनकैश्च पूज्यानिमान् ।।२।।
सुदर्शनमहागिरेर्भुवि सुभद्रशालं वनं,
ह्यकृत्रिमजिनालयाः सुरनुताश्चतुर्दिक्षु च।
सुरत्नमयमूर्तयो जिनवरस्य पुण्यप्रदा,
नमोस्तु सततं भवाब्धितरणाय ताभ्यो मुदा।।३।।
भुवः शतक पंचयोजनगतं वनं नंदनं,
विचित्रजलयंत्रभृज्जलभृतः सुवाप्योऽत्र च।

श्री पंचमेरु भक्तिः (*चौबोल छंद-पद्यानुवाद*)

पंचमेरु के श्री जिनगृह उनमें स्थित जिन प्रतिमा को।
वीर प्रभु को, मंदर पर अभिषेक प्राप्त सब जिनवर को।।
भक्तिभाव से नमस्कार कर पंचमेरु संस्तवन करूं।
जिनगृह प्रतिमा को वंदन कर भव भव संकट शीघ्र हरूं।।१।।
प्रथम सुदर्शन विजय अचल मंदर विद्युन्माली पर्वत।
ये जिनवर के जन्मकल्याणक में देवों कृत अतिशययुत।।
आदि अंत से रहित धर्म तीर्थंकर के अभिषव जल से।
पूज्य रूप को प्राप्त मेरुवों की करूं स्तुति भक्ति से।।२।।
महासुदर्शन पर्वत की पृथ्वी पर भद्रशाल वन है।
अकृत्रिम जिन भवन देवनुत चार चतुर्दिश में सोहें।।
सुरत्नमणिमय जिन प्रतिमा अनुपम शुभ पुण्य प्रदान करें।
नमोऽस्तु उनको सदा हर्ष से भव समुद्र से पार करें।।३।।
पृथ्वी तल से पांचशतक योजन ऊपर नंदनवन है।
उनमें हंस मयूरयंत्रयुत शुचि जलभरी वापियां हैं।।

त्रिशालपरिवेष्टिताः कनक-रत्न-मालाध्वजैः,
सुवर्णघटधूपकुंभ-जिनचैत्यवृक्षैर्युताः।।४।।
अनंत-भव-संचितां सकल-कर्म-राशिं क्षणात्,
दहंति भविकस्य चैत्यनिलयाश्चतुर्दिग्भवाः।
सुरेन्द्र-मुनि-वृंद-चक्रि-धरणेन्द्र-कृद्वंदनाः,
विभांति च गृहे गृहेऽष्ट-शत-मूर्तयो नौमि ताः।।युग्मं ५।।
द्विषष्टिकसहस्रपंचशतयोजनस्योपरि,
सुसौमनसनामके जिनगृहाश्चतुर्दिग्भवाः।
सुरासुरगणार्चिता गणधरादिकैः संस्तुताः,
नमामि किल भक्तितः सकलतापशान्त्यै मुदा।।६।।
सुपांडुकवनस्य योजनसहस्रषट्त्रिंशति,
जिनेन्द्र-भवनानि भांति मणिरत्नयुक्तोरणैः।
विचित्रविभवैश्च साष्टशतमंगलद्रव्यकैः।
दधे हृदि जिनांश्च नौमि निलयांश्चतुर्दिग्भवान्।।७।।

तीनसाल वेष्टित मंदिर में कनक मणीमय मालाएँ।
ध्वजा कनक घट धूप कुंभ सिद्धार्थ चैत्यतरु भी सोहें।।४।।

भव अनंत में संचित भी संपूर्ण कर्म राशि क्षण में।
चतुर्दिशा के चार जिनालय, भव्य जनों की भस्म करें।।
सुरेन्द्र मुनिगण चक्रवर्ति धरणेन्द्रादिक नित उन्हें नमें।
प्रतिमंदिर में इकसौ अठ प्रतिमाओं को हम भी प्रणमें।।५।।

साढ़े बासठ हजार योजन जाकर वन सौमनस कहा।
वहं भी सुर असुरादिक पूजित चउदिश में चउभवन महा।।
गणधरादि से संस्तुति की गई जिन प्रतिमा को हर्षितमन।
सकल ताप के शांति हेतु भक्तीपूर्वक हम करें नमन।।६।।

उसके छत्तीस हजार योजन ऊपर पांडुकवन सोहे।
मणि रत्नों के तोरण से युत चउदिश में चउ जिनगृह हैं।।
अष्ट महामंगल द्रव्यादिक प्रातिहार्य वैभव उनमें।
उन प्रतिमा को हृदि में रखकर जिनगृह जिनकृति वंदूं मैं।।७।।

अनुष्टुप छंद

आयतोत्तुंग-विष्कंभाश्चतुस्त्रिद्विशतानि च।
क्रोशैर्मानं वरं मध्यं तदर्धमवरार्धकं।।८।।
एतज्जिनौकसां मानं, सहस्रद्वयस्तकैः,
तुंगा अष्टोत्तरैर्नौमि शतच्छायाः प्रतिगृहं।।९।।
उत्तमा भद्रशालेषु, नंदनेषु जिनालयाः।
सौमनसेषु मध्याः स्युः जघन्याः पांडुकेषु च।।१०।।

(त्रिभिः कुलकं)

लक्षयोजनमुत्तुंगः सुमेरुस्ते चतुर्नगाः,
ऊर्ध्वं तेषां सहस्राणि चतुरशीतिसंमिताः।।११।।

व्यासं दशसहस्राणि मूलं सहस्रयोजनं,
तथा चतुर्नगानां च भद्रशालं वनं भुवि।।१२।।युग्मं।।

चतुर्नगेषु पृथ्वीतः पंचशतकयोजनं,
गत्वा नंदनमानंदं भव्यानां वितनोति यत् ।।१३।।

कोश चार सौ लंबे दो सौ चौड़े ऊंचे तीन शतक।
उत्तम ये हैं, मध्यम दो सौ लंबे चौड़े एक शतक।।
कोश डेढ़ सौ ऊँचे जानो जघन्य का भी इससे अर्ध।
लंबे क्रोश शतक ऊंचे पचहत्तर चौड़े कहे पचास।।८।।

प्रत्येकों जिनभवनों में जिनप्रतिमाएं हैं इक सौ आठ।
दोय हजार हाथ ऊंची हैं वंदन करूं नमाकर माथ।।९।।

भद्रशाल नंदनवन के चैत्यालय हैं उत्कृष्ट प्रमाण।
मध्यम हैं वन सौमनसों के जघन्य पांडुक वन के जान।।१०।।

एक लाख योजन ऊंचा है सुमेरु पर्वत सुंदरतम।
तथा चार मेरू हैं ऊंचे चौरासी हजार योजन।।११।।

चौड़ाई है दश हजार की पृथ्वी में जड़ एक हजार।
ऋषिगण कहते इक योजन में क्रोश कीजिए दोय हजार।।१२।।

तथा चार मेरू में भी हैं, भद्रसाल वन पृथ्वी पर।
भू से जाकर पांच शतक योजन नंदनवन आनंदकर।।१३।।

उपरि पंचपंचाशत् सहस्रेषु च पंचसु,
शतेषु योजनेषु स्यात् सौमनसं वनं शुभं।।१४।।

ततः परं सहस्रं स्यादष्टविंशतिसंमितं,
पाडुकं वनमाख्यातं जिनस्नपनहेतुकं।।१५।।

एकषष्टि-सहस्राणि योजनानि विभांति ये,
नाना-वर्णैर्विचित्राश्च मेरवः संत्यतः परं।।१६।।

स्वर्णवर्णैर्युता ऊर्ध्वं वैडूर्यमणिचूलिका।
चत्वारिंशदसौ तुंगा चतुर्योजनमग्रिमे।।१७।।

आर्यास्कंधः छंद

मंदारचूतचंपक - चंदनघनसारपूगप्रभृतिसुरवृक्षैः।
चारणर्षिगणविहरण-विहगकलस्वनमधुरैः रुचिरवनानि।।१८।।

भुजंगप्रयातं छंद:

वने पांडुके कोण ईशानमध्ये, शिला पांडुका तीर्थकृद्भारतानां।
सुजन्माभिषेकाय सिद्धा सुवर्णा, स्तुवे जन्मकल्याणमाप्तान् शिलां च।।१९।।

साढ़े पचन हजार योजन ऊपर सोमनसं वन है।
सहस अठाइस योजन पर जिन न्हवन हेतु पांडुकवन है।।१४-१५।।
सुमेरु पर्वत इकसठ हजार योजन तक नाना रंग के।
विविध प्रकार मणी रत्नों से रंग विरंगित चमचमके।।१६।।
उससे ऊपर कनक वर्णमय तथा चूलिका नीलम की।
ये ऊँची चालिस योजन की शिखर में योजन चार कहीं।।१७।।
चंपक आम्र अशोक सुचंदन, पारिजात घनसार महान् ।
श्रीफल केला लौंग सुपारी जावित्री नारंगी जान।।
इत्यादिक सुर कल्पवृक्ष से पक्षीगण कल कलरव से।
चारण ऋद्धि मुनीश्वर विहरण से वन भविजन मन हरते।।१८।।
पांडुक वन में विदिशा के ईशान कोण में शिला कही,
पांडुक नामा कनकमयी है, प्रसिद्ध जग में पूज्य कही।
भरतक्षेत्र के तीर्थकरों का जन्माभिषेक हो इस पर,
जन्मोत्सवविधि प्राप्त जिनों को शिला को भी वंदूं रुचिकर।।१९।।

विदिश्यग्नितः पांडुना कंबलास्ति, सुपश्चिमविदेहस्य तीर्थंकराणां।
सुजन्माभिषेकात् पवित्रा सुरूप्या, स्तुवे तां शिलां सर्व-तीर्थंकराश्च।।२०।।
विदिङ्नैऋते यास्ति रक्ताख्ययासौ, शिलैरावतोद्भूततीर्थंकराणां।
सुजन्माभिषेकात् सुपूतां शिलां तां, त्रिकालोद्भवान् नौमि सर्वाञ्जिनांश्च।।२१।।
मता रक्तपूर्वा शिला कंबलास्ति, सुवायव्यदिक्-प्राग्विदेहोद्भवानां।
जिनानां हि कल्याणकाले पवित्रां, शिलां तीर्थकर्तृंश्च वंदे विशुद्ध्यै।।२२।।
शिला अर्धचन्द्रैर्निभा, योजनानां, शतैर्विस्तृतास्ताश्च पंचाशदष्टौ।
सुदीर्घोदया सिंहपीठास्त्रयोऽत्र, सुमध्येऽभिषिक्तान् जिनांस्तान् प्रणौमि।।२३।।

उपेन्द्रवज्रा छंद:

द्वीपे द्विसार्धे भुवि पंच शैलाः, अशीतिजिनसद्मसु तेषु चापि।
स्तूपे मदस्तंभसुरद्रुमेऽपि, नमामि बिंबानि जिनेश्वराणां।।२४।।

वहीं विदिक् आग्नेय दिशा में पांडुकंबला रजतमयी,
अपर विदेहज तीर्थकरों के जन्म न्हवन के लिए सही।
अतः सभी तीर्थंकर जिनको तथा पवित्र शिला को भी,
वंदन करते प्रमुदित मन से ऐसा फल हो मुझको भी।।२०।।
नैऋत विदिशा में है रक्ता नाम शिला तपनीय समा,
ऐरावत के तीर्थकरों का जन्माभिषेक हो सुषमा।
भूत भविष्यत् वर्तमान के त्रैकालिक जिनराजों को,
नमूं सदा मैं तथा पवित्र शिला को भी मम मन शुचि हो।।२१।।
वायव्य दिशि लाल वर्ण की रक्तकंबला शिला अहो!
पूर्व विदेहक्षेत्र के तीर्थकरों का उस पर अभिषव हो।
जन्मकल्याणक उत्सव प्राप्त जिनों को पूत शिला को भी,
मनः शुद्धि के हेतु नमूं मैं पाऊं झटिति यही गती।।२२।।
सभी शिलायें अर्धचन्द्र सम सौ योजन की हैं लम्बी,
पचास योजन चौड़ी मोटी योजन से ही आठ कहीं।
उन पर मध्य सिंहासन दो भद्रासन पर सौधर्म ईशान,
मध्यसिंहासन पर अभिषव को प्राप्त जिनों का करूं नमन।।२३।।
ढाई द्वीप में मनुजोत्तर नग के भीतर ही मेरू पांच,
उन पर अस्सी चैत्यालय हैं सब में प्रतिमा इक सौ आठ।
मानस्तंभ स्तूप चैत्य सिद्धार्थ वृक्ष आदिक सबमें,
और जहां भी जिनप्रतिमा हैं भाव भक्ति से वंदूं मैं।।२४।।

तीर्थंकराणामभिषेकवार्भिः पूता नगेन्द्रा नृसुरासुरेन्द्राः।
ज्योतिष्कदेवाश्च मुदा नु तेषां, प्रदक्षिणां ते विदधत्यजस्रं।।२५।।

स्कंध छंदः

विदेहभरतैरावत-कर्मभूमयः पंचदशोक्तास्तासु।
सप्तत्यधिकशतानि च, तीर्थभृतस्तान् स्तुवे वरा गणनेयं।।२६।।

पृथ्वी छंदः

सुरेन्द्रकृतसिंधुरो धवलवर्ण ऐरावतः,
चतुःप्रमितलक्षयुक् कथित आगमे क्रोशतः।
सरांसि रदनेषु तस्य कमलानि तेषु क्रमात्,
प्रतिच्छदमपीति देववनिताः प्रनृत्यंत्यहो।।२७।।
पयोनिधिपयःप्रपूर्णमणिरत्नघटपंक्तिभिः,
जिनेन्द्रगुणराशिकीर्तिधवलौघपुंजीकृतैः।
अहो! नु विबुधा वितर्क्य भुवनेऽपि तन्यादिति,
प्रभोरभिषवच्छलाद् विमलकीर्तिमातेनिरे।।२८।।

तीर्थकरों के स्नपन जल से पवित्र पर्वत पूज्य हुये,
सौधर्मेन्द्र मनुज विद्याधर ज्योतिष देव सूर्य शशि ये।
प्रदक्षिणा अतएव कर रहे नितप्रति यह वितर्क मन में,
है मुझको क्योंकि रजकण भी जिन स्पर्श से पूज्य बनें।।२५।।
पंच विदेह पंच ऐरावत पंच भरत की पंद्रह ये,
कर्मभूमि अरु पण विदेह के इक सौ साठ हैं भेद कहे।
इक सौ सत्तर कर्मभूमि के अधिकाधिक इक सौ सत्तर,
तीर्थंकर होते हैं उनको नमोऽस्तु मुद से अंजलि कर।।२६।।
सौधर्मेन्द्र का रचित धवल ऐरावत हाथी सुंदरतम,
चार लक्ष कोश का उन्नत विशाल उसके बत्तीस दंत।
दंत दंत पर बने सरोवर सरवर में बहु कमल खिले,
कमल कमल के पत्र-पत्र पर स्वर्ग अप्सरा नृत्य करें।।२७।।
दुग्ध सिंधु के जल से पूरित मणि रत्नों के रुचिर कलश,
जिनवर के गुण का उज्जवल यश समूह मानो पंजीकृत।
देव इन्द्र उस यश को त्रिभुवन में फैले इसलिए हि क्या,
घट से प्रभु अभिषेक बहाने धवल कीर्ति को लहराया।।२८।।

घटस्य वदनावगाहजठरं मतं योजनैः,
तदेक- वसु- दिक्प्रमैर्वसुयुतैः सहस्रैर्घटैः।
कृताभिषवनोच्छलद्धवल-दुग्ध-धारांबुधौ,
निमज्जनविधिं व्यधुः नृसुरभाक्तिकाः हर्षतः।।२९।।
प्रसन्नमनसः सुराः सवनकालमाश्रित्य ते,
ह्यनेकविधनृत्यगानजयघोषमातन्वते।
सुरेन्द्रवनितादयो विविध-पुष्पदीपादिकैः,
सुपूजनमपि स्तुतिं मुनिगणा मुदा कुर्वते।।३०।।
प्रभो! जगति कोऽपि किं वृजति तेऽप्यननुकूलतां,
शरण्य! शरणं त्वमेव विषमात् समं तन्यते।
जनस्य सकलं जगत् वशमवश्यमापद्यते,
यदीश! तव पादपद्मयुगलं समाश्रीयते।।३१।।
जयेति जय वीर! धीर! भगवन्! महावीर! भो!,
मुनीन्द्रहृदयाब्जसूर्य! भविकौमुदीचंद्रमः!

कलशों का मुख चार कोश है मध्यभाग में सोलह कोश,
ऊँचे बत्तिस कोश घड़े ये एक हजार आठ परिमित।
उन घट से हुए स्नपन का पय उछला दुग्धसमुद्र हुआ,
नर सुर इन्द्र भक्ति से हर्षित उसमें बहु स्नान किया।।२९।।
प्रमुदित मन हो देव सभी अभिषेकोत्सव में आते हैं,
विविध-विविध गुणगान नृत्य कर जय-जय घोष मनाते हैं।
देव-देवियाँ विद्याधर बहु पुष्प दीप धूपादिक से।
पूजन करते हैं ऋषिगण भी मुदितमना स्तुति करते।।३०।।
प्रभो! न जग में कोई ऐसा, जो न आपके हो अनुकूल।
शरण आप ही हो शरण्य! मम विषम वस्तु करते समतुल्य।।
अधिक और क्या सकल जगत, निश्चित उस जन के वश होवे।
यदि तव पाद कमल का वह, जन भक्ति से आश्रय लेवे।।३१।।
जय जय वीर! धीर! भगवन्! भो! जय जय हे महावीर प्रभो!
हे मुनि-जन-हृदयाम्बुज भास्कर! भव्य कुमुदनीचंद्र! विभो!

सुमेरुकृतजन्मकालसवनं सुलब्धं त्वया,
नमोऽस्तु भगवन्! नमोऽस्तु जिनवर्धमानाय ते।।३२।।
दिशेषु-जलधिप्रमा जिनगृहा इहाकृत्रिमाः,
चतुर्विधसुरालयेऽपि भुवनत्रये ये नृभिः।
कृताश्च जिनमूर्तयोऽतिशयपंचकल्याणिकाः,
भुवोऽपि च जिनाश्च तांश्च किल ताश्च तास्तान् स्तुवे।।३३।।
सुदर्शनविशुद्धिकादिशुभभावनाषोडश-
क्षमादिदशधर्मसूत्तमविधैः सुरत्नत्रयैः।
उपार्ज्य शुभतीर्थकं स्नपनमाप्नुवन् ये गिरौ,
त एव वितरंतु सुज्ञमतिमिष्टसिद्धिं च मे।।३४।।
इत्थं मेरुसुदर्शनोऽथ विजयो नाम्नाचलो मंदरः,
विद्युन्मालिनगश्च येऽज्ञमतितः स्तवनं हि तेषां कृतं।
ये भक्त्या सुपठंति तैः खलु गिरौ स्नांन्प्रपद्याचिरात्,
अर्हं‘ज्ञानवती’च सिद्धपदवी त्वत्संपदा श्रीयते।।३५।।

जन्म महा अभिषेकोत्सव प्रभु, प्राप्त किया मंदरगिरि पर।
नमोऽस्तु भगवन्! नमोऽस्तु, तुमको वर्धमान प्रभु हे जिनवर।।३२।।
मध्यलोक के चार शतक, अट्ठावन अकृत्रिम मंदिर।
चउविध देवभवन के त्रिभुवन, के सब अकृत्रिम जिनघर।।
नरकृत कृत्रिम भी, अरु पंच-कल्याणक भू अतिशय भूमी।
करूं मैं संस्तुति जिनगृह पुण्य, भूमि जिनवर जिनप्रतिमा की।।३३।।
दर्श विशुद्ध्यादिक सोलह कारण, शुचि भाव भावना से।
क्षमादि उत्तम धर्म तथा, रत्नत्रय की उपासना से।।
पुण्य तीर्थंकर प्रकृति बंध कर, गिरि पर न्हवन को प्राप्त हुए।
वे ही मुझको सुज्ञमती दें, ईप्सितार्थ को सिद्ध करें।।३४।।
मेरु सुदर्शन विजय अचल, मंदर विद्युन्माली नग की।
“अज्ञमती” मैंने इस विधि, भक्तीवश स्तुति रचना की।।
भक्ती से जो पढ़ते वे गिरि-पर अभिषेक प्राप्त करके।
जिनगुण संपत् सह अर्हंत, “ज्ञानमति” मुक्ति श्री लभते।।३५।।

अंचलिका **—इच्छामि भंत्ते! पंचमेरुभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्हि मज्झलोए अड्ढाइज्जदीवमज्झट्ठिदपंचमेरुपव्वदाणं भद्द-सालणं-दणसोमण-सपांडुकवणेसु चउचउदिसासु असीदिजिणायदणाणं पांडुवण-विदिसासु तित्थयरण्हवणपवित्तपांडुपहुदिसिलाणं जिणजिण-घरवंदणट्ठ-विहरमाण-चारणरिद्धिजुत्तरिसीणं च णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

इति पंचमेरुभक्तिः

जंबूद्वीप वंदना

जंबूद्वीप के अठत्तर जिनमंदिरों की वंदना करते समय जंबूद्वीप वंदना क्रिया कर सकते हैं।

जंबूद्वीपवंदनाक्रिया

नमोऽस्तु जंबूद्वीपजिनवंदनायां.......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ५ से सामायिक दंडक पढ़कर २७ उच्छ्वास में नव बार महामंत्र का जाप्य करके पृ. ६ से थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ११३ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

अंचलिका-

यावत् मंदर रवि शशी का है जग में वास।
पंच मेरु की संस्तुति तावत् लहो विकास।।
हे भगवन्! इच्छा करता मैं पंचमेरु की भक्ति का।
कायोत्सर्ग किया मैंने उसके आलोचन करने का।।
इस ही मध्यलोक में ढाई द्वीपों के बीचों बिच में।।
पांच मेरु गिरिवर स्थित हैं मंदरगिरि सबके मधि में।।१।।
इनमें भद्रसाल नंदन वन सौमनसं पांडुक वन हैं।
पांचों गिरि के चउ चउ दिश में अस्सी जिनवर मंदिर हैं।।
पांडुकवन की विदिशाओं में पांडुक आदि शिलायें हैं।
तीर्थंकर शिशु के जन्माभिषेक से पावन मानी हैं।।२।।
जिनगृह वंदन हेतु वहां चारण ऋषि विचरण करते हैं।
पंचमेरु को हम नित अर्चें पूजें वंदें नमते हैं।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं मम जिनगुणसंपति होवे।।३।।

नमोऽस्तु जंबूद्वीपजिनवंदनायां........जंबूद्वीपभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव, पुनः जंबूद्वीप भक्ति पढ़ें।)

जम्बूद्वीप भक्ति

उपजाति छंद

सुदर्शनाद्रिं प्रणिपत्य मूर्ध्ना, तत्रस्थितान् षोडशचैत्यगेहान् ।
तेषु स्थिताश्च प्रतिमा जिनानां, वंदे विशुद्ध्या शिवसौख्यसिद्ध्यै।।१।।
चतुःप्रमाः ये गजदंतशैलाः, तेषु त्रिलोकाधिपमंदिराणि।
तत्राप्तरूपाणि नमोऽस्तु तेभ्यः, स्वात्मोत्थसौख्यं मम शीघ्रमस्तु।।२।।
जिनालयाः षट्कुलपर्वतेषु, ह्यकृत्रिमाः रत्नमयाः विरेजुः।
जैनेन्द्रबिम्बानि विभांति तेषु, नमामि भूत्यै किल तानि मोदात् ।।३।।
विदेहदेशस्थितषोडशेषु, वक्षारशैलेषु जिनालयाः स्यु।
तत्र स्थितास्ताः प्रतिमाः प्रवंदे, भवाग्निशान्त्यै शिरसा त्रिसंध्यं।।४।।

जंबूद्वीपभक्ति (पद्यानुवाद)

मेरु सुदर्शन गिरि को मस्तक नत होकर के प्रणमन कर।
उस पर स्थित सोलह जिनगृह सब गृह में प्रतिमा मनहर।।
उन सब जिनगृह जिनप्रतिमा को त्रय शुद्धी से वंदूं मैं।
भक्तिभाव से नितप्रति प्रणमूँ शिवसुख सिद्धी हेतू मैं।।१।।
विदिशाओं में गजदंताचल चार कहे हैं सुन्दरतम् ।
उनमें त्रिभुवनपति जिनवर के मंदिर शोभें अति उत्तम।।
उन मंदिर में आप्तप्रभू की प्रतिमाएं शाश्वत शोभें।
नमोऽस्तु उन सबको नित मेरा स्वात्मजन्य सुख मम होवे।।२।।
षट्कुल पर्वत पर चैत्यालय रत्नमयी शोभें शाश्वत।
उन गृह में प्रतिमाएं इक सौ आठ प्रमाण सभी में नित।।
अकृत्रिम जिनबिम्ब मनोहर उनको मुद से नमूं सदा।
शिव सुख विभव प्राप्ति के हेतू षट् जिनमंदिर नमूं मुदा।।३।।
पूर्व और पश्चित विदेह के शुभ वक्षारगिरी षोडश।
उन पर षोडश जिनमंदिर हैं अकृत्रिम रत्नों के शुभ।।
उनमें राजित जिनवर प्रतिमा को वंदूं त्रयकाल मुदा।
भव भय अग्नि शांत करने को शिर नत हो मैं नमूं सदा।।४।।

ये प्राग्विदेहेषु सुपश्चिमेषु, द्विःषोडशप्राकृतिकाः सुदेशाः।
सर्वेषु मध्ये विजयार्ध-शैलाः, तत्रस्थ-जैनेन्द्रगृहाणि वंदे।।५।।
ऐरावते यौ भरतेऽपि कांतौ, रूप्याचलौ द्वौ च तयोः जिनानां।
निकेतने तत्र जिनेश्वरार्चाः, मनःप्रसत्त्यै किल ताः प्रणौमि।।६।।
जम्बूद्रुमे शाल्मलि-शाखिनि द्वौ, चैत्यालयौ तौ प्रणमामि नित्यं।
तत्रस्थचैत्यानि भवांतकानां, संस्तौमि भक्त्या भवदुःखशान्त्यै।।७।।

आर्या छंदः

मेरौ षोडशशैले, गजदंते ये चतुःप्रमाः जिननिलयाः।
कुलशैले षड्मान्या, विदेहजे वक्षारगिरिषु ते षोडश।।८।।
रूप्याद्रिचतुस्त्रिंशत्, तेषु गृहाः जंबूद्रौ शाल्मलिवृक्षे।
एतान् सर्वान् मान्यान्, अष्टासप्तति-जिनालयान् प्रणमामि।।९।।
मुनिवंदितपादसरोजयुगं, सुरनायकनागनरेन्द्रनुतं।
अकृतं भुवनत्रयजैनगृहं प्रणमामि मनःशुद्ध्यै सततं।।१०।।

पूर्वापर बत्तिस विदेह में बत्तिस रजताचल पर्वत।
उन पर बत्तिस जिन चैत्यालय अकृत्रिम शोभें संतत।।
उनमें राजित जिनवर प्रतिमा भक्ति भाव से वंदूं मैं।
भव संताप नाश मम होवे त्रिकरणशुचि से अर्चूं मैं।।५।।
भरतक्षेत्र अरु ऐरावत में दो विजयारध पर्वत हैं।
उन पर जिनमंदिर दो राजें भावभक्ति से वंदूं मैं।।
उन मंदिर में जिनवर प्रतिमा वंदन करूं सदा शुचि से।
मन प्रसन्नता हेतु नमूँ मैं भव दुख नाश करूं झट से।।६।।
जम्बू शाल्मलि दो वृक्षों पर दो जिन चैत्यालय शाश्वत।
उनमें जिनवर की प्रतिमाएं रत्नमयी शोभें नितप्रति।
भवदुःख अंतक जिनवर के प्रतिबिम्ब उन्हें मैं नमूँ सदा।
भवदुःख शांति हेतु भक्ती से सतत संस्तवन करूं मुदा।।७।।
मेरु सुदर्शन के षोडश जिनगृह गजदंत गिरी के चार।
कुलगिरि के षट् कहै विदेह क्षेत्र के षोडशगिरि वक्षार।।८।।
रजताचल के चौंतिस जिनगृह जंबू शाल्मलि के दो जान।
ये सब अठहत्तर चैत्यालय उनको नमूं सदा सुखदान।।९।।
मुनिगण वंदित पाद सरोरुह सुरपति नाग नरेन्द्र नुतं।
त्रिभुवन जिनगृह शाश्वत जितने मनः विशुद्धि हेतु प्रणमन।।१०।।

विविधैः शुामंगलवस्तुयुतैः, घटमंगलतोरणधूपघटैः।
शुशुभे जिनसंद्म सदानुपमं, प्रणमामि मनःशुद्ध्यै सततं।।११।।

अनुष्टुप्

चतुर्विंशतितीर्थेशा, भारते वृषभादयः।
ऐरावतेऽपि ये जातास्तेभ्यो नित्यं नमोऽस्तु मे।।१२।।

सीमंधरादिचत्वारो, जिनेन्द्रास्तान् नमाम्यहं।
वर्तमानान् विदेहेषु, केवलिनो मुनयश्च तान् ।।१३।।
जम्बूद्वीपेऽत्र यावन्तो-ऽर्हद्गणभृद्-यतीश्वराः।
सिद्धाः सिद्ध्यंति सेत्स्यंति, तान् तत्क्षेत्राणि च स्तुवे।।१४।।
पंचकल्याणमेदिन्यः, सातिशयस्थलानि च।
वंदे कृताकृतांश्चापि, जिनचैत्यजिनालयान् ।।१५।।

मंदाक्राता छंद:

अंतातीता जिनवरगृहा धातकी-पुष्करार्धे-।
ष्विष्वाकारे सुरुचकगिरौ मानुषांके प्रभूताः।।
पूज्या ये कुंडलगिरिवरे द्वीपनंदीश्वरे च।
तत्रस्थान् तान् प्रतिदिनमहं जैनगेहान् प्रवंदे।।१६।।

मंगल द्रव्य विविध तोरण घट धूप कुंभ मंगल शोभें।
मणिमाला से अनुपम जिनगृह मनः शुद्धिकृत प्रणमूं मैं।।११।।
भरतक्षेत्र में वृषभ आदि चौबिस तीर्थंकर का वंदन।
ऐरावत में भी चौबिस ही उनको मेरा नित्य नमन।।१२।।
विदेहक्षेत्र में सीमंधर युगमंधर बाहु सुबाहू जिन।
वर्तमान केवलि श्रुतकेवलि ऋषिगण आदिक उन्हें नमन।।१३।।
जंबूद्वीप में जितने भी तीर्थंकर गणधर औ यतिगण।
सिद्ध हुए होते औ होंगे उनको उन क्षेत्रों को नमन।।१४।।
पंचकल्याणक भूमि तथा अतिशययुत क्षेत्र सभी प्रणमूं।
कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमा जिनगृह को भी नित्य नमूं।।१५।।
धातकि पुष्करार्ध द्वीपों में इष्वाकार गिरी ऊपर।
मनुजोत्तर नग पर जिनगृह हैं नंदीश्वर वर द्वीप रुचिर।।
रुचकगिरी कुंडल पर्वत पर जितने जिनमंदिर राजें।।१६।।

ये त्रैलोक्ये भवनभुवने व्यंतरे स्वर्गलोके।
ज्योतिर्लोके जिनवरगृहाः संति विभ्राजमानाः।।
एते सर्वे भुवनमहिताः साधुवृन्दैः सुवंद्याः।
दद्युर्मह्यं जिनसुगुणसंपत् सदा तांश्च वंदे।।१७।।

पृथ्वी छंद- **नमोऽस्तु जिनमूर्तये सकलतापविच्छित्तये।**
नमोऽस्तु जिनमूर्तये सकलदोषसंशुद्धये।।
नमोऽस्तु जिनमूर्तये सकलसौख्य-संसिद्धये।
पुनीहि जिनदेव! मां भवभयात् हि रक्षां कुरु।।१८।।
नमोऽस्तु जिनसद्मने त्रितयलोकसंपद्भृते।
नमोऽस्तु परमात्मने सकललोकचूड़ामणे।।
नमोऽस्तु जिनमूर्तये सकलदोषविच्छित्तये।
पुनीहि मम रागमोह-सहितं मनोऽज्ञानवत् ।।१९।।

अनुष्टुप् छंद- **जम्बूद्वीपस्तुतिर्भक्त्या, क्रियते नियतं मुदा।**
भूयात् सा मेऽचिरायार्ह-ज्ज्ञानमत्यै श्रियै ध्रुवं।।२०।।

उन मंदिर के जिनबिंबों को वंदूं पाप तिमिर भाजें।।
त्रिभुवन में जो भवनवासि व्यंतर ज्योतिषगृह स्वर्गों में।
श्री जिनवरगृह शोभित होते उनमें प्रतिमा अगणित हैं।।
ये सब त्रिभुवन पूज्य जिनालय साधुगणों से वंदित हैं।
वंदूं सबको सदा मुझे वे जिनगुण संपत्ती देवें।।१७।।
नमोऽस्तु जिनप्रतिमा को मेरा सकल ताप विच्छेद करो।
नमोऽस्तु जिनप्रतिमा को मेरा सकल दोष से शुद्ध करो।।
नमोऽस्तु जिनप्रतिमा को मेरा सकल सौख्य संसिद्धि करो।
हे जिनदेव! पवित्र करो मम भव से रक्षा झटिति करो।।१८।।
नमोऽस्तु अकृत्रिम जिनमंदिर तीन लोक संपद्भर्ता।
नमोऽस्तु परमात्मन्! परमेष्ठिन्! सकललोकचूड़ामणिनाथ।।
नमोऽस्तु जिनप्रतिमा को मेरा सकल दोष विच्छेद करो।
राग मोह युत मम अज्ञानवान् मन झटिति पवित्र करो।।१९।।
जंबूद्वीप जिनालय संस्तुति, भक्ति से मैं करूं मुदा।
अर्हत् "ज्ञानमती" श्री मुझको होवे झटिति कर्म भिदा।।२०।।

अंचलिका —**इच्छामि भंत्ते! जंबूदीवभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउं, इमम्हि पढमे जंबूदीवम्हि मंदरसेले गजदंत-वक्खार-रूप्पकुलपव्वदेसु जंबूसालमलिरुक्खेसु दो भरहेरावएसु बत्तीसविदेहेसु चउतीसकम्मभूमीसु अज्जखंडेसु किट्टिमाकिट्टिमाणं सव्वजिणायदणाणं, तित्थयर-सामणणकेवली-गणहर-सुदकेवली-विविधरिद्धिजुत्त-रिसि-मुणि-जइ-अणगाराणं संतत-विहरमाण-सीमंधरादि-चउजिणिंदाणं पंचकल्लाणभूमि-अइसयखेत्ताणं च णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु जंबूद्वीपजिनवंदनायां..........सुदर्शनमेरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिपाठ, पुनः सुदर्शनमेरु भक्ति पढ़ें)

नमोऽस्तु जंबूद्वीपजिनवंदनायां.......पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिपाठ, पुनः पृ. २७७ से पंचमहागुरुभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु जंबूद्वीपजिनवंदनायां.......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिपाठ, पुनः पृ. १३६ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु जंबूद्वीपजिनवंदनायां........समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव, पुनः पृ. १४१ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

अंचलिका- भगवन! जंबूद्वीप भक्ति का कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा करना चाहूँ मैं रुचि से।।
जंबूद्वीप प्रथम यह इसमें मंदिरगिरि गजदंताचल।
रूपाचल वक्षार कुलाचल जंबू तरु शाल्मलि तरुवर।।१।।

इनमें शाश्वत जिनगृह, विदेह बत्तिस दो भरतैरावत।
चौंतीस कर्मभूमि के आर्यखंड में जिनगृह नर सुर कृत।।
तीर्थंकर केवलि गणधर श्रुतकेवली विविध ऋद्धि के ईश।
ऋषि मुनि यति अनगार तथा सीमंधर आदि चार तीर्थेश।।२।।

कर्मभूमि में पंचकल्याणक क्षेत्र व अतिशय क्षेत्र बहुत।
इन सबको मैं अर्चूं पूजूं वंदन करूं नमूं नित प्रति।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय होवे बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं मम जिनगुणसंपति होवे।।३।।

सुदर्शनमेरुवंदना

जंबूद्वीप के मध्य में स्थित सुदर्शनमेरु की प्रत्यक्ष या परोक्ष में भी वंदना करते समय निम्नलिखित लघु भक्तियों को पढ़ सकते हैं-

सुदर्शनमेरु वंदना क्रिया

नमोऽस्तु सुदर्शनमेरुवंदनायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पृ. ८ से लघु सामायिकदंडक पढ़कर २७ उच्छ्वास में ९ जाप्य करके पृ. ९ से लघु थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ७७ से लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु सुदर्शनमेरुवंदनायां..........सुदर्शनमेरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव करके सुदर्शनमेरु भक्ति पढ़ें।)

सुदर्शनमेरु भक्ति

तीर्थंकर-स्नपननीर-पवित्रजातः, तुङ्गोऽस्ति यस्त्रिभुवने निखिलाद्रितोऽपि।
देवेन्द्र-दानव-नरेन्द्र-खगेन्द्रवंद्यः, तं श्री सुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।१।।

यो भद्रसालवन-नंदन-सौमनस्यैः, भातीह पांडुकवनेन च शाश्वतोऽपि।
चैत्यालयान् प्रतिवनं चतुरो विधत्ते, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।२।।

जन्माभिषेकविधये जिनबालकानाम्, वंद्याः सदा यतिवरैरपि पांडुकाद्याः।
धत्ते विदिक्षु महानीयशिलाश्चतसृः, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।३।।

योगीश्वराः प्रतिदिनं विहरन्ति यत्र, शान्त्यैषिणःसमरसैक-पिपासवश्च।
ते चारणर्द्धि-सफलं खलु कुर्वतेऽत्र, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।४।।

ये प्रीतितो गिरिवरं सततं नमन्ति, वंदन्त एव च परोक्षमपीह भक्त्या।
ते प्राप्नुवंति किल 'ज्ञानमतिं' श्रियं हि, तं श्री सुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।५।।

अंचलिका —**इच्छामि भंत्ते! सुदंसणमेरुभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्हि मज्झलोए जंबुदीवमज्झट्ठिद-सव्वोच्चमंदरसेले भद्दसालणंदण-सोमणस-पांडुकवणेसु चउचउदिसासु सोलसजिणायदणाणं पांडुवणविदिसासु तित्थयर-ण्हवणपवित्त-पांडु-पहुदिसिलाणं जिण-जिणघरवंदणट्ठ-विहरमाण-चारणरिद्धिजुत्तरिसीणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

नमोऽस्तु सुदर्शनमेरुवंदनायां..........चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव करके पृ. ४४ से चतुर्विंशति-तीर्थंकरभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु सुदर्शनमेरुवंदनायां..........शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव करके पृ. ८४ से लघु शांतिभक्ति पढ़ें।)

नमोऽस्तु सुदर्शनमेरुवंदनायां........समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदंडक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पुन पृ. ८५ से लघु समाधिभक्ति पढ़ें।)

तीर्थंकर जन्मभूमि भक्तिः

(मंगलचतुर्विंशतिका)

(अनुष्टुप् छंद)

अयोध्या मंगलं कुर्या-दनन्ततीर्थकर्तृणाम्।
शाश्वती जन्मभूमिर्या, प्रसिद्धा साधुभिर्नुता।।१।।

ऋषभोऽजिततीर्थेशोऽप्यभिनंदनतीर्थकृत्।
श्रीमान् सुमतिनाथश्चा-नन्तनाथजिनेश्वरः।।२।।

पंचतीर्थकृतां गर्भ-जन्मकल्याणकादिषु।
इन्द्रादिभिः सदा वंद्या, वंद्यते वंदयिष्यते।।३।।

संप्रति कालदोषेण, शेषास्तीर्थंकराः पृथक्।
संजातास्ता अपिजन्म-भूमयो मंगलं भुवि।।४।।

श्रावस्ती मंगलं कुर्यात्, संभवनाथजन्मभूः।
तनुतान्मे मनःशुद्धिं, भव्यानां भवहारिणी।।५।।

कौशाम्बी मंगलं कुर्यात्, पद्मप्रभस्य जन्मभूः।
जिनसूर्यो मनोऽब्जं मे, प्रफुल्लीकुरुतादपि।।६।।

वाराणसी जगन्मान्या, मंगलं तनुतान्मम।
जन्मभूमिः सुरैः पूज्या, सुपार्श्वपार्श्वनाथयोः।।७।।

चन्द्रपुरी सुरैर्मान्या, मंगलं कुरुतात्सदा।
चन्द्रप्रभजिनेंद्रस्य, जन्मभूर्जन्मपावनी।।८।।

काकंदी मंगलं कुर्यात्, पुष्पदन्तस्य जन्मभूः।
आनंदं तनुताद् भूमौ, सर्वमंगलकारिणी।।९।।

मंगलं कुरुतान्नित्यं, जन्मभूर्भद्रकावती।
शीतलस्य जिनेंद्रस्य, मनो मे शीतलं क्रियात्।।१०।।

सिंहपुरी जगन्मान्या, मंगलं कुरुतान्मम।
श्रीश्रेयांसजिनेंद्रस्य, जन्मभूमिः शिवंकरा।।११।।

चंपापुरी जगद्वंद्या, मंगलं तनुताद् ध्रुवं।
वासुपूज्यजिनेंद्रस्य, जन्मभूमिर्नुतामरैः।।१२।।

सा कंपिलापुरी नित्यं, मंगलं कुरुतान्मम।
मच्चित्तं विमलीकुर्यात्, विमलेश्वरजन्मभूः।।१३।।

रत्नपुरी यतीन्द्राणां, मंगलं कुरुताच्च नः।
सद्धर्मवृद्धये भूयाद्, धर्मनाथस्य जन्मभूः।।१४।।

हस्तिनागपुरी नित्यं, मंगलं तनुतान्मम।
शांतिकुंथ्वरतीर्थेशां, जन्मभूमिर्जगन्नुता।।१५।।

या मिथिलापुरी शश्वत्, मंगलं कुरुतान्मम।
जन्मभूमिः प्रसिद्धाभूत्, मल्लिनाथनमीशयोः।।१६।।

मंगलं संततं कुर्यात्, राजगृही सुजन्मभूः।
मुनिसुव्रतनाथस्य, दद्यान्मे सुव्रतं त्वसौ।।१७।।

शौरीपुर्यर्द्धचक्र्याद्यैः, मान्या मे मंगलं क्रियात्।
इन्द्रादिभिः सदा वंद्या, नेमिनाथस्य जन्मभूः।।१८।।

या कुण्डलपुरी पूज्या, मंगलं कुरुताद् भुवि।
जन्मभूमिः प्रसिद्धास्ति, महावीरस्य संप्रति।।१९।।

राजधानीह सिद्धार्थ-भूपतेः साधुभिर्नुता।
नंद्यावर्तं च प्रासादं, रत्नवृष्ट्या सुमंगलम्।।२०।।

चतुर्विंशतितीर्थेशां, षोडश जन्मभूमयः।
वंद्यास्ता मंगलं कुर्युः, घ्नन्तु जन्मपरम्परां।।२१।।

दीक्षाज्ञानस्थलं पूज्यं, प्रयागश्चाहिच्छत्रकं।
संततं मंगलं कुर्यात्, पूर्णज्ञानर्द्धये भवेत् ।।२२।।

कैलाशचंपापावोर्ज-यन्तसम्मेदशृंगिषु।
निर्वाणभूमयो यास्ताः, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।२३।।

पंचकल्याणकैः पूज्या, भूमिसरोवराद्रयः।
तास्तान् ज्ञानमती याचे, दद्युः सिद्धिं च मे ध्रुवम्।।२४।।

अंचलिका—**इच्छामि भंते! तित्थयरजम्मभूमिभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्हि भरहे खेत्ते अवसप्पिणीए चउवीसतित्थयराणं गब्भ जम्म तव-केवलणाण-चउ-चउकल्लाणकपवित्त भूमीणं धणद-कदरयणवुट्टि-पहुदिसमवसरणविभवसंजुत्ताणं रिसि-मुणि-जइ-अणगार-गणिंदविंद-महिदाणं भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अच्चंति पूजंति वंदंति णमंसंति, पंचमहाकल्लाण पुज्जं करेंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

दीक्षा-नक्षत्राणि

प्रणम्य शिरसा वीरं जिनेन्द्रममलव्रतम्।
दीक्षा ऋक्षाणि वक्ष्यन्ते सतां शुभफलाप्तये।।१।।

भरण्युत्तरफाल्गुन्यौ मघा-चित्रा-विशाखिकाः।
पूर्वाभाद्रपदा भानि रेवती मुनिदीक्षणे[1]।।२।।

रोहिणी चोत्तराषाढा उत्तराभाद्रपत्तथा।
स्वातिः कृत्तिकया सार्धं वर्ज्यते मुनिदीक्षणे।।३।।

अश्विनी-पूर्वाफाल्गुन्यौ हस्तस्वात्यनुराधिकाः।
मूलं तथोत्तराषाढा श्रवणः शतभिषक्तथा।।४।।

उत्तराभाद्रपच्चापि दशेति विशदाशयाः।
आर्यिकाणां[2] व्रते योग्यान्युशन्ति शुभहेतवः।।५।।

१. प्रशस्तानीत्यर्थः। २. क्षुल्लिकानामपि।

भरण्यां कृत्तिकायां च पुष्ये श्लेषार्द्रयोस्तथा।
पुनर्वसौ च नो दद्युरार्यिकाव्रतमुत्तमाः।।६।।
पूर्वभाद्रपदा मूलं धनिष्ठा च विशाखिका।
श्रवणश्चैषु दीक्ष्यन्ते क्षुल्लकाः शल्यवर्जिताः।।७।।

इति दीक्षानक्षत्रपटलम्।

दीक्षाग्रहणक्रिया

सिद्धयोगिबृहद्भक्तिपूर्वकं लिङ्गमर्प्यताम्।
लुञ्चाख्यानाग्न्यपिच्छात्म क्षम्यतां सिद्धभक्तितः।।

अथ दीक्षाग्रहणक्रियायां......सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि-

('सिद्धानुद्धूत' इत्यादि)

अथ दीक्षाग्रहणक्रियायां......योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि-

('थोस्सामि गुणधराणं इत्यादि 'जातिजरोरुरोग' इत्यादि वा)

अनन्तरं लोचकरणं, नामकरणं, नाग्न्यप्रदानं, पिच्छप्रदानं च

अथ दीक्षानिष्ठापनक्रियायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि-

दीक्षादानोत्तरकर्त्तव्यम्-

व्रतसमितीन्द्रियरोधाः पंच पृथक् क्षितिशयो रदाघर्षः।
स्थितिसकृदशने लुञ्चावश्यकषट्के विचेलताऽस्नानम्।।
इत्यष्टाविंशतिं मूलगुणान् निक्षिप्य दीक्षिते।
संक्षेपेण सशीलादीन् गणी कुर्यात्प्रतिक्रमम्।

दीक्षा ग्रहण क्रियाविधि

बृहत्सिद्ध बृहद्योगि भक्तिपूर्वक लोचकरण नामकरण नग्नताप्रदान और पिच्छि प्रदानरूप लिंग अर्पण करें और सिद्धभक्ति पढ़कर क्रिया की समाप्ति करें।

दीक्षादानोत्तरं कर्तव्यं।

अर्थ— उस दीक्षित साधु में पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियरोध, छह आवश्यक क्षितिशयन, अदंतधावन, स्थितिभोजन, सकृद्भुक्ति, लोच, षडावश्यक, अचेलता और अस्नान इन अट्ठाईस मूलगुणों को संक्षेप से चौरासी लाख गुण व अट्ठारह हजार शीलों के साथ स्थापित करें। पुनः आचार्य उसी दिन व्रतारोपण प्रतिक्रमण करें। यदि लग्न ठीक न हो तो कुछ

अन्यदातनलोचक्रिया

लोचो द्वित्रिचतुर्मासैर्वरो मध्योऽधमः क्रमात्।
लघुप्राग्भक्तिभिः कार्यः सोपवासप्रतिक्रमः।।
अथ लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां.........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि-
('तवसिद्धे' इत्यादि)
अथ लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां........योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि-
अनन्तरं स्वहस्तेन परहस्तेनापि वा लोचः कार्यः
अथ लोचनिष्ठापनक्रियायां..........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि-
('तवसिद्धे' इत्यादि) अनन्तरं प्रतिक्रमणं कर्तव्यम्।

दिनानंतर भी प्रतिक्रमण कर सकते हैं। पाक्षिक प्रतिक्रमण में अनगारधर्मामृत में बताया है कि **''परे पुनर्व्रतारोपणादिविषयाश्चत्वारः प्रतिक्रमणाः स्युः किंविशिष्टाः! वृहन्मध्यसूरि-भक्तिद्वयोज्झिताः।''**

अर्थात् व्रतारोपणादि चार प्रतिक्रमणों में, वृहदाचार्य 'सिद्धगुणस्तुतिनिरता' से लेकर मध्याचार्यभक्ति 'देस कुल जाइसुद्धा' सहित छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं, पर्यंत दो भक्तियों को छोड़कर शेष सब पाक्षिक प्रतिक्रमणविधि ही करें। अंतर केवल इतना ही है कि प्रयोग विधि में -पाक्षिक प्रतिक्रमण क्रियायां के स्थान में ''व्रतारोपणप्रतिक्रमण क्रियायां'' इत्यादि का प्रयोग करें तथा वीरभक्ति में कायोत्सर्गं का भी प्रमाण १०८ उच्छ्वासों में ही ३६ जाप्य देवें।

तद्यथा- **या व्रतारोपणी सार्वातीचारिक्यातिचारिकी।**
औत्तमार्थी प्रतिक्रान्तिः सोच्छ्वासैरान्हिकी समा।। (अनगार)

अर्थ — व्रतारोपणी सार्वातिचारी आतिचारिकी औत्तमार्थी प्रतिक्रमणाओं में दैवसिक प्रमाण १०८ उच्छ्वासों में कायोत्सर्ग होता है।

विशेष — पाक्षिक प्रतिक्रमण प्रयोग विधि में मध्य-मध्य में पक्खियम्मि आलोचेउं पक्खिओ चउमासिओ संवच्छरिओ आदि जो प्रयोग है वह मर्यादित काल की अपेक्षा से है परन्तु यहाँ पर पक्ष, चार मास आदि कुछ दिन की मर्यादा न होकर चारों ही प्रतिक्रमण अपने सार्थक नाम से संबंधित हैं अतः जो प्रतिक्रमण हो उसके प्रयोग के मध्य-मध्य में भी इन शब्दों के स्थानों में भी परिवर्तन कर देवें। अर्थात् पक्खियम्मि आलोचेउं के स्थान में ''व्रतारोपणे आलोचेउं'' इत्यादि रूप से प्रयोग करना चाहिए।

महाव्रत दीक्षादानविधि में तत्पक्ष अथवा द्वितीयपक्ष में पाक्षिक प्रतिक्रमण पाठ करते हुए मध्य में ''वदसमिदिंदिय....'' को बोलकर पुनः व्रतारोपण करें तभी सर्वसाधुप्रतिवंदना करें'' ऐसा

बृहद्दीक्षाविधिः

पूर्वदिने भोजनसमये भाजनतिरस्कारविधिं विधाय आहारं गृहीत्वा चैत्यालये आगच्छेत् ततो बृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापने सिद्धयोगभक्ती पठित्वा गुरुपार्श्वे प्रत्याख्यानं सोपवासं गृहीत्वा आचार्य शान्ति-समाधिभक्तीः पठित्वा गुरोः प्रणामं कुर्यात्।

अथ दीक्षादाने दीक्षादातृजनः शान्तिक-गणधरवलयपूजादिकं यथाशक्ति कारयेत्। अथ दाता तं स्नानादिकं कारयित्वा यथायोग्यालङ्कारयुक्तं

जो विधान है वही व्रतारोपण प्रतिक्रमण है। यह बृहद् दीक्षा विधि सामान्य से कही गई है।

दीक्षा के बाद अन्यकाल में लोच का विधान करते हैं।

लोचो द्वित्रिचतुर्मासैर्वरो मध्योऽधमः क्रमात्।
लघुप्राग्भक्तिभिः कार्यः सोपवासः प्रतिक्रमः।।७६।।

अर्थ — दो महीने से उत्तम, तीन महीने से मध्यम व चार महीने से लोच करना जघन्य कहलाता है। उपवास और प्रतिक्रमण सहित लघु सिद्ध व लघु योगिभक्तिपूर्वक लोच करके पुनः लघु सिद्धभक्तिपूर्वक निष्ठापन करना चाहिए। अर्थात् जहाँ तक बने वहाँ तक चतुर्दशी प्रतिक्रमण के दिन ही लोच करें। यदि अन्य दिन में करें तो लुञ्च संबंधी प्रतिक्रमण को करना चाहिए। दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया ही लुञ्च प्रतिक्रमण में बताई है क्योंकि गोचार और लोच प्रतिक्रमण दैवसिक में ही गर्भित होते हैं, ऐसा वचन है।

लोच प्रयोग विधि में ''लोच प्रतिष्ठापनक्रियायां'' इत्यादि रूप से दोनों भक्ति पढ़कर ''स्वहस्तेन परहस्तेन वा लोचः कार्यः'' लोच करके लघु सिद्धभक्तिपूर्वक ''लोच निष्ठापन क्रियायां'' इति प्रयोग विधि से निष्ठापन करें।

मुनिदीक्षा विधि

दीक्षा लेने में दीक्षा को दिलाने वाले दाताजन अपनी शक्ति के अनुसार शांतिविधान, गणधरवलय विधान आदि पूजा विधान करावें। पुनः दाता—दीक्षा दिलाने वाले उन दीक्षार्थी को मंगल स्नान आदि कराकर यथायोग्य अलंकार से युक्त करके—ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी हैं तो उन्हें रंगीन वस्त्र-गृहस्थ के योग्य ऐसे न पहनावें यथायोग्य का यह अर्थ है। उनके योग्य वस्त्र पहनाकर महामहोत्सवपूर्वक जिनमंदिर में लावें। वहाँ वह देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करके वैराग्यभावना से ओतप्रोत दीक्षार्थी सभी के साथ क्षमायाचना करके गुरु के पास में स्थित होवे।

अनंतर गुरु के सामने और संघ के सामने दीक्षा की याचना करके गुरु की आज्ञा से

महामहोत्सवेन चैत्यालये समानयेत्। स देवशास्त्रगुरुपूजां विधाय वैराग्य-भावनापरः सर्वैः सह क्षमां कृत्वा गुरोरग्रे तिष्ठेत। ततो गुरोरग्रे संघस्याग्रे च दीक्षायै यांचां कृत्वा तदाज्ञया सौभाग्यवतीस्त्रीविहितस्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वदिशाभिमुखः पर्यंकासनं कृत्वा आसते, गुरुश्चोत्तराभिमुखो भूत्वा, [1]संघाष्टकं संघं च परिपृच्छ्य लोचं कुर्यात्।

अथ तद्विधिः—**बृहद्दीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्येत्यादिकमुच्चार्य सिद्ध-योगिभक्ती कृत्वा-**

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजो-मूर्तये नमः श्रीशांतिनाथाय शान्तिकराय सर्वपापप्रणाशनाय सर्वविघ्न-विनाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुकस्य (दीक्षार्थी का नाम) सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

इत्यनेन मंत्रेण गन्धोदकादिकं त्रिवारं मंत्रयित्वा शिरसि निक्षिपेत्। शान्तिमंत्रेण गन्धोदकं त्रिःपरिषिच्य मस्तकं वामहस्तेन स्पृशेत्। ततो दध्यक्षतगोमयदूर्वांकुरान् मस्तके वर्धमानमंत्रेण निक्षिपेत्-

---

सौभाग्यवती महिलाओं द्वारा बनाई गई स्वस्तिक के ऊपर श्वेतवस्त्र से प्रच्छादित करके उसके ऊपर पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंकासन से बैठे और गुरु-आचार्य-देव सभी संघ को पूछकर केशलोंच करें।

उसकी विधि—अथ बृहद्दीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग व थोस्सामिस्तव पढ़कर सिद्धानुद्धूत.....आदि सिद्धभक्ति पढ़ें। पुनः

अथ बृहद्दीक्षायां लोचस्वीकार क्रियायां................योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग, थोस्सामिस्तव करके जातिजरोरुरोग....इत्यादि योगिभक्ति पढ़ें।)

पुनः ॐ नमोऽर्हते भगवते............. इत्यादि मंत्र पढ़कर गंधोदक आदि को तीन बार मंत्रित कर दीक्षार्थी के मस्तक पर क्षेपण करें। इस शांति मंत्र से मस्तक पर तीन बार गंधोदक क्षेपण करके गुरु अपने बाएँ हाथ से उसके मस्तक का स्पर्श करें।

---

१. इति पदं पुस्तकान्तरे नास्ति।

ॐ णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसिस्स जं चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जये वा विवादे वा थंभणे वा रणंगणे वा रायंगणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख स्वाहा?-वर्धमान मंत्रः।

ततः पवित्रभस्मपात्रं गृहीत्वा ''**ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकृतोत्त-मांगाय ज्योतिर्मयाय मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय अ सि आ उ सा स्वाहा**'' इदं मंत्रं पठित्वा शिरसि कर्पूरमिश्रितं भस्म परिक्षिप्य ''**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा स्वाहा**'' अनेन प्रथमं केशोत्पाटनं कृत्वा पश्चात् ''**ॐ ह्रां अर्हद्भ्यो नमः, ॐ ह्रीं: सिद्धेभ्यो नमः, ॐ ह्रूं सूरिभ्यो नमः, ॐ ह्रौं पाठकेभ्यो नमः, ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः'' इत्युच्चरन् गुरुः स्वहस्तेन पंचवारान् केशान् उत्पाटयेत्। पश्चादन्यः कोऽपि लोचावसाने बृहद्दीक्षायां लोचनिष्ठापन-क्रियायां पूर्वाचार्येत्यादिकं पठित्वा सिद्धभक्तिः (क्तिं) कर्तव्या (कुर्यात्) ततः शीर्षं प्रक्षाल्य गुरुभक्तिं दत्वा वस्त्राभरणयज्ञोपवीतादिकं परित्यज्य तत्रैवावस्थाय दीक्षां याचयेत्। ततो गुरुः शिरसि श्रीकारं लिखित्वा ''ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ**

अनंतर ॐ णमो भयवदो..........इत्यादि वर्धमान मंत्र पढ़कर दही, अक्षत, गोमय, दूब को उसके मस्तक पर क्षेपण करें।

पुनः पवित्र भस्म में कपूर मिलाकर "ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रय......" आदि मंत्र पढ़कर उसके मस्तक पर भस्म क्षेपण करके "ॐ ह्रीं श्रीं........" आदि मंत्र पढ़कर प्रथम बार केश उखाड़कर पुनः-

"ॐ ह्रां अर्हद्भ्यो नमः" इत्यादि पंचपरमेष्ठी के पाँच पदों से क्रम से मस्तक के बीच में, पूर्व में, दायीं तरफ, बायीं तरफ व पीछे के, ऐसे पाँच बार केशों का लोच कर देवें। अनंतर अन्य कोई भी केशलोंच कर देवें। तत्पश्चात् लोच के बाद में—

अथ वृहद्दीक्षायां लोचनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण....सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग, थोस्सामिस्तव करके "सिद्धानुद्धूत......" इत्यादि सिद्धभक्ति पढ़ें।)

अनंतर मस्तक प्रक्षालित करके शिष्य गुरुभक्ति पढ़कर आचार्य को नमस्कार कर वस्त्र, आभूषण, यज्ञोपवीत आदि को त्याग करके वहीं पर स्थित होकर दीक्षा की याचना करें।

इसके बाद आचार्यदेव शिष्य के मस्तक पर "श्रीः" लिखकर "ॐ ह्रीं अर्हं असि आ

उ सा ह्रीं स्वाहा'' अनेन मंत्रेण जाप्यं १०८ दद्यात्। ततो गुरुस्तस्यांजलौ केशरकर्पूरश्रीखंडेन श्रीकारं कुर्यात्। श्रीकारस्य चतुर्दिक्षु-

रयणत्तयं च वंदे, चउवीसजिणं तहा वंदे।
पंचगुरूणं वंदे चारणजुगलं तहा वंदे।।

इति पठन् अंकान् लिखेत्। पूर्वे ३ दक्षिणे २४ पश्चिमे ५ उत्तरे २ इति लिखित्वा ''सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः'' इति पठन् तन्दुलैरञ्जलिं पूरयेत्तदुपरि नालिकेरं पूगीफलं च धृत्वा सिद्धचारित्रयोगिभक्तिं पठित्वा व्रतादिकं दद्यात्। तथा हि-

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।१।।

इति पठित्वा तद्व्याख्या विधेया कालानुसारेणेति निरूप्य पंचमहाव्रतपंच-समितीत्यादि पठित्वा सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते भवतु इति त्रीन् वारान् उच्चार्य व्रतानि दत्वा ततः शान्तिभक्तिं पठेत्। ततः आशीः श्लोकं

उ सा ह्रीं स्वाहा।'' इस मंत्र से १०८ बार लवंग क्षेपण करें। अनंतर गुरुवर्य शिष्य की अंजलि में केशर, कर्पूरमिश्रित श्रीखण्ड से 'श्रीः' लिखकर उसके चारों दिशाओं में 'रयणत्तयं....'' इत्यादि श्लोक पढ़कर अंक लिखे-पूर्व में ३, दक्षिण में २४, पश्चिम में ५ और उत्तर में २, इन अंकों को लिखकर उपर्युक्त ''सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः'' ऐसे पढ़ते हुए तंदुलों से अंजलि भर देवें और ऊपर में नारियल, सुपारी रखकर, सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति पढ़कर व्रतादि प्रदान करें। विधि इस प्रकार है —

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदानक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण.......सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववद् दण्डक, कायोत्सर्ग, थोस्सामिस्तव पढ़कर सिद्धभक्ति पढ़ें)

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदान क्रियायां पूर्वाचार्या........चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्व दण्डक, कायोत्सर्ग आदि विधि करके चारित्रभक्ति पढ़ें)

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदान क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण.......योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववद् दण्डकादि करके योगिभक्ति पढ़ें)

पुनः ''वदसमिदिंदियरोधो.........इत्यादि पद्य पढ़कर अट्ठाईस मूलगुणों का संक्षिप्त लक्षण समझा देवें, पुनः-

''पंचमहाव्रत पंचसमिति पंचेन्द्रियरोधलोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणा उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः,

पठित्वा अंजलिस्थं तन्दुलादिकं दात्रे दापयित्वा, अथ षोडशसंस्कारारोपणं-

१. अयं सम्यग्दर्शनसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
२. अयं सम्यग्ज्ञानसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
३. अयं सम्यक्चारित्रसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
४. अयं बाह्याभ्यन्तरतपःसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
५. अयं चतुरंगवीर्यसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
६. अयं अष्टमातृमंडलसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
७. अयं शुद्ध्यष्टकावष्टंभसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
८. अयं अशेषपरीषहजयसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु

अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिलक्षगुणास्त्रयोदशविधचारित्रं द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते भवतु।''

इस पाठ को तीन बार बोलकर शिष्य को व्रतों को प्रदान करके शांतिभक्ति का पाठ करें।

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदानक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण.......शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववद् दण्डक, कायोत्सर्ग, थोस्सामि पढ़कर शांतिभक्ति पढ़ें) पश्चात् आशीर्वाद श्लोक पढ़कर शिष्य की अंजलि के चावल, नारियल आदि दाता को दिला देवें-

आशीर्वाद श्लोक-

श्री शांतिरस्तु शिवमस्तु जयोऽस्तु नित्य-
मारोग्यमस्तु तव पुष्टिसमृद्धिरस्तु।
कल्याणमस्त्वभिमतस्तव वृद्धिरस्तु,
दीर्घायुरस्तु कुलगोत्रधनं सदास्तु।।

(यहाँ पर दाता शब्द से जिन्होंने गणधरवलय विधान आदि कराकर मंगल स्नान आदि कराया है, उन्हें लिया है और उन्हीं को यह नारियल आदि शिष्य के अंजलि के चावल आदि दिलाते हैं। वर्तमान में माता-पिता बनाकर यह सब विधि उनसे कराते हैं, जिनके माता-पिता या परिवार के दंपत्ति कोई भी हैं उन्हें आगे करते हैं या नये किसी योग्य दंपत्ति को ऐसा सौभाग्य मिलता है।)

इसके बाद ऊपर लिखे हुए सोलह मंत्रों से शिष्य के मस्तक पर लवंग क्षेपण करते हुए गुरु १६ संस्कारों का आरोपण करते हैं। जैसे कि-

''अयं सम्यग्दर्शनसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु''[१] इत्यादि

---

१. आर्यिका दीक्षा में इह आर्यिकायां स्फुरतु बोलना चाहिए। क्योंकि आर्यिका दीक्षा विधि में यही दीक्षा विधि है।

९. अयं त्रियोगासंगमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
१०. अयं त्रिकरणासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
११. अयं दशासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
१२. अयं चतुः संज्ञानिग्रहशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
१३. अयं पंचेन्द्रियजयशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
१४. अयं दशधर्मधारणशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
१५. अयमष्टादशसहस्रशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
१६. अयं चतुरशीतिलक्षगुणसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु
इति प्रत्येकमुच्चार्य शिरसि लवंगपुष्पाणि क्षिपेत्।

'णमो अरहंताणं' इत्यादि 'ॐ परमहंसाय परमेष्ठिने हं स हं स हं हां ह्रं ह्रौं ह्रीं ह्रें ह्रः जिनाय नमः जिनं स्थापयामि संवौषट्, ऋषिमस्तके न्यसेत्। अथ गुर्वावली पठित्वा अमुकस्य अमुकनामा त्वं शिष्य इति कथयित्वा संयमाद्युपकरणानि दद्यात्।

(पिच्छिका प्रदान)

णमो अरहंताणं भो अन्तेवासिन्! षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादि-गुणोपेतमिदं पिच्छिकोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

पुनः गुरु– **णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।**
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

"ॐ परमहंसाय........" इत्यादि ऊपर का पूरा मंत्र पढ़कर शिष्य के मस्तक पर लवंग आदि क्षेपण करें।

अनंतर अपनी गुर्वावली पढ़कर अमुक के तुम अमुक नाम के शिष्य हो, ऐसा घोषित करके आगे कहे ऊपर कहे—मंत्र बोलकर पिच्छी आदि उपकरण प्रदान करें।

गुर्वावली–"अथाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे...........प्रदेशे.........नगरे................ग्रामे..................तीर्थक्षेत्रे श्रीवीरनिर्वाणसंवत्सरे २५३५ तमे...........मासोत्तममासे.................पक्षे...........तिथौ...........वासरे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यपरंपरायां प्रथमाचार्यश्रीशांतिसागरस्तस्य पट्टाचार्य श्रीवीरसागरस्तस्य पट्टाचार्यः श्रीशिवसागरस्तस्य पट्टाचार्यः श्रीधर्मसागरस्तस्य पट्टाचार्यः श्री अजितसागरस्तस्य पट्टाचार्यः श्री श्रेयांससागरः तस्य पट्टाचार्यः अभिनंदनसागरोऽहं, मम अमुकनामधेयस्त्वं शिष्योऽसि।"

ऐसी गुर्वावली पढ़कर अपनी परम्परा में शिष्य का नया नाम घोषित कर देवें।

पुनः पिच्छिका प्रदान का मंत्र बोलते हुए शिष्य को दोनों हाथों में पिच्छिका देवें।

(ग्रंथ प्रदान)

ॐ णमो अरहंताणं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय द्वादशांगश्रुताय नमः भो अन्तेवासिन्! इदं ज्ञानोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

(कमण्डलु प्रदान)

कमंडलुं वामहस्तेन उद्धृत्य—

ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकरणांगाय बाह्याभ्यन्तरमलशुद्धाय नमः भो अन्तेवासिन्! इदं शौचोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

ततश्च समाधि-भक्तिं पठेत्। ततो नवदीक्षितो मुनिर्गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्य अन्यान् मुनीन् प्रणम्योपविशति यावद्व्रतारोपणं न भवति तावदन्ये मुनयः प्रतिवन्दनां न ददति, ततो दातृप्रमुखा जना उत्तमफलानि अग्रे निधाय तस्मै नमोऽस्त्विति प्रणामं कुर्वन्ति।

ततस्तत्पक्षे द्वितीयपक्षे वा सुमुहूर्त्ते व्रतारोपणं कुर्यात्। तदा रत्नत्रयपूजां विधाय पाक्षिकप्रतिक्रमणपाठः पठनीयः। तत्र पाक्षिकनियमग्रहणसमयात् पूर्वं यदा वदसमदीत्यादि पठ्यते तदा पूर्ववद्व्रतादि दद्यात्। नियमग्रहणसमये

ऐसे ही ग्रंथ प्रदान का मंत्र बोलकर 'मुनिचर्या, मूलाचार' आदि ग्रंथ देवें। शिष्य दोनों हाथों से शास्त्र ग्रहण करें।

पुनः गुरु बाएँ हाथ से कमण्डलु उठाकर आगे का मंत्र बोलकर शिष्य को कमण्डलु देवें। शिष्य भी बाएँ हाथ से लेवे।

अनंतर–

वृहद्दीक्षा क्रियानिष्ठापनायां सिद्धभक्त्यादिकं कृत्वा तद्धीनाधिक दोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् दण्डक आदि पढ़कर समाधिभक्ति पढ़ें)

अनंतर नव दीक्षित मुनि गुरुभक्तिपूर्वक गुरु को नमस्कार करके अन्य मुनियों को भी नमस्कार करके बैठे। यावत् व्रतारोपण न होवे तावत्पर्यंत अन्य मुनिजन प्रतिवंदना न करें।

दाता आदि प्रमुखजन फलों को सन्मुख रखकर नमोऽस्तु कहकर नमस्कार करें।

पश्चात् उसी पक्ष में अथवा द्वितीय पक्ष में शुभ मुहूर्त में व्रतारोपण करें। तब रत्नत्रय पूजा कराके पाक्षिक मुहूर्त में व्रतारोपण करें। तब रत्नत्रय पूजा कराके पाक्षिक प्रतिक्रमण पाठ पढ़ना चाहिए और पाक्षिक नियम ग्रहण समय के पूर्व ही जब "वदसमिदिंदिय" इत्यादि पाठ पढ़ा जाता

यथायोग्यं एकं तपो दद्यात् (पल्यविधानादिकं)। दातृप्रभृतिश्रावकेभ्योऽपि एकं एकं तपो दद्यात्। ततोऽन्ये मुनयः प्रतिवंदनां ददति।

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरण विधिः

त्रयोदशसु पंचसु त्रिषु वा कच्चोलिकासु लवंग-एला-पूगीफलादिकं निक्षिप्य ताः कच्चोलिकाः गुरोरग्रे स्थापयेत्। 'मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ-क्रियायामित्याद्युच्चार्य सिद्ध-योगि-आचार्य-शान्ति-समाधिभक्तीर्विधाय ततः पश्चान्मुखशुद्धिं गृह्णीयात्।

इति महाव्रतदीक्षाविधिः।

है तब पूर्व के समान ही व्रतादि देवें। अर्थात् जहाँ वदसमिदिंदिय इत्यादि पढ़कर प्रायश्चित्त देने का विधान है वहीं पर "वदसमिदिंदिय" आदि को तीन बार बोलकर व्रतादि देवे जैसे पूर्व में इस श्लोक को पढ़कर मूलगुणों का वर्णन करने के अनंतर पंचमहाव्रत पंचसमिति......... इत्यादि को तीन बार पढ़कर व्रत प्रदान किये थे तद्वत् इस समय भी करे और नियम ग्रहण के समय पर ही यथायोग्य कोई पल्य विधानादि एकतप (व्रत) भी देवें। तथा दाता—प्रमुख श्रावक आदि को भी कोई न कोई एक-एक तप (व्रत) देवे। तत्पश्चात् सभी मुनिगण प्रतिवंदना करें।

अथ मुखशुद्धि मुक्तकरण विधिः

त्रयोदश पाँच अथवा तीन कटोरियों में लवंग-इलायची-सुपाड़ी-आदि को डालकर वह कटोरियाँ गुरु के सामने स्थापित कर (इसमें गर्म जल भर देवें)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक, कायोत्सर्ग, थोस्सामि स्तव पढ़े, "सिद्धानुद्धूत...." आदि सिद्धभक्ति का पाठ करें।

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठक्रियायां...........योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वदंडकादि करके योगिभक्ति पढ़े।)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ क्रियायां.......आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(दंडकादि करके आचार्यभक्ति पढ़ें)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ क्रियायां..........शांतिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(दंडकादि करके शांतिभक्ति पढ़ें)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठक्रियायां पूर्वा.........सिद्ध-योगि-आचार्य-शांति-भक्तीः

क्षुल्लकदीक्षाविधिः

अथ लघुदीक्षायां सिद्ध-योगि-शान्ति-समाधिभक्तीः पठेत्। ''ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमः'' अनेन मंत्रेण जाप्यं वार २१ अथवा १०८ दीयते।

अन्यच्च विस्तारेण लघुदीक्षाविधिः—**अथ लघुदीक्षानेतृजनः पुरुषः स्त्री वा दाता संस्थापयति। यथा-योग्यमलंकृतं कृत्वा चैत्यालये समानयेत्, देवं वंदित्वा सर्वैः सह क्षमां कृत्वा गुरोरग्रे च दीक्षां याचयित्वा तदाज्ञया सौभाग्यवतीस्त्रीविहितस्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वाभिमुखः पर्यंकासनो गुरुश्चोत्तराभिमुखः संघाष्टकं संघं च परिपृच्छ्य लोचं...........''ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमतेप्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वपापप्रणाशनाय सर्वविघ्नविनाशनाय**

कृत्वा तद्धीनाधिकदोषशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(दंडकादि करके समाधिभक्ति पढ़ें)

पश्चात् मुखशुद्धि ग्रहण करें (गर्मजल से दो-तीन कुल्ला करें)

अर्थात् श्रावक जब तक दीक्षित नहीं होता, आचमन से मुख शुद्धि करता रहता है। दीक्षा के अनंतर आचमनादि से होने वाली शुद्धि को ही छोड़ते हुए (मुखशुद्धि मुक्तकरण) ऐसी विधि करता है। पुनः उसे मुखशुद्धि (जलादि के द्वारा आचमन) करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

विशेष-जो यह मुनि दीक्षा विधि है, आर्यिका दीक्षा में यही विधि करने का विधान है।

क्षुल्लकदीक्षा विधि

लघु दीक्षा—क्षुल्लक दीक्षा में सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, शांतिभक्ति और समाधिभक्ति पढ़ें।

ॐ ह्रीं........आदि मंत्र से २१ बार या १०८ बार जाप्य करें।

इस क्षुल्लक दीक्षा विधि को विस्तार से कहते हैं-

क्षुल्लक दीक्षा दिलाने वाले पुरुष अथवा स्त्री दाता सभी क्रिया कराते हैं। पूर्व के समान गणधरवलय आदि विधान कराके यथायोग्य अलंकार से अलंकृत कर चैत्यालय-मंदिर में लावें।

अर्हंतदेव की वंदना करके सभी के साथ क्षमायाचना करके गुरु के सामने दीक्षा की याचना करके उनकी आज्ञा से सौभाग्यवती स्त्री के द्वारा बनाये गये स्वस्तिक के ऊपर श्वेतवस्त्र प्रच्छादित कर उस पर पूर्वमुख करके पर्यंकासन से बैठे, गुरु उत्तरमुख करके बैठकर चतुर्विध संघ को पूछकर मुनिदीक्षा में कही गई विधि के अनुसार सिद्धभक्ति, योगिभक्ति पढ़कर ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय............" पढ़कर तीन बार मस्तक पर गंधोदक डालकर

सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपर-कृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।'' अनेन मंत्रेण गन्धोदकादिकं त्रिवारं शिरसि निक्षिपेत्। शान्तिमंत्रेण गन्धोदकं त्रिः परिषिच्य वामहस्तेन स्पृशेत्। ततो दध्यक्षतगोमयतद्भस्मदूर्वांकुरान् मस्तके वर्धापनमंत्रेण निक्षिपेत् ''ॐ णमो भयवदो वड्ढमाणस्सेत्यादि वर्धापनमन्त्रः पूर्वं कथितः। लोचादिविधिं महाव्रतवद्विधाय सिद्धभक्ति-योगिभक्ती पठित्वा व्रतं दद्यात्। दंसणवयेत्यादि वारत्रयं पठित्वा व्याख्यां विधाय च गुर्वावलीं पठेत्। ततः संयमाद्युपकरणं दद्यात्।

ॐ णमो अरहंताणं भोः क्षुल्लक! (आर्य-ऐलक!) क्षुल्लिके वा षट्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादिगुणोपेतमिदं पिच्छोपकरणं गृहाण गृहाण, इत्यादि पूर्ववत्कमण्डलुं ज्ञानोपकरणादिकं च मंत्रं पठित्वा दद्यात्।

इति लघुदीक्षाविधानं समाप्तम्।

बाएं हाथ से मस्तक का स्पर्श कर, दधि, अक्षत आदि मस्तक पर क्षेपण कर 'वर्धमानमंत्र' पढ़कर पवित्र भस्म लेकर 'ॐ णमो अरिहंताणं........आदि मंत्र पढ़कर पूर्ववत्—महाव्रत की दीक्षा के सदृश पाँच बार लोच विधि करके—पाँच बार मंत्र पढ़ते हुए केशों को उखाड़कर 'सिद्धभक्ति, योगिभक्ति' पढ़कर व्रतों को प्रदान करें। यहाँ ग्यारह प्रतिमा के व्रत देने में-

दंसणवयसामाइय-पोसहसचित्तराइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठदेसविरदे दे।।

अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झायसव्वसाहुसक्खियं सम्मत्त पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं ते भवदु।।

इन्हें तीन बार पढ़कर ग्यारह प्रतिमा के लक्षण संक्षेप में समझाकर व्रत प्रदान करें।

इस व्रत विधि में भी पूर्ववत् मुनिदीक्षा के समान दीक्षार्थी के हाथ की अंजलि में 'श्री' आदि लिखकर अक्षत नारियल रखकर व्रत देवें।

(यहाँ "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमः।" इस मंत्र से १०८ बार मस्तक पर लवंग क्षेपण करें।)

पुनः गुर्वावली पढ़कर मुनिदीक्षा के समान पिच्छी, शास्त्र व कमण्डलु के मंत्र पढ़कर उपकरण प्रदान करें। जैसे कि-पिच्छी देते समय—

ॐ णमो अरहंताणं भोः क्षुल्लक (भोः आर्य! या भोः क्षुल्लिके!) षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादिगुणोपेतमिदं पिच्छोपकरणं गृहाण गृहाण।

ऐसे ही पूर्व के मंत्रों से ज्ञानोपकरण-शास्त्र और शौचोपकरण कमण्डलु प्रदान करें।

यह क्षुल्लक दीक्षा विधि पूर्ण हुई।

अथोपाध्यायपददानविधिः

सुमुहूर्ते दाता गणधरवलयार्चनं द्वादशाङ्गश्रुतार्चनं च कारयेत्। ततः श्रीखंडादिना छटान् दत्वा तन्दुलैः स्वस्तिकं कृत्वा तदुपरि पट्टकं संस्थाप्य तत्र पूर्वाभिमुखं तमुपाध्यायपदयोग्यं मुनिमासयेत्। अथोपाध्यायपदस्थापन-क्रियायां पूर्वाचार्येत्याद्युच्चार्य सिद्धश्रुतभक्ती पठेत्। तत आवाहनादिमंत्रानुच्चार्य शिरसि लवंगपुष्पाक्षतं क्षिपेत्। तद्यथा-ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्याय-परमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट्, आह्वाननं स्थापनं सन्निधीकरणं। ततश्च ''ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिने नमः'' इमं मंत्रं सहेन्दुना चन्दनेन शिरसि न्यसेत्। ततश्च शान्तिसमाधिभक्ती पठेत्। ततः स उपाध्यायो गुरुभक्तिं दत्वा प्रणम्य दात्रे आशिषं दद्यादिति।

इत्युपाध्यायपदस्थापनविधिः।

अथाचार्यपदस्थापनविधिः

सुमुहूर्ते दाता शान्तिकं गणधरवलयार्चनं च यथाशक्ति कारयेत्। ततः श्रीखंडादिना छटादिकं कृत्वा आचार्यपदयोग्यं मुनिमासयेत्। आचार्यपद-प्रतिष्ठापनक्रियायां इत्याद्युच्चार्य सिद्धाचार्यभक्ती पठेत्। ''ॐ ह्रूं परमसुरभि-द्रव्यसन्दर्भपरिमलगर्भतीर्थाम्बुसम्पूर्णसुवर्णकलशपंचकतोयेन परिषेचयामीतिस्वाहा'' इति पठित्वा कलशपंचकतोयेन पादोपरि सेचयेत्। ततः पंडिताचार्यो ''निर्वेद सौष्ठ'' इत्यादि महर्षिस्तवनं पठन् पादौ समंतात्परामृश्य गुणारोपणं कुर्यात्। ततः ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट् आवाहनं स्थापनं सन्निधीकरणं। ततश्च ''ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं धर्माचार्याधिपतये नमः'' अनेन मंत्रेण सहेन्दुना चन्दनेन पादयोर्द्वयोस्तिलकं दद्यात्। ततः शान्तिसमाधिभक्ती कृत्वा गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्योपविशति। तत उपासकास्तस्य पादयोरष्टतयीमिष्टिं कुर्वन्ति। यतयश्च गुरुभक्तिं दत्वा प्रणमन्ति। स उपासकेभ्य आशीर्वादं दद्यात्।

इत्याचार्यपददानविधिः।

ॐ ह्रां ह्रीं श्रीं अर्हं हं सः आचार्याय नमः-आचार्यवाचनामंत्रः।

अन्यच्च-

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं हं सः आचार्याय नमः-आचार्यमंत्रः।

सरस्वती स्तोत्र

बारह अंगंगिज्जा दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चोद्दसपुव्वाहरणा ठावे दव्वाय सुयदेवी।।१।।

आचारशिरसं सूत्र-कृतवक्त्रां सुकंठिकाम् ।
स्थानेन समवायांग-व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ।।२।।

वाग्देवतां ज्ञातृकथो- पासकाध्ययनस्तनीम् ।
अंतकृद्दशसन्नाभि - मनुत्तरदशांगतः ।।३।।

सुनितंबां सुजघनां प्रश्नव्याकरणश्रुतात् ।
विपाकसूत्रदृग्वाद- चरणां चरणांबराम् ।।४।।

सम्यक्त्वतिलकां पूर्व- चतुर्दशविभूषणाम् ।
तावत्प्रकीर्णकोदीर्ण- चारुपत्रांकुरश्रियम् ।।५।।

आप्तदृष्टप्रवाहौघ- द्रव्यभावाधिदेवताम् ।
परब्रह्मपथादृप्तां स्यादुक्तिं भुक्तिमुक्तिदाम् ।।६।।

निर्मूलमोहतिमिरक्षपणैकदक्षं, न्यक्षेण सर्वजगदुज्ज्वलनैकतानम् ।
सोषेस्व चिन्मयमहो जिनवाणि! नूनं, प्राचीमतो जयसि देवि! तदल्पसूतिम् ।।७।।

आभवादपि दुरासदमेव, श्रायसं सुखमनन्तमचिंत्यम् ।
जायतेऽद्य सुलभं खलु पुंसां, त्वत्प्रसादत इहांब! नमस्ते।।८।।

चेतश्चमत्कारकरा जनानां, महोदयाश्चाभ्युदयाः समस्ताः।
हस्ते कृताः शस्तजनैः प्रसादात् , तवैव लोकांब! नमोऽस्तु तुभ्यम् ।।९।।

सकलयुवतिसृष्टेरंब! चूणामणिस्त्वं, त्वमसि गुणसुपुष्टेर्धर्मसृष्टेश्च मूलम्।
त्वमसि च जिनवाणि! स्वेष्टमुक्त्यंगमुख्या, तदिह तव पदाब्जं भूरिभक्त्या नमामि[१]।।१०।।

*****

१. प्रतिष्ठातिलक से।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर स्तुतिः

—भुजंगप्रयात छंद —

सुरत्नत्रयैः सद्व्रतैर्भ्राजमानः, चतुःसंघनाथो गणीन्द्रो मुनीन्द्रः।
महा-मोह-मल्लैक-जेता यतीन्द्रः, स्तुवे तं सुचारित्रचक्रीशसूरिम्।।१।।

भवव्याधिनाशाय दिग्वस्त्रधारी, भवाब्धेः तितीर्षुः जगद्दुःखहारी।
भवातंकविच्छित्तयेऽहं श्रितस्त्वां। स्तुवे शांतिसिंधुं महाचार्यवर्यं।।२।।

महाग्रंथराजं सुषट्खण्डशास्त्रं। सुताम्रस्य पत्रे समुत्कीर्णमेव।।
अहो! त्वत्प्रसादात् महाकार्यमेतत्। प्रजातं सुपूर्णं चिरस्थायि भूयात्।।३।।

अनेके सुशिष्याः प्रसिद्धा तवेह। स्तुवे वीरसिंधुं महाचार्यवर्यं।।
शिवाब्धिं च सूरिं गुणाब्धेः समुद्रं। मुदा पट्टसूरिं स्तुवे धर्मसिंधुम्।।४।।

महासाधवो ह्यार्यिकाः क्षुल्लकाद्याः। प्रसादात् हि ते श्रावकाद्याश्च जाताः।।
सुनक्षत्रवृंदैर्युतश्चंद्रमाः खे। सुसंघैर्युतः शांतिसूरिः स्तुवे तं।।५।।

महाकल्पवृक्षं महाचार्यरत्नं। कृपासागरं शांतिसज्ज्ञानमूर्तिम्।।
गभीरं प्रसन्नं महाधीरवीरं। महातीर्थभक्तं सदा त्वां प्रवन्दे।।६।।

—पृथ्वी छंद —

नमोऽस्तु मुनिचंद्र! ते भुवनकैरवाल्हादकृत्।
नमोऽस्तु मुनिसूर्य! ते जनमनोऽन्धकारांतकृत्।।
नमोऽस्तु गुरुवर्य! ते सकलभव्य-चिंतामणे!
जयेति जय सूरिवर्य! भुवि शांतिसिंधो! सदा।।७।।

श्रीशांतिसागराचार्यं, वंदे भक्त्या पुनः पुनः।
बोधिर्ज्ञानमतिः सिद्धि-र्भूयात् मे पूर्ण शांतिदा।।८।।

*****

आचार्यश्री वीरसागर स्तुतिः

—वसन्ततिलका छंद—

सिद्धिप्रदं सकलतापहरं प्रसिद्धं, रत्नत्रयं परमसौख्यनिधिं दधानः।
निष्किंचनोऽपि विबुधैः खलु कथ्यमानः, श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।१।।

सिद्धांतसारमवगम्य हितोपदेशी, गंभीर-धीर-मितवाक्प्रभृतेर्गुणाब्धिः।
आचार-शास्त्रमवगाह्य पटुः क्रियासु, श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।२।।

आत्मस्वभाव-निरतः शिवसौख्यलिप्सुः, मोक्षैक-साधनविधौ कुशलो महात्मा।
आजन्मकामविजयी मुनिनायकस्त्वं, श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।३।।

अध्यात्म-शास्त्रनिपुणो निजतत्त्ववेदी, साम्यामृतस्वरसनिर्झरणी-निमग्नः।
स्वात्मैकसौख्यरस-तृप्तमना नितांतं, श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।४।

लोकैकचित्त-जलजप्रतिबोधसूर्यः, आल्हादने भुवि विधुर्भविकौमुदीनाम्।
पुण्याँकुरोज्जननसोदक-मेघतुल्यः, श्रीवीरसागरगुरुर्हृदि तिष्ठतान्मे।।५।।

नंनमीमि त्रिशुद्ध्याहं सूरिं श्रीवीरसागरम्।
ज्ञानमत्यै श्रियै नित्यं, संस्तवीमि पुनः पुनः।।६।।

*****

गुरुद्वय वंदना

-वसंततिलका छंद-

श्री शांतिसागर मुनीन्द्र! नमोऽस्तु तुभ्यम्,
सूरिस्त्वमेव प्रथमः किल संप्रतीह।
पट्टाधिपः प्रथम एव च यः प्रसिद्धः,
तं वीरसागरगुरुं प्रणमामि भक्त्या।।१।।

प्रशस्तिः

पार्श्वनाथं नमस्कृत्य कुंदकुंदादियोगिनः।
श्रुतदेवीं च वंदेहं, व्रतावश्यकशुद्धये।।१।।

मूलसंघाभिधे कुंद - कुंदाम्नाये प्रसिद्धके।
सरस्वत्याः सुगच्छेऽस्मिन्, बलात्कारगणे मणिः।।२।।

चारित्रचक्रवर्ती यः, सूरिः श्रीशांतिसागरः।
पट्टाधीशो भवेदस्य, सूरिः श्रीवीरसागरः।।३।।

तच्छिष्या ज्ञानमत्याख्या, गणिनी सार्यिकाभवम्।
श्रुतगुर्वोः प्रसादेन, ग्रंथानपि लिखाम्यहं।।४।।

आनुपूर्व्या ''मुनिचर्या'' ''क्रियाकलाप'' एव हि।
कृतिकर्मणि सत्प्रीत्या, रचितेयं कृतिर्मया।।५।।

वीराब्दे पंचविंशति- तमे सप्तदशोत्तरे।
वैशाखे प्रथमे कृष्णे, द्वितीयायां प्रपूर्यते।।६।।

हस्तिनागपुरे क्षेत्रे, कमलाकारमंदिरे।
श्रीवीरप्रभुसानिध्ये, ग्रंथोऽयं पूर्णतामगात् ।।
जंबूद्वीपः सुमेरुश्च, जिनार्चाश्च जिनालयाः।
तावदत्र विभासन्तां, यावत् वीरस्य शासनम् ।।८।।

तावच्च मुनिचर्येयं, चतुःसंघमनोम्बुजे।
स्थेयात् नंद्यात् च मे दद्यात्, पूर्ण 'ज्ञानमति' श्रियम्।।९।।

*****